श्रीमद्भगवद्गीता भाषा

महात्म्य सहित

श्रीस्वामी किशोरदास, कृष्णदास कृत

जिसको

सरल हिन्दी भाषा में

रामचन्द्र लोकनाथ मानकटाहले पुस्तकोंवाले

लुहारी दरवाजा लाहौर ने शोधकर छपवाई

संवत् १९७०

बाम्बे मैशीन प्रेस, लाहौर में छपी

॥ ॐ श्री गणेशायनमः ॥



श्री ओं नमो भगवते वासुदेवाय वासुदेव विश्वेश्वरो

आदि पुरुष अपरम्पार अलेख पुरषानमः

दोहरा–जगत बन्धु जोतीस्वरूप जीयकी जाननहार ।

हरि जस मांगन आयो दास प्रभु के द्वार ॥ १ ॥

जो अर्जुन भगत को श्रीभगवान जी ने गीता ज्ञान दिया है सो मुझको मिले । हे मै मंजन भगवान श्रीकृष्ण

जी सो किशोरदास मांगता है। हे प्रभु गीता ज्ञान के उच्चारण करने से तेरे पूर्ण ब्रह्म को पावता है। हे प्रभु मैं आपके चरणों की शरण हूं, आप परम प्रवीन हो और मैं आपकी शरण में पड़ा हूं, किशोरदास अरकृष्ण दास जो दीन गरीब हैं और आप कैसे हो सन्तों की बेनती को मान लेते हो, हे कमला वल्लभ श्रीकृष्ण भगवानजी कृपा निधानजी तेरे सन्तों भगतों के वास्ते मैं यह गीता ज्ञान भाषा में कहता हूं॥

श्री गीता के ज्ञान की कथा प्रारम्भ

जब कौरव और पांडव महाभारत के युद्ध को चले तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा जो मैं भी युद्ध का कौतुक

देखने को चलूं, तब श्रीव्यासदेवजी ने कहा, हे राजा तेरे तो नेत्र नहीं है नेत्रों बिना क्या देखोगे तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा हे प्रभुजी देखूंगा नहीं तो श्रवण तो करूंगा, तब व्यासदेव जी ने कहा हे राजन तेरा जो सारथी संजै है सो मेरा शिष्य है जो कुछ महाभारत के युद्ध की लीला कुरुक्षेत्र में होगी सो संजै तुझ को यहां बैठे ही श्रवण करावेगा, जब व्यासदेवजी के मुख कमल से यह वचन सुने तब संजै श्री व्यासदेवजी के चरणों पर नमस्कार करता भया। और हाथ जोड़कर बेनती करी हे प्रभूजी महाभारत के युद्धका चरित्र कुरुक्षेत्र विषे

होवेगा और मैं यहां हस्तनापुर विषे हुंगा और आपने जो आज्ञा करी है कि राजन तुझ को यहां बैठे ही युद्ध का कौतुक संजै कहेगा सो हे प्रभुजी यहां हस्तनापुर में कुरुक्षेत्र की लीला कैसे जानूंगा । और राजे को किस भांत कहुंगा । जब इस प्रकार संजै ने व्यासदेव जी के आगे बेनती करी तब श्रीव्यासदेवजी प्रसन्न होकर संजै को यह बचन कहा कि हे संजै मेरी कृपा से तुझे सभ दिखाई यहां ही देवेगा। और बुद्धि के नेत्रों कर सूझेगा भी जब व्यासजी ने यह वर दिया, तिसी समय संजै को दिव्य दृष्टि भई और बुद्धि भी उसकी दिव्य भई ।

अब आगे महाभारत का कौतुक कहते हैं सो सुनो। सात छौनी सैना पांडवों की और ग्यारां क्षौनी सैना धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों की यह दोनों सैना इकट्ठी होकर कुरुक्षेत्र में जाय एकत्र भई। अब राजा धृतराष्ट्र संजै से पूछे है॥ धृतराष्ट्रोवाच–हे संजै धर्म का क्षेत्र जो है कुरुक्षेत्र तिस विषे मेरे पुत्र और पांडव के पुत्र तिन्हौंने क्या किया सो मुझे कहो, राजा का वचन सुनकर संजै बोलता भया॥ संजै उवाच–हे राजाजी तेरा पुत्र जो है दुर्योधन तिसने पांडवों की सैना देखी सो कैसी है सैना भली भांत जिसकी पंक्ती बनी है तिन पांडवों की सैना

को देखकर राजा दुर्योधन अपने गुरदेव द्रोणाचार्य्य के निकट जाकर यह बेनती करता भया, हे अचारज जी देखो तो पांडवों की सैना का समूह और सैना की कैसी भली भांत पंक्ती बनी है और द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युमन सो तुमारा शिष्य है कैसा बुद्धिवान है जिसने पांडवों की सैना की पंकती कैसा भली भांत बनाई है और जो पांडवों की सैना के तुल्य योधा हैं तिन के नाम दुर्योधन द्रोणाचार्य्य को सुनावे है। इस सैना विषे बड़ा धनुष धारण हारा भीमसैन, अर्जुन और राजा जुजुधान राजा विराट, राजा द्रुपद महारथी धृष्टकेतु चेकतान और बड़ा

बलवान् काशी का राजा और पुरजित कुंतभोज मानुषों विषे श्रेष्ठ सईब जुधामन्यू और मिक्रांत बड़ा बलवान् उत्तमोजा, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यू और द्रुपद के बेटे सभी महारथी हैं। अब दुर्योधन अपनी सेना के मुख जो जोधा हैं तिन के नाम और प्रमाण सुनावे है, हे अचारज जी अब जो मेरी सैना के मुख योधा हैं यह ब्राह्मणों विषे श्रेष्ठ द्रोणाचार्य्य जी तिनके नाम सुनो॥ प्रथम तो तुम और भीष्म जी करण, कृपाचार्य, समतिंज, अश्वत्थामा, विकरण और सोमदत्त इन से आदि लेकर और भी योधा हैं सो कैसे हैं जिन्हों ने मेरे निमित्त

अपना जीवन त्याग दिया है और अनेक प्रकार के शस्त्र धारने हारे हैं युद्ध करने को बड़े प्रवीन हैं और चतुर हैं और हमारी सैना बहुत (ग्यारां च्छौनी) है और पांडवों की सैना थोड़ी(सात च्छौनी) है और हमारी सैना का अधिकारी और रच्छा कर्त्ता भीष्म है और पांडवों की सैना का अधिकारी और रच्छा कर्त्ता भीमसैन है। अब दुर्योधन अपनी सैना को कहे है जितने तुम हमारी सैना के लोग हो सो सभी भीष्म की रक्षा करने हारे हो और जितने शस्त्र आने के मार्ग हैं तिन सभ मार्गों से भीष्म की रक्षा करो, दुर्योधन के मुख से भीष्म से आदि

लेकर जो योधा हैं तिन्हों ने यह वचन सुनकर दुर्योधन के सुख उपजावन अर्थ कौरवों विषे बड़ा जो है वृद्ध भीष्मपितामा सो प्रथमैं सिंह की न्याई गरजिया, गरज कर अपना प्रतापवान संख बजाया इस के पीछे सारी दुर्योधन की सैना ने संख बजाए और भेरी और ढोल और रणसिंहे बजाए दमामें और गोमुख, इत्यादि लेकर और सभी बजंत्र अनेक प्रकार के सारी सैना ने एकत्र बजाए तिन बजंत्रों का इकट्ठा शब्द होता भया। फिर पांडवों की सैना के बजंत्र बजावने को कहते हैं। प्रथम तो जिस रथ पर श्रीकृष्ण भगवान जी विराजमान हैं,

तिस बड़े रथ की सारी सामग्री कंचन की है और सारी रत्नों करके जड़ित हैं जैसे वर्षा ऋतु में मेघ गरजे हैं तैसे ही तिस रथ के पईयों की आवाज़ है ऐसे तो रथ है अब घोड़ियों की शोभा कहे हैं जैसा गऊ का दुध होए है ऐसा तो तिन घोड़ियों का सुन्दर रंग है और जैसा कार्त्तक का फूला हुआ कमल होए है तैसा सुन्दर घोड़ियों का मुख है और बहुत सुन्दर हैं गरदनां जिन्ह कीयां सुन्दर हैं और कान और पूंछ अति सुन्दर हैं, और चरणां विषे नूपुर स्वर्ण के शोभा देते हैं यहां तो घोड़ियों की शोभा कही है ऐसे सुन्दर रथ पर सारथी

भगत वत्सलसत्य स्वरूप आनन्द मूरति जो हैं श्रीकृष्ण भगवान जी सो विराजमान हैं और योधा की ठौहर अर्जुन भगत विराजमान हैं तिन्होंने भी दिव्य: संख बजाये प्रथम ऋषिकेश जो हैं श्रीकृष्ण भगवानजी तिन्होंने आपना पांचजन्य नाम संख बजाया और देवदत्त नामे संख अर्जुन ने बजाया पौंडर नाम संख भीमसैन ने सो भीमसेन कैसा है जिसका उदर बड़ा है और कमर भी बड़ी है और अनंत विजयमान संख कुंतीका पुत्र जो राजा युधिष्ठर है तिसने बजाया और संघोख नाम संख नकुल ने बजाया मणि पुहप नाम संख सहदेव ने बजाया बड़े

धनुष के धारने हारा काशी का राजा तिसने भी संख बजाया और महारथी सिखण्डी ने भी बजाया और धृष्टद्युम्न ने भी बजाया और राजा विराट ने भी बजाया और अजीत जो किसी से जीतिया ना जाए ऐसा जो शातक यादव है तिसने भी बजाया और राजा द्रुपद ने भी बजाया और द्रोपदी के पुत्रों ने भी बजाए और जितने पांडवों की सैना के राजे थे सब ने संख बजाये और महाबाहू जो है सुभद्रा का बेटा अभिमन्यु तिसने भी बजाया इन सब ने अपने अपने भिन्न२ संख बजाए. तिन संखों का शब्द सुनकर धृतराष्टर के पुत्रों के हृदय

बिदीरण हुए बिदीरण क्या हृदय फटगए और धरती आकाश तिसके साथ भर गया इसके उपरन्त धृतराष्टर के पुत्रों की सैना अर्जुन ने देखी जब दोनों ओर की सैना के शस्त्र चलने लगे, तब अपना धनुष सिर ऊपर फेरकर अर्जुन पांडव ऋषिकेश जो हैं श्रीकृष्ण भगवान जी तिनको बोलता भया, हे अच्युत अविनाशी पुरुष जो मेरा रथ दोनों सैना के बीच लेजाकर खड़ा करो, तब मैं देखूं हमारे साथ युद्ध करने को कौन कौन आए हैं प्राणों को और धन को त्यागकर जो आए हैं तिन सब को मैं देखूं ॥ संजै उवाच-संजै राजा धृतराष्टर को

कहे हैं हे राजा जी ऋषिकेश जो श्रीकृष्ण भगवान जी तिनको अर्जुन यह वचन कहे तब भगत वत्सल जो हैं गोबिन्दजी तिन अर्जुन के घोड़े प्रेरकर अर्जुन का रथ दोनों सैना के बीच लेजाय खड़ा किया भीष्म और द्रोणाचार्य्य के सन्मुख अर्जुन का रथ लेजाय खड़ा किया और भीष्म द्रोणाचार्य्य की दाईं,बाईं ओर और भी योधा थे, तब कृष्ण भगवान जी अर्जुन को बोले। हे अर्जुन तेरा रथ मैंने कौरवों की सैना के सन्मुख खड़ा किया है तूं इनको देख। तब अर्जुन कौरवों की सैना विषे जो योधे देखे सो कौन कौन योधे देखे पितामा देखे गुरु

देखे मावले देखे पुत्र देखे पौत्रे देखे सखा देखे ससुर देखे और मित्र देखे इन दोनों सैनांविषे अपनेहीकुटम्बीदेखकर अर्जुन को बहुत दया उपजी तब अर्जुन क्रोध के साथ श्रीकृष्ण भगवान जी को बोलता भया ॥ अर्जुनोवाच ॥ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान को कहे हे श्रीकृष्ण भगवान जी इस सैनां विषे मैंने सब अपने ही सज्जन भाई बन्धु कुटुम्बी देखे। जो योधे रण विषे आए हैं तिन को देखकर मेरा शरीर बहुत दुःख पाता है और मेरा मुख सूक गया है और मेरा देह ठौर ते चलगया मेरे रोम खड़े होगये हैं गांडीव नाम धनुष मेरे हाथ से गिर पड़ा है और

कहे है हे राजा जी ऋषिकेश जो श्रीकृष्ण भगवान जी तिनको अर्जुन यह वचन कहे तब भगत वत्सल जो हैं गोबिन्दजी तिन अर्जुन के घोड़े प्रेरकर अर्जुन का रथ दोनों सैना के बीच लेजाय खड़ा किया भीष्म और द्रोणाचार्य्य के सन्मुख अर्जुन का रथ लेजाय खड़ा किया और भीष्म द्रोणाचार्य्य की दाईं,बाईं ओर और भी योधा थे, तब कृष्ण भगवान जी अर्जुन को बोले। हे अर्जुन तेरा रथ मैंने कौरवों की सैना के सन्मुख खड़ा किया है तूं इनको देख। तब अर्जुन कौरवों की सैना विषे जो योधे देखे सो कौन कौन योधे देखे पितामा देखे गुरु

देखे मावले देखें पुत्र देखे पौत्रे देखे सखा देखे ससुर देखे और मित्र देखे इन दोनों सेनांविषे अपनेहीकुटम्बीदेखकर अर्जुन को बहुत दया उपजी तब अर्जुन क्रोध के साथ श्रीकृष्ण भगवान जी को बोलता भया ॥ अर्जुनोवाच ॥ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान को कहे हे श्रीकृष्ण भगवान जी इस सेनां विषे मैंने सब अपने ही सज्जन भाई बन्धु कुटुम्बी देखें। जो योधे रण विषे आए हैं तिन को देखकर मेरा शरीर बहुत दुःख पाता है और मेरा मुख सूक गया है और मेरा देह ठौर ते चलगया मेरे रोम खड़े होगये हैं गांडीव नाम धनुष मेरे हाथ से गिर पड़ाहै और

त्वचा जल उठी है मैं खड़ा भी नहीं हो सकता और मेरा मन भी भ्रमे है और हे केशवजी मैं अपसगनदेखता हूं और ऐसा निमित भी नहीं देखता यह विपरीत बुद्धि है हे केशवजी इस युद्ध विषे भाइयों के मारने में अपनी कल्याण भी नहीं देखता हे श्रीकृष्ण जी मैं अपनी जय भी नहीं देखता और मुझ को राज्य की वांछा नहीं और ना सुख की है हे गोबिन्दजी राज्य किसकाम है और राज के भोग किसकाम हैं जिनके सुख निमित राज लीजे है जो कुटुम्ब के लोग सुखपावें सोई कुटुम्ब के लोग मारकर राज लीये से यह सभी कुटुम्ब के लोग योधा

एकत्र भए हैं प्राण और धन को त्याग कर युद्ध के निमित्त खड़े हुए हैं सो यह कौन कौन हैं गुरू हैं पितामा हैं, पुत्र हैं ताए हैं मावले हैं सुसर हैं पौत्रे हैं और साले हैं और कुड़म हैं हे मधुसूदन जी इन के मारने की मुझ को इच्छा नहीं इन पर मुझ को बहुत दया उपजी है हे धरती के धारणहारे श्रीकृष्ण भगवानजी मैं इनको मारकर त्रिलोकी का राज पाऊंगा, तो भी ना मारूंगा, भूमीके राजकी कितनी बात है हे जनार्दनजी धृतराष्टर केपुत्रोंको मारने से हमारी कल्याण नहीं क्या विप्रीत होगी इनके मारने से हमको बड़ा पाप लगेगा यद्यपि; यह महां पापी

भी हैं तो भी नहीं मारने। हे प्रभु यह सभी पूजने योग्य हैं और भेटा योग्य हैं इनको मैं नहीं मारूंगा। हे मांधव जी सज्जन भाई बन्धु कुटुम्ब इनको मारने से हम को सुख कहां है मुक्ति कहां यद्यपि राज का लोभ कर इनकी बुद्धि अन्ध भई है यह धृतराष्टर के पुत्र जो कुछ कुल नष्ट करने से दोष उपजे है जो कुछ मित्र साथ कपट करने से दोष उपजे है इनको नहीं समझते सो क्या इनकी न्याई मैं भी नहीं समझता जो कुल के नष्ट करने से पाप उपजे है तिस पाप को मैं भली भांति जानता हूं अब जो पाप कुल के नष्ट करने से उपजते हैं

नित पापों को अर्जुन भली भांति कहे है हे जनार्दनजी जब कुल का नाश कीजे तब जो कुलके पुरातन धर्म चले आये हैं तिनका भी नष्ट होता है जब कुल के धर्म का नष्ट हुआ तब सारी कुल में अधर्म आप्रवेश हुआ तब कुलकी स्त्रियां दुराचारनी हुईं तिन स्त्रियों के वर्णशंकर सन्तान उपजी वर्णशंकर कहिये पराय पुरुषों की सन्तान। जब वर्णशंकर भई तब पिण्ड और जल पितरों को पहुंचने से रह गया तब तिनके पितर स्वर्ग से गिर पड़े हैं इस कारण से हे यादव वंशियों विषे श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भगवानजी जिसने कुल का नष्ट किया तिस ने इतने पाप

किये सो यह सब पाप कुल के नष्ट करनहारे के सिर पर होते हैं फिर वह मनुष्य उन पापों का फल क्या पावे है सो सुन । सो प्राणी सदा नर्क भोगता है न्याय शास्त्र में मैंने यह श्रवण किया है ॥ अब अर्जुन और पछतावे है हाथ बजाय कर और सिरको फेरकर कहता है हा ! हा ! देखो भाई मैंने कैसे पाप का उद्यम किया था राज सुख के लोभ के निमित्त अपनी कुल का नष्ट करने लगा था अब मैं अपने हाथ विषे शस्त्र ना पकडूंगा और धृत-राष्ट्र के पुत्रों के हाथ विषे शस्त्र होवेंगे और मैं उन के सन्मुख हूंगा वोह मुझको मारेंगे इससे मेरी कल्याण होगी

संजै उवाच—संजै धृतराष्टर को कहे है हे राजन अर्जुन ने यह बचन कहकर धनुषवान हाथसे छोड़ दिया है और शोक के समुद्र विषे मगन होकर मूर्छा खायकर गिर पड़ा ॥ इति श्री भगवद्गीता सूपनिषध सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्री कृष्ण अर्जुन संवादे अर्जुन विषाद योगोनाम प्रथमोध्याय १

* प्रथम अध्याय का महात्म्य *

एक समय कैलाश पर्वत पर महादेव और पार्वती की आपस में गोष्ट हुई पार्वती ने पूछा हे महादेवजी आप आपने मन में किस ज्ञान कर पवित्र हुए जिस ज्ञान के बलकर आपको

संसारके लोक शिवकर पूजते हैं और तुम्हारे कर्म यह दिखाई देते हैं मृगछाल ओढ़े अंगों में मसानों की विभूति लगाये गलेमें सर्प और मुंडोंकी माला पहिर रहेहो इनमें तो कोई मर्क पवित्र नहीं;आप मुझे वह ज्ञान सुनावो जिस ज्ञान कर तुम अन्तर से पवित्र हो तब श्रीमहादेवजी ने कहा। श्री महादेवउवाच–तव श्री महादेवजी बोले हे पार्वती सुन। जिस ज्ञानकर मैं पवित्र हूं और जिस ज्ञानकर मुझे बाहर के कर्म व्यापते नहीं सो गीता ज्ञान है तिसका मैं हृदय विषे ध्यान करता हूं तिस ज्ञान कर मुझे वाहर के कर्म व्यापते नहीं तब पार्वती ने कहा हे भगवन जो गीता

ज्ञान ऐसा है जिसकी आप ऐसी स्तुति करते हो तिस ज्ञानके श्रवण करने कर कोई कृतार्थ भी भया है तब श्री महादेवजी बोले हे पार्वती इस ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ हुए हैं और आगे भी होवेंगे मैं तुझको एक पुरातन कथा कहता हूं तूं श्रवण कर। श्रीमहादेवउवाच-एक समय पताल लोकमें शेषनाग की शय्या पर श्रीनारायण जी नैन मूंद कर अपने आनन्द में मगन भये थे, और श्रीलक्ष्मीजी चरण झसती थी तिस समय विषे श्रीलक्ष्मी जीने पूछा हे श्रीनारायण जी चौदों लोक के तुम ईश्वर हो क्या आपको भी निद्रा व्यापति है। निद्रा और

आलस तिन पुरुषों को व्यापता है जो जीव तामसी हैं और तुम तीनों गुणों से अतीत हो तुम श्रीनारायण हो और प्रभु हो वासुदेव हो तुम नेत्र जो मूंद रहे हो यह मुझको बड़ा आश्चर्य्य है। श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी मुझको निद्रा आलस नहीं व्यापता एक शब्द रूप जो भगवत गीता है तिस विषे जो ज्ञान है तिस ज्ञान कर मैं आनन्द में मगन रहता हूं और वह कैसा ज्ञान है जिसके उपजे से यह जीव सदा आनन्द में रहता है कोई क्लेश दुःख इस जीव को व्यापता नहीं जैसे चौबीस अवतार मेरे आकार रूप हैं तैसे यह गीता शब्द रूप अवतार है तिस

गीता विषेमेरे अंग है पांच अध्याय मेरा मुख है पांच अध्याय मेरीयां भुजां हैं पांच अध्याय मेरा हृदय और मन है सोहलवां अध्याय मेरा उदर है सतारवां अध्याय मेरीयां जघां हैं अठारवां अध्याय मेरे चर्ण हैं सर्व गीता के जो श्लोक हैं सो मेरीयां नाड़ियां हैं और जो अक्षर हैं गीता के सो मेरेरोम हैं ऐसी जो मेरी शब्दरूपी गीता है तिस के अर्थ मैं हृदय विषे विचारता हूं और बहुत आनंद विषे प्राप्त होता हूं हे लक्ष्मी तू क्या जानती है तेरे मन में यह होगा जो मैं चरण मलती हूं तिस कर श्री नारायण जी को आनन्द प्राप्त होता है हे लक्ष्मी मैं जिस

आनन्द विषे नग्न हूं सो गीता ज्ञान जो हैं तिसमें मग्न हूं। तब श्री लक्ष्मीजी बोली हे श्री नारायणजी जो ऐसा श्री गीता जी का ज्ञान है तिसको सुनकर कोई जीव कृतार्थ भी भया है सो मुझको कहो तब श्रीनारायण जीने कहा हे लक्ष्मी गीता ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ भए हैं सो तुं श्रवण कर। श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी गीता के अध्याय का महात्म्य तो पीछे कहूंगा, अब श्लोक कहता हूं॥ श्लोक–सर्व शास्त्रमई गीता सर्व देव मयो हरी। सर्व तीर्थ मई गंगा सर्व धर्म्म मयो दया ॥ १ ॥ मनों जानत पाप पुण्य देही जानत आपदा। गीता सर्व

कृष्ण जानत माता जाने सुपिता ॥२॥ दोदो लोचनं सर्वानां विद्वानां त्रयलोचनं। सप्तलोचनं धर्मानांज्ञानी अनन्त लोचनं ॥ हे लक्ष्मी पहिले अध्याय का महात्म सुन शिवजी पार्वती को इस तरह वर्णन करते हैं जिस तरह नारायण जीने लक्ष्मी को सुनाया था॥ श्रीभगवानोवाच—हे लक्ष्मी शूद्र वर्ण एक प्राणी था। जो चण्डालों के कर्म करता था और तेल लूणका व्योपार करता था उसने एक बकरी पाली। एक दिन वह बकरी चराने को गया वृक्षों के पत्र तोड़ने लगा तहां सर्पने उसको डसिया तात्काल प्राण निकल गए मरकर उस प्राणी ने बहुत नर्क भोगे फिर बैल

का जन्म पाया उस बैलको एक भित्तुक ने मोललिया वोह भित्तुक उस बैलपर चढ़कर सारा दिन मांगता फिरे जो कुछ भिक्षा मांगकर लावे वह अपने कुटुम्ब साथ मिल कर खावे। वह बैल सारी रात द्वारपर बांधा रहे उसके खाने पीने की भी खबर न लेवे कुछ थोड़ा जैसा भूसा उसके आगे डाल छोड़े जब दिन चढ़े फिर बैल पर चढ़ मांगता फिरे कई दिन गुजरे तो वह बैल भूख का मारा गिर पड़ा मरने लगा पर उसके प्राण छूटें नहीं नगर के लोग देखा करें कोई तीरथ का फलदे कोई व्रत का फलदे पर उस बैल के प्राण छूटें नहीं। एक दिन एक गनका

आई उसने मनुष्यों से पूछा यह भीड़ कैसी है तो उन्होंने कहा इसके प्राण छूटते नहीं अनेक पुण्यों का फलदे रहे हैं तौभी इसकी मुक्ति नहीं होती तब गनका ने कहा मैंने जो कर्म्म किया है, तिसका फल मैं इस बैल के निमित्त दिया। इतना कहते ही बैल की मुक्ति हुई तब उस बैल ने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया, पिता ने उसका नाम सुशर्मा रखा जब बड़ा हुआ तब उसके पिता ने उसको विद्यार्थी किया तब उसको पिछले जन्म की सुध रहीथी वह जाति सुन्दर हुआ उसने एक दिन मन में विचार किया जिस गनका ने मुझ को बैल योनि से छुडाया था

तिसका दर्शन करिये विप्र चलाचल गनका के घर गया और कहा तूं मुझे पहचानती है गनका ने कहा मैं नहीं पहचानती तूं कौन है,मेरी तेरी क्या पहचान है तूं विप्र मैं वेश्या हूं,तब विप्र ने कहा मैं वोही बैल हूं जिसको तैंने अपना पुण्य दियाथा तब मैं बैल की योनि से छूटा था,अब मैं विप्रके घर आय जन्म लिया है, तूं अपना वह पुण्य बता तुमने कौन पुण्य किया है, गनका ने कहा मैं अपने जाने कोई पुण्य नहीं किया, पर मेरे घर एक तोता है वह कुछ सवेरे पढ़ता है,मैं उसके वाक्य सुनती हूं। उस पुण्य का फल मैं तेरे निमित्त दिया था तब उस विप्रने तोते से पूछा

कि तूं सवेरे क्या पढ़ता है, तोते ने कहा मैं पिछले जन्म विप्रका पुत्र था पिता ने मुझे गीता के पहिले अध्याय का पाठ सिखाया था, एक दिन मैने कहा मुझको गुरूने क्या पढ़ाया है तब गुरुजीने मुझे श्राप दिया कि जा रे तूं सूआ होजा तब मैं सूआ भया। एक दिन फन्दक मुझे पकड़ लेगया, एक विप्रने मुझे मोल लिया वह बिप्र भी अपने पुत्र को गीता का पाठ सिखाता था तब मैंने भी वहपाठ सीख लिया एक दिन उस ब्राह्मणके घर चोर पड़े उनको धन तो प्राप्त न हुआ मेरा पिंजरा उठा लेगये उस चोरकी यह गनका मित्र थी मुझे इसके पास आए

दिया,सो मैं नित्य गीताजी के पहिले अध्याय का पाठ करता हूं, यह सुनती है पर इस गनेका की समझ में नहीं आता। जो मैं पढ़ता हूं वही पुण्य तेरे निमित्त किया था,सो श्रीगीताजीके पहिले अध्यायके पाठका फल है। तब उस विप्रनें कहा,हे तोते तूं भी विप्र है,मेरे आशीर्वाद कर तेरा कल्याण हो। सो हे लक्ष्मी इतना कहने से तोते की मुक्ति भई और उस गनका ने भी भले कर्म ग्रहण किये नित्य प्रति स्नान करे और गीता के पहिले अध्याय का पाठ करे। इसकरके मलेरविप्र क्षत्रिय वैष्णों अतीत उस वैश्या की पूजा करने लगे और विप्र अपने

घर गया श्री नारायण जी ने कहा हे लक्ष्मी जो कोई अज्ञान कर भी गीता का पाठ करे या श्रवण करे तिस को भी मुक्ति मिले और इसका फल कितना कहिये अतुल फल है यह पहिले अध्याय का महात्म मैने कहा है और तुमने श्रवण किया है ॥ १ ॥ इति श्रीपदमपुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्रा खण्डे गीता महात्म्य नाम प्रथमो अध्याय सम्पूर्णम् ॥ १ ॥

* दूसरा अध्याय चला *

संजै उवाच–संजै धृतराष्टर को कहे है, हे राजा जी दया कर भरा जो है अर्जुन असुपातों कर पूर्ण हैं

नेत्र जिसके सो रुदन करता है ऐसे विषाद कर व्याकुल जो है अर्जुन तिसको श्रीकृष्ण भगवान बोलते भए। श्री भगवानोवाच—हे अर्जुन ऐसी बिखड़ी युद्ध की ठौर तुझको यह दुःख कहां से आया है यह नीचों की बुद्धि तुमको ना चाहिये। इससे स्वर्ग भी नहीं मिलता और संसार विषे कीरति भी न होगी। हे अर्जुन यह नपुंसकों जैसी तुझको प्रकृति नहीं करनी चाहिये और तूं तत्वकी बात समझता नहीं है परंतप अर्जुन यह हृदय से नीच बुद्धि को त्याग उठ खड़ा हो श्रीकृष्ण भगवान के मुख कमल से वचन श्रवण करके अर्जुन कहता है।

अर्जुनोवाच–हे मधुसूदन जी हे शत्रुनाशकजी हे मेरे सखाजी । भीष्म और द्रौणाचार्य्य यह तो पूजा के योग हैं इनकी पूजा कीजे और कुछ भली वस्तु इनके आगे भेटा रखिये । इनको बानों का प्रहार किस भांत करिये यह तो बड़े महां गुरु हैं बड़े महां भाव हैं इनको मारे से मेरी कल्याण कहां है । इन्द्रियों के भोगों निमित्त इनका घात करीये तो इनको मार जो राजके भोग भोगिये सो भोग इनके रुधिर साथ लपेटे हुए भोगीये और यह बात भी निश्चय कर नहीं जानी जाती जो सर्वथा हमारी ही जीत होए पर यह बात मैं निश्चय जानता हूं कि यह

हमारे सन्मुख धृतराष्ट्र के पुत्र जो खड़े हैं सो इनके मारे से हमारा जीवन भला नहीं और जो आपने जो कहा नीच बुद्धि विषे मत प्राप्त हो सो मैं नीच बुद्धि के पाप को मानता नहीं और मैं ऐसा मूर्ख होगया हूं जो धर्म अधर्म को भी नहीं समझता जो धर्म मुझको किस करके है और अधर्म कैसे है हे प्रभुजी मैं शासना योग हूं मनसा वाचा कर मन कर तुमारी शरण आया हूं। जिस कर मेरी कल्याण होए सो बात निश्चय कर मुझको कृपा कर कहो जी। हे प्रभुजी ऐसे शोक कर मेरीयां इन्द्रियां सूक गई हैं सो बात मैं कोई नहीं देखता जिस से मेरा

शोक दूर होवेजी हे प्रभुजी जो शत्रुओं को मार कर निषकंटक सारी भूमी का राज पाऊं और देवलोक जो स्वर्ग तिसकी मैं राज सामग्री भी पाऊं इनको मार कर तो भी मेरा शोक नहीं जाएगा। मैं जो इनको मारूं सो भूमि के राज की कितनी बात है ॥ संजै उवाच—हे राजन् यह बात ऋषिकेश जो हैं केशवजी तिनको गुरुकेश जो है अर्जुन कहता है। हे गोबिंदजी मैं युद्ध इनके साथ किसी भांत न करूंगा। यह कहकर अर्जुन चुपकर गया संजै धृतराष्टर को कहते हैं हे राजा जी ऐसे दुःख विषे प्राप्त जो है अर्जुन तिसको कृष्ण भगवानजी हंसकर यह

बात कहते हैं ॥ अब सांख शास्त्र का मत अर्जुन को कहते हैं ॥ श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन जो विवेकी पुरुष हैं तिनको किसी वस्तु की चिन्ता करनी नहीं आई तिस वस्तु की चिन्ता नहीं करते। जिनके मरने की चिन्ता तूने करी है सो तेरे कहे मारे नहीं जाते क्या यह अभी उपजे हैं पीछे भी थे और अब भी हैं और आगे भी होवेंगे यह जो बोलन हारा आत्मा है सो अविनाशी है और देह की जैसी तीन अवस्था हैं बालयोवन वृद्ध तैसी चौथी अवस्था देह की मरण है यह तो देहके धर्म हैं सो विवेकी पुरुष आत्मा को अविनाशी जानते हैं और देहका

मरणा ही धर्म है यह जानकर बुद्धिमान किसी का शोक नहीं करते। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन तुझको इन्द्रियों का ज्ञान प्राप्त भया सो यह ज्ञान सुख दुख और शीतउष्णाका दाता है, यह सुख दुख प्राप्त भी होता है और मिट भी जाता है अन्तवत् है, हे अर्जुन तूं इनको सहार हे श्रेष्ठ अर्जुन जिसको इन्द्रियों के सुख और दुख अपनी निह-चलता से चलाय न सकें तिनही पुरुषों ने अमृतपान किया है सोई पुरुष अमर हुए हैं, हे अर्जुन यह जो समस्त देही विषे आत्मा व्याप्या है तिसको तूं अविनाशी जान यह किसी के कहे मारिया नहीं जाता यह अन्तवत् है

शरीर उपजते भी हैं और बिनस्ते भी हैं और आत्मा नित्य है अमर है, वहुड़ कैसा है निराहार है कुछ खाता पीता नहीं और यह आत्मा की मर्यादा भी नहीं कि कितनीक है तिस कारण से हे अर्जुन युद्ध करके कोई कहे अमुके को मैंने मारिया है सो वह दोनों कुछ नहीं समझते नाही मुआ और न किसे मारिया है आत्मा कैसा है कभी जन्मता नहीं और मरता भी नहीं है, और यह भी नहीं जो कभी होता है कभी नहीं होता, और यह भी नहीं आत्मा कैसा अजर है जन्म मरन से रहित है नित्य है अविनाशी है शाश्वत है और पुरातन

हैं और किसी के कहे मारिया नहीं जाता शरीर मरते जन्मते हैं तिनका मरना ही धर्म है परन्तु मरणा आत्मा का धर्म नहीं, हे अर्जुन जिन ऐसा अविनाशी आत्मा नहीं जानियां पछानियां सो पुरुष किसको कहे है कि कोई मारिया कि अमुकने हमें मारिया, देह और आत्मा का संयोग इकट्ठा होना सो किस भांत है सो सुन जैसे पुराना वस्त्र उतारिया और नया पैहर लिया इसी भांत आत्मा पुरातन देह को छोड़कर न्या देह लेता है। बहुड़ आत्मा कैसा है शस्त्रों कर काटा नहीं जाता, अग्नि विषे जलता नहीं और जल विषे डूबता नहीं और पवन कर सूकता

नहीं, आत्मा छेदने काटने से रहित है, जलन से रहित है डूबने से रहित है सूकने से रहित है अविनाशी है सर्व व्यापी है सर्व देहों में भरिया है इसी से स्थान नेहचल कहिये है सनातन पुरातन है बहुड़ कैसा है आत्मा अव्यव है किसी ने देखिया भी नहीं अचिंत है चितव्या नहीं जाता और अकर्त्ता है कुछ किरत काज भी नहीं करता हे अर्जुन जिन्होंने ऐसा आत्मा पछानियां है सो किसकी चिन्ता करे। आत्मा तो ऐसा कहिये है जैसा मैंने तुझे कहा है, हे महाबाहू जो तूं आत्मा को ऐसा न जाने है, तो भी चिन्ता किसी की नहीं करनी आई, जो जन्मया है

सो निश्चय कर मरेगा जो मरे है तिसका निश्चयकर जन्म है। इस भांत समझकर चिन्ता नहीं करनी आई, अब और सुन यह सभी भूतप्राणी शरीरधारी इनके आद अन्त जाना नहीं जाता जो कहां से आए कहां जावेंगे। बीच ही ते देखने लगे हैं जब शरीरों को छोड़ते हैं तो नहीं जानते जो कहां गए, जिन का आद अन्त ना जाना जाए, जो कहां से आए, कहां को गये, तिनकी चिन्ता क्या कीजे इस भांत कर भी चिन्ता करनी नहीं आई। अब और सुन जो इस बोलनहारे आत्मा को देखिया चाहे सो आश्चर्य ही कर देखे और जो कोई कहे सो आश्चर्य

कर सुने भी आश्चर्य। आश्चर्य क्या कहिये जिसका कुछ निर्णय न किया जाय कि यह क्या है जिसकी देह विषे रहते ही धर्म न जानिये जो किया है इस भांति चिन्ता नहीं करनी आई और एक बात इस आत्मा की निश्चय कर जानिये है अविनाशी है इस कारण से हे अर्जुन तूं किसी भूतप्राणी की चिन्ता मतकर तूं क्षत्रिय है युद्ध करना तेरा धर्म है तूं अपने धर्म से मत गिर ऐसे युद्ध विषे कल्याण क्षत्रियों को दुर्लभ है। अपनी इच्छा कर यह सभी योधा आए प्राप्त हुए हैं स्वर्ग के द्वार इनके उघड़ पड़े हैं, हे अर्जुन इस युद्ध के मार्ग कर सुखैन ही

स्वर्ग को जाय प्राप्त होवेंगे और जो तू यह धर्म का संग्राम ना करेगा तो तेरा धर्म भी जाता रहेगा और तेरी कीर्त्ति भी जायगी। अपने धर्म और कीरति को छोड़ कर पाप विषे प्राप्त होवेंगा। जो लोक तेरी कीरति करते हैं सोई लोक तेरी निन्दा करेंगे। जो अर्जुन कुछ नहीं, बल हीन है लोगों विषे जिसकी निन्दा चली तिसको जीवने से मरण भला है और जो योधा तेरे से डरते हैं तुझको महारथी योधा कर मानते हैं सोई योधा तुम को कहेंगे अर्जुन कुछ नहीं, बलहीन है। तुझे बुरे वचन कहेंगे, तेरे पराक्रम की निन्दा करेंगे। इससे उपरान्त तुझे और बड़ा

दुःख ना होगा, जो तूं युद्ध विषे शरीर छोड़ेगा तो स्वर्ग में जाय प्राप्त होवेंगा। जो जीतेगा तो पृथ्वी के राज का सुख प्राप्त होगा। इसलिये हे अर्जुन तूं उठ खड़ा हो युद्ध को निश्चय कर। सुख और दुःख को एक समान जान लाभ और हानिको एक समान जानकर युद्ध करें तो तुझे पाप नहीं लगेगा। हे अर्जुन मैं तुझ को सांख्य शास्त्र का मत सुनाया है, अब बुद्ध योग सुन सो कैसा बुद्ध योग है जिसके सुने समझे से जन्म मरण बन्धन को काट डारेंगा मुक्ति होवेंगा अब प्रथम तूं मेरी बुद्धि सुन जो मैं अपने भगतों साथ कैसा हूं। जो मेरा भगत

मेरी सेवा पूजा भक्ति स्मरण भूलकर भी करे है आगे को पीछे और पीछे को आगे तो तिसको पाप कुछ नहीं मैं क्योंकर मानू हूं जो मेरा भगत मेरे प्रेम साथ मग्न हुआ है इसको सुर्त नहीं है तिसकी साख। जैसे राम अवतार साथ भीलनी की गत प्रेम साथ जूठे बेर भोजन किये हैं हे अर्जुन मेरी गति देखने में थोड़ी है क्या थोड़ी एक तुलसीदल अथवा पुष्पमाल मुझे समर्पण करे अथवा एक बार नमस्कार किया अथवा एकबार मेरा नाम लिया, सो यह देखने को तो थोड़ी है इनका फल बड़ा है क्या फल है जन्ममरण के दुःख को काटकर मेरे अविनाशी पद

विरेले होता है यह जो भक्तों साथ मेरी प्रीति है सो कही है और भक्ति का फल भी कहा, अब जैसी मेरे साथ मेरे भगतों की बुद्धि है सो सुन मेरे भक्तों का केवल एक मेरे चरण कमलों की सेवा साथ प्रीत है मुझ बिना किसी और दूसरे को नहीं मानते और मेरे बिना कुछ मुख से और कहते भी नहीं और ना सुनते ही हैं केवल दृढ़ निश्चय है और जिनको निश्चय मेरे साथ नहीं तिन की बात सुन उनकी मत अनेक ओर भरमती फिरे है, जिस ओर किसे लगाई तिस ओर लगी और वहुड़ कैसे है जिनका निश्चय मेरे साथ नहीं मीठी मीठी बाणी कर

श्लोकों को पढ़ पढ़ लोगों को सुनावते हैं और देवता की भगति उपदेश करे हैं वह अन्धे मूर्ख अपने आप को पण्डित कहाते हैं। हे अर्जुन वेद के बाद कर आप भी मोहे हुए हैं और लोगों को भी मोहित करते हैं बहुड़ कैसे हैं इन्द्रियों के भोगों विषे हैं कामना जिनकी तिनां स्वर्ग को ही पर्म पद कर समझा है सो स्वर्ग जाएके गिरपड़ते हैं सो वह अनिश्चक बुद्धि जिनका निश्चय मेरे साथ नहीं सो कर्म्म सोई करते हैं जिनके किये से बारम्बार संसार विषे जन्म मरण होवे और जिन के करने से कष्ट बहुत होवे और तिस कर्म का तुच्छ फल

स्वर्ग गये बहुड़ गिर पड़े ऐसा जो बुद्धि हीन है जिनकी कामना इन्द्रियों के भोगों विषे है और संसार विषे अपनी प्रभता चाहते हैं इन बातों कर बुद्धि अन्ध भई है जिनकी तिनकी बुद्धि का निश्चय मेरे विषे लगता नहीं और निश्चय मेरे विषे लागे बिना परम सुख जो है समाधि परम कल्याण सो कभी नहीं। अब अर्जुन वेद का वृतान्त सुन वेद की बुद्धि भी तीनों गुणों विषे है। तूं इन तीनों गुणों से अतीत हैं। कैसा है जहां ना शीत होए ना उष्ण होए और ना जन्म मरण होए ऐसा जो आत्मा है सत्य स्वरूप है और नित्य है तूं इस के

साथ जुड़। आत्मा सुख और इन्द्रियों के भोगों का सुख तिन विषे बड़ा भेद है। तिनका दृष्टांत सुन जैसे जलका पात्र कुवां, तालाब, टोबा, नदी इनके विषे एक एक ही कार्य्य होए। जो कूप के निकट जाय तो यत्न करे जल निकाले तब पान कीजै पर भली भांत कूप विषे इश्नान नहीं होता है। वस्त्र भी धोय नहीं जाते और जो तालाब, टोबे, नदी विषे जावे तहां जल पीने का नहीं स्नान वस्त्र धोवते हैं और जब महाप्रलय के विषे जहां सातों ही समुन्द्र एकही समुन्द्र होजाते हैं ऐसे अनन्त जल विषे भली भांत स्नान भी होए जल पान भी होएं वस्त्र भी

धोय इसी भांत आत्मा ब्रह्म साथ जुड़ अनन्त सुख पावे है, इस सुख को मेरे उपासक जो हैं ब्रह्मा नारद तपस्वी सब जानते हैं, तिसका कारण हे अर्जुन ऐसा है जो आत्मा का सुख तिस साथ जुड़,तेरा तो क्षत्रिय धर्म्म है सो कर फल कुछ बांछ नाहीं। हार जीत, एक समान जानकर युद्ध कर। हर्ष शोक से रहित हो इसका नाम समता योग कहिये। हे अर्जुन ऐसे युद्धयोग साथ जुड़ कर पाप पुण्य दोनों को काट डार और बुद्धि योग कर आत्मा साथ जुड़ इस का नाम कल्याण योग कहिये है ऐसे जो विवेकी पुरुष हैं सो फल किसी बातका नहीं बांछते मुझ साथ जुड़ते हैं

जो कुछ फल वांछते हैं सो नीच मत हैं। हे अर्जुन जब तूं मेरे साथ बुद्धि का निश्चय नेहचल करेंगा तब जन्म मरन के बन्धन को काटकर मेरे अविनाशी पद विषे जाय प्राप्त होवेंगा। हे अर्जुन जब मोह के जालको तेरी बुद्धि तोड़ेगी तब जितने शास्त्र सुने हैं तिनसे भी विरक्त होवेंगा। तब तेरी बुद्धि निर्मल होवेगी जब तूं समाध योग के सुख को जानेगा। श्रीकृष्ण भगवान के वचन सुन कर अर्जुन प्रश्न करे है॥ अर्जुनोवाच॥ हे केशव जी जिस की निहचल बुद्धि है तिसके लक्षण कृपा कर कहोजी तिसकी बोली कैसी है समाधि कैसी है लोगों साथ बात

किस भांत करे है और वह चलता किस भांत है और बैठता किस भांत है सो मैं किस भांत समझूं जो यह निश्चय बुद्धि है। इतना सुनकर कृष्ण भगवान जी कहे हैं। श्री भगवानोवाच॥ हे अर्जुन जिसकी कामना किसी बात करने पर नहीं उठती अपने आत्मा को पाए कर संतुष्ट आघाय रिहा है तिसको तूं निश्चल बुद्धि जान, फिर कैसी है जिस की देहको दुःख लगे तो चिंना ना करे और सुख की वांछा ना करे किसी साथ जिस का मोह नहीं और किसी का डर नहीं और किसी साथ बैर नहीं और किसी से क्रोध नहीं होता तिस को निश्चल बुद्धि

जान ॥ फिर कैसा है जिस की किसी के साथ प्रीती नहीं, भली वस्तु पाय कर हर्ष नहीं और बुरी वस्तु पाए कर शोक नहीं तिसकी बुद्धि निश्चल जान। फिर कैसा है जैसे कूकर जो है कच्छू सो अपने हाथ पाओं मुख सभी इन्द्रियां अपनी खोपड़ी में चढ़ाय लेता है तैसेही जिसने सभी इन्द्रियां विषयोंसे वरज के बांध राखी हैं तिसको तूं निश्चल बुद्धि जान। हे अर्जुन यद्यपि विवेकी पुरुष इन्द्रियों को जीतनेका यत्न करे है तो भी इन्द्रियां बलवान हैं मन को ठौर से चलाय देती हैं। हे अर्जुन तिन सब इन्द्रियों को तूं वसकर। किस भांत वसकर सो सुन

मनका निश्चल चेता मेरे विषे राख। मनही कर इन्द्रियां सुरजीत हैं सोई मन मेरे विषे निश्चल राख तब इन्द्रियां आप ही जीतियां जावेंगी जिसके वस इन्द्रियां हैं तिसकी बुद्धि निश्चल जान। और जो मेरे नाम मेरे ध्यान बिना कुछ चितवना, (बात करनी) इस से मनुष्यका किस भांत काज विकड़े है तूं सुन। जो मनुष्य विषयों की बात करे तिस का संग कीजे अथवा अपने मन विषे विषयों का ध्यान कीजे तब विषयों का संग इससे होता है तिस संग से मन विषे काम से आदि लेकर कामना उपजे हैं काम से क्रोध उपजे है क्रोध से लोभ, लोभ से मोह, मोह

से चैतन्य का नाश होता है जब चैतन्य का नाश हुआ तब बुद्धि का नाशहुआ बुद्धि नाश होने से इसका नाशहो जाता है। जब बुद्धि नष्ट हुई तब जैसे और चक्षु जुन हैं तैसे यह पशुहुआ तिस कारण से जो मेरे भक्त हैं सो संसारी मनुष्यों का संग कबी नहीं करते और नाम के बिनां और बात नहीं करते नाम की चित्तवना बिना कुछ और संकल्प नहीं करते यह मेरे भक्तोंको मेरी आज्ञा है। अब अर्जुन मेरे भक्त छादन भोजन का अङ्गीकार कैसे करे सो सुन जैसे मेरी आज्ञासे आए मिलया तैसे ही भोग लिया शोक से रहित और जिनके मनका निश्चल

चेता मेरे विषे होता है तिन पर मैं कृपा करता हूं मेरी कृपा से तिनके छोटे बड़े जो दुःख हैं तनके और मनके उनका नाश होता है। तब तिसका मन अति प्रसन्न होता है तिनकी बुद्धि का निश्चल मेरे विषे होता है। अब जिन की नास्तिक बुद्धि है तिनकी बात सुन हे अर्जुन नास्तिक बुद्धि किसको कहते हैं। जो कहते हैं कहां है परमेश्वर किसने देखा है तिनकी श्रद्धा मेरे विषे नहीं लगती मेरे विषे श्रद्धा लगे बिना शान्ति नहीं और शान्ति के बिना कोई सुख नहीं। नास्तिकबुद्धि सदा दुखी रहते हैं। हे अर्जुन जो कोई इन्द्री विषियों को चलें तिसके पीछे मनको न

जान देवे जो तिसकी बुद्धि किस भांति है सो सुन जैसे
का जो है बेड़ी। नदी के परले किनारे चलती है
पवन झखड़ आवता है तो नावका को किनारे
लगने देता नहीं जिधर किधर जाए लागती है इसी भांत
इन्द्रियों के पीछे मन को ना जाने दीजे तिस कारण ते
हे अर्जुन प्रथम तूं इन्द्रियों को वसकर जिन पुरुषोंने इन्द्रियों
को अपने अर्थों से वर्ज राखी हैं अपने वसकरी हैं तिनकी
बुद्धि तूं निश्चल जान। हे अर्जुन अब और सुन मेरे सिमर्ण
भजन की वार्ता का स्वाद जो है तिसकी संसारी मनुष्यों
को सुर्त नहीं तिनके भाने मेरा भजन रात है मेरी ओर

ते सोए रहे हैं और संसार के विषयों में सावधान हैं तिनको यह दिन होते हैं। जिस विषे मनुष्य जागते हैं और संयमी जो मेरे भक्त सो तिस ओर सोए रहे हैं तिनके भाने संसार की बात रात्रि है और मेरे भक्त हैं मेरे भजन विषे जागते हैं सावधान हैं मेरा जो पूर्ण भक्त है तिसके लक्षण सुन जैसे समुद्र अपने जल कर पूर्ण है और निश्चल है तैसे ही मेरा भक्त पूर्ण और नेहचल चाहिये। वह कैसा है जिसकी कामना मेरे भजन बिना किसी बात को नहीं चाहती ऐसा जो निस्प्रेही और अबांछी निरअहंकार ममता से रहित सो शांति पद विषे लीन है और शांति

तिस विषे लीन है हे अर्जुन यह मैंने तुझको ब्रह्मस्थिति कही है। जो ब्रह्म में है तिसका यह स्थित स्वाभाव है जिसको यह स्थित स्वाभाव प्राप्त हुआ है सो फिर माया के मोहकर कभी नहीं मोहा जाता क्यों नहीं मोहीता सो सुन, वोह माया के पार निर्बान ब्रह्म पद विषे जाए प्राप्त हुआ है ॥ इति श्री भगवतगीता सुपनिषद सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्बादे शांख्य-योग नाम द्वितीय अध्याय ॥ १ ॥

दूसरे अध्याय का महात्म।

श्रीनारायणोवाच—नारायण जी कहैं हैं हे लक्ष्मी तूं

श्रवण कर, दक्षिण देश में एक पुरण नाम नगर है वहां एक देव शुसरमा बड़ा धनपात्र रहता था और साधु सेवा करता था एक दिन साधों को कहने लगा हे संतजी मुझको श्रीनारायण जी के जानने का ज्ञान उपदेश करो जी जिस करके मेरी कल्याण होवे मैं मोक्ष पदवी पाऊं ऐसे संत सेवा करके बहुत दिन बीते तहां एक बाल नामा ब्रह्मचार्य आया उसकी सेवा बहुत करी और बेनती करी हे सन्त जी मुझे कृपाकर श्रीनारायणजी के पावने का ज्ञान उपदेश करो, जिस कर मेरे जीवन की कल्याण और मुक्ति होवे तब बाल ब्रह्मचारी ने कहा मैं तुझे

गीताजी के दूसरे अध्याय का पाठ सुनाता हुं उसके सुनने से तेरी कल्याण होवेगी तब देव शुसरमा ने कहा श्रीगीताजी के दूसरे अध्याय के सुनने से कोई आगे भी मुक्त हुआ है तब बाल ब्रह्मचारी ने कहा मैं तुझे एक पुरातन कथा सुनाता हूं तूं श्रवणकर। एक अयाली बन मैं बकरीयां चराता था और वहां मैं भजन किया करता था, एक दिन रातको अयाली बकरीयां लेकर घर को चला। रास्ते मैं एक सिंह बैठा था एक बकरी सब से आगे चली जाती देख कर सिंह भाग गया तब वह अयाली यह आश्चर्य देख कर बड़ा चकित हुआ और मैं भी वहां

आए खड़ा हुआ उस चरवाले ने मुझे देख कर कहा मैंने यह आश्चर्य देखा कि बकरी को देख कर सिंह डरके भाग गया है तुम सन्त त्रिकालज्ञ हो यह वृत्तांत मुझे कहे सुनावो यह क्या चरित्र भया है तब ब्रह्मचारी ने कहा हे अयाली मैं तुझे एक पिछली वारता सुनाता हूं यह बकरी पिछले जन्म डैन थी, जाती इसकी सुन्दर थी जब इसका मरता मरगया तब यह बड़ी डैन भई जिस सुंदर लड़के को देखे तिसको खा लेवे और यह सिंह पिछले जन्म फन्दक था वे पंछी पकड़ने बाहर गया और डैन भी बन को गई थी, तहां डाइन ने उस फन्दक को खा

लिया अब वही फंदक सिंह भया और वह डाइन यह बकरी भई, सिंह को पिछले जन्म की खबर है इस निमित्त कर बकरी देखकर सिंह ने जाना कि अब भी मुझे खाने आई है तब अयाली ने कहा, मैं पिछले जन्म कौन था तब ब्रह्मचारी ने कहा तूं पिछले जन्म चंडाल था तब अयाली ने कहा हे ब्रह्मचारी जी कोई ऐसा उपय भी है जिसकर हम तीनों ही इस अधम देह से छूटें। तब ब्रह्मचारी ने कहा हम तुमारे तीनों का उद्धार करते हैं एक वार्ता मेरे से सुनों। प्रथम तो एक पर्वत की कन्दरा में एक सिला थी तिसपर श्रीगीताजी का दूसरा अध्याय

लिखा हुआ था मैंने तिन अक्षरों को उस सिला पर देखा था अब मैं तुम्हारे को मन बच कर्म करके सुनाता हूं। तुम श्रवण करो। तब ब्रह्मचारी ने गीताजीके अक्षर सुनाए तब उसी समय तत्काल ही आकाश से विवान आए तिन सभनों को विवानों पर चढ़ाकर बैकुंठ लोक को लगये। अधम देह से छूटकर देवदेही पाई और देव सुशर्मा भी सुनकर गीता ज्ञान को मुक्त हुआ देवदेही पायकर बैकुंठ को गया। तब श्रीनारायण जी ने कहा हे लक्ष्मी जी मनुष्य श्रीगीताजी के ज्ञानको पढ़ सुने तिसका फल क्या वर्णन करें श्रीगीताजीके श्रवण अथवा दर्शन के क...

से मुक्ती को प्राप्त होते हैं और पाठका फल अधिक है ॥
२॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तराखण्ड
श्रीगीता महात्म्य द्वितीय अध्याय समाप्ता: ॥ २ ॥

* अथ तीसरा अध्याय *

अर्जुनोवाच ॥ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् जी से प्रश्न
करे है । हे जनार्दन जी । हे केशवजी यह जो निर्वाण पद
ब्रह्म पद सभ से श्रेष्ठ है तब घोर भयानक कर्म जो यह
युद्ध है इस विषे मुझको क्यों जोड़ते हो । मिले हुए वचन
कहिकर मेरी बुद्धि क्यों मोहते हो । कहां निर्वाण पद, कहां
युद्ध करना, एकबात निश्चय कर कहो जिस से मेरी कल्याण

होए । अर्जुन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवानजी बोलते भये । श्रीभगवानोवाच ॥ हे निहपाप अर्जुन पहिले ही जो मैंने लोगोंको ज्ञान योग कहा है योग साथ जुड़ रहिना कहा है, कर्म्म योगियों को कर्म्म योग कहा है हे अर्जुन जो कोई सभ कर्म्म करने त्याग बैठ कुछ आरम्भ ना करे और कहे कि मैं नेहकर्मी हूं संन्यासी हूं सो पुरुष भूल कर कहे है ना वह संन्यासी है ना नेहकर्मी है । जो कोई देहधारी है सो एकच्छण भी नेहकर्मी नहीं । माताके गर्भ में आवने से लेकर मरणे प्रयन्त सदा कर्म ही करे है नेहकर्म कभी नहीं । यह मायाकी रची हुई जो देह है सो इसके वश

में नहीं माया के वस है। हे अर्जुन अब ऐसे योगी जो हैं वैरागी तिनकी बात सुन। कैसे हैं जो बाहर की इन्द्रियों को संयम करके रोकते हैं और चौकड़ी मार बैठते हैं और मन कर इन्द्रियों के भोगों की चितवना करते हैं कि होवे तो खावें और पहरें। सो ऐसे योगीश्वर पाखंडी हैं। और जो ऐसे हैं सो तिन से भले हैं कैसे जो बाहर की इन्द्रियां कर कर्म करे हैं और मनका निश्चल चेता मेरे विखे राखते हैं वह श्रेष्ठ हैं तिस कारण से तूं क्षत्री है युद्ध करना तेरा धर्म है। इन्द्रियों कर युद्ध को कर और मनका निश्चल चेता मेरे मैं राख, हे अर्जुन कर्म किये बिना देह भी नही

रहती और क्या कहिये ॥ श्लोक ॥ जगन्नाथ निमिते कर्म्म सो नेहकर्म्म निरबंधनः ॥ लोककर्माहठ संदेहजन्म जन्म वह भोगते ॥१॥ हे अर्जुन जग रूप जो भगवान है सो मैं हूं जो मेरे से अलग कर्म करे है सो बंधन में पड़ते हैं तिसकारण से हे कुन्तीनन्दन अर्जुन मेरी आज्ञा मानकर तूं कर्म्म कर और फल कुछ वांछि नहीं अब यज्ञ मार्गकर जो लोग जगत पुरुष भगवान को जो जन पूजन करते हैं तिनका प्रकार कहिते हैं सो सुन । हे अर्जुन जब ब्रह्माजी ने इस संसार को उत्पन्न किया तब सर्व यज्ञ करने की रचना बनाई और यज्ञों की सामग्री भी

उपजाई और ब्रह्माजी ने मनुष्यों को यह आज्ञा करी जो हैं मनुष्यो इन यज्ञों की सामग्री कर महा पुरुष भगवान को पूजो । और साथ ही जो भगवान के अंग हैं सभा देवता तिनको भी पूजो । और जो कुछ तुम बांछोगे सो देवता तुमको मन बांछत फल देवेंगे सो मनुष्य देवताओं को पूजने लगे और मनुष्यों की कल्याण देवतों से है । श्लोक । जो भजन कराहिं प्राणी छाए पूजा देवता । ते मुक्त सगल पापाहि एह वचन वच कर्म यह ॥ ॥ अनहोए पूजा कराहि भोजन ते अहुषा पाप करे तन्त्र बाड़ी जीय मृतक तौ पाप आए भोगते ॥ २ ॥

हे अर्जुन देवता मनुष्यों के मन वांछित फल देने को सामर्थ हैं और मनुष्यों की कल्याण देवतों से हैं जो कोई मनुष्य देवता के दिये बिना आपही भोजन करे सो देवता का चोर कहिये है और जो मनुष्य मुझको भोग लगायकर मेराप्रसाद जानकर अन्नभोजन करे है सो सर्व उपाधि से मुक्त है और जिस प्राणी ने मेरे स्मर्पण किये बिना आप ही भोजन करलिया है सो प्राणी सर्व पापों को भोगता है। कौन पाप सो सुन। जो जीव खेती करते समय मुए हैं और चक्की विखे,उखली विखे चुल्हे विखे बुहारी सांथपैरों चलते समय सोवते समय इन ठाहरों

विषै जो जीव घात होते हैं तिनका पाप तिनके माथे पर होता है। जो प्राणी मेरे समरपे बिना आप ही भोजन करे है। अब हे अर्जुन परमेश्वर के पूजने से संसार को जो कल्याण होता है सो सुन । सब शरीरधारी जो भूत प्राणी हैं तिनकी उत्पत्ति अन्न से होती है प्रथम यह पुरुष अन्न खाते हैं तिससे वीर्य्य होता है और जो इस्त्रियां अन्न खाती हैं तिससे रक्त उपजे है तिसकी रक्त और वीर्य्य के संग देह की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार अन्न से देह उत्पत्ति होती है और अन्न की उत्पत्ति मेघ से होती है। मेघ यज्ञ करने से उत्पन्न होता है और यज्ञ

कर्म्म किये से उपजे है। और यज्ञ करने की विधि वेदों से जानी जाती है। और वेद पारब्रह्म विष्णुसे उपजे हैं। तिस कारण से सर्व व्यापी जो है ब्रह्म सो नित्य ही यज्ञ करके पुजने योग्य है। जिसके पुजन किये से संसार की कल्याण होती है। जो ऐसे कल्याण रूप पारब्रह्म को पूजै नहीं और अपनी इन्द्रियों के लिये रसोई करते हैं तिनका जीवना निसफल है। अब जिनकी प्रीति आत्मा साथ लगी है सो आत्मा लाभी हैं। और जो आत्मा के लाभ को पायकर त्रिप्त अघाए रहैं और जो आत्मालाभ कर संतुष्ट भये हैं तिनको कोई कर्म्म करना नहीं चाहिये

तिन को भले बुरे कर्म्म किये का फल नहीं अनकिये से कुछ पाप भी नहीं। किये से कुछ पुण्य नहीं। जो प्राणी आत्मा के लोभी हैं तिनका संसार के मनुष्यों के साथ कुछ प्रयोजन नहीं रहता। अब अर्जुन बहुड़ कर्म्म कहे हैं सो सुन जो भले कर्म्म हैं स्नान से आदि लेकर कर्म नहीं त्यागने चाहिये। जो सत्त कर्म करे और फल की वांछा न करे सो पुरुष इन सत्त कर्मों के मार्ग कर पार-ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन भले कर्म जो हैं सत्त कर्म स्नान से आदि लेकर इन सत्त कर्मों को करते २ राजा जनक विदेही से आदि लेकर बहुत मनुष्य सिद्ध

अवस्थाको प्राप्त हुए हैं तो भी लोगोंकी कल्याण के निमित्त कर्म करते ही रहे। जो कर्म श्रेष्ठमनुष्य करते हैं तिनको देख करवही कर्म और भी लोग करते हैं। इसकारण से महाभाव विदेह अवस्था विषे प्राप्त भए हैं तो भी सत्कर्म नहीं त्यागे क्यों जो और लोगों को सिद्ध अवस्था नहीं प्राप्त हुई और सत्त कर्मों का त्याग करेंगे तब लोगों के सब कर्म भ्रष्ट होजावेंगे, पशू पंछी जून की भांत मनुष्य होवेंगे। इसी कारणसे महांभाव शुभ भाव करते रहते हैं। हे अर्जुन मुझको देख जो मुझको त्रिलोकी विषे किसी कर्म करने के साथ प्रयोजन नहीं। पर जो कुछ मैं सत्त कर्म करूंगा

तब मुझको कुछ पुण्य न होगा। और अन्य किये से कुछ पाप न होगा पर मैं लोगों की कल्याण के निमित्त स्नान गायत्री सन्ध्या तर्पण करता हूं और ब्राह्मणों की गौ की, माता पिता की सेवा करता हूं और भी शुभ कर्म करता हूं लोगों को सत्कर्म सिखाने के निमित्त और जो मैं आलस करके सत्कर्मों को त्याग कर बैठूं तब मुझको देख कर सभी लोग सत्कर्मों का त्याग कर बैठेंगे हे अर्जुन जिस मार्ग में मैं चलता हूं सो मुझको देख कर मेरे मार्ग विषे समस्त मनुष्य चले हैं। और जो तू कहे कि लोगों के निमित्त यह कर्मों का जंजाल क्यों करते

हो लोगों के साथ तुम्हारा क्या प्रयोजन है तिसका उत्तर सुन। हे अर्जुन यह मनुष्य नारायण की मूर्ति हैं जब यह सभी कर्मभ्रष्ट होवें तब जैसे और पशु हैं तैसे ही मनुष्य भी पशुवत होजावें तब अपनी प्रजा की हानि होने से अपनी भी हानि होएगी। इस निमित्त मैं अपनी प्रजा के कल्याण के लिये सत्कर्म करता हूं और प्रयोजन मुझको कुछ नहीं। तिस कारण से हे अर्जुन जो कोई विवेकी पुरुष होवे सो सिद्धि अवस्था को भी प्राप्त भया है तो भी चाहिये जो लोगों की कल्याण निमित्त सत्कर्मों का त्याग न करे और अपनी बुद्धि सिद्ध अव-

स्था को प्राप्त हुए का और संसारी लोगों को भेद से न देखे। और लोगों को यह भी न कहे जो सत्त कर्म करने कुछ नहीं। सत्कर्मों की निंदा न करे। क्यों लोग तो सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए नहीं और सत्कर्मों का त्याग कर देवें तब कर्म्म भ्रष्ट होजावेंगे इसी से जो प्राणी सिद्ध अवस्था को प्राप्त भये हैं वह पुरुष और संसारी लोगों को सत्कर्मों से भ्रष्ट न करे यह मेरी आज्ञा है। सिद्ध को भी सत्य कर्म्म करने चाहियें। अब अर्जुन और सुन जिन पुरुषों के भले बुरे कर्म्म होते हैं सो यह देह इन्द्रियां और मन माया प्रकृति से उत्पत्ति हुवे हैं। और माया भी

यही है अहंकार । और जो अहंकार बुद्धि कर पुरुष मूढ़ हुआ है जो मनुष्य अहंकर से कहिता है कि यह कर्म मैंने किया है । हे महाबाहु अर्जुन इन गुणों और कर्म्मों का तत्व तूं मुझ से श्रवण कर । यह देह इन्द्रियां जैसे २ इनके स्वभाव हैं तैसा तैसा कार्य्य इन से होता है और आत्मा साक्षी भूत है और कर्त्ता है गुणों विषे वर्त्ते है इतना समझ कर हे अर्जुन तूं न्यारे का न्यारा रहो अब अर्जुन और सुन । श्लोक । भाव अभावी कर्मकर राखे हर प्रभु चीत । उश्न शीत व्यापे नहीं कारण करते कीत ॥१॥ आत्म है सर्वत्र में घट २ भोगी आप ।

सभ मैं अधिकारी प्रभु तिस ही को तूं जाप ॥ २ ॥मन राखहु चरणारबिंद त्यागो आशा रीत।हो अचिंत पेखो दरस निरबासन प्रभु कीत ॥ ३॥ चर्ण कमल मन मैं बसै इच्छा धरहू न कोय। चिंता ममता त्यागकर बुद्धि सफल यूं होए ॥ ४॥ यह मार्ग तुझको कहुं सुनिये। हित चित्त लाय। प्रीत भावकर माहि बसै दुःख पाप सभ जाय ॥ ५॥ जो यह कथा मानै नहीं निन्दा द्रुतीया जान। ते अज्ञानी अन्ध मत बांधे किरत कमान ॥ ६॥ हे अर्जुन तूं सर्व अपने कर्म मुझ विषे अर्पण कर। और जितने देह धारी आत्मा हैं सारे तिनका ठाकुर प्रभु जो मैं हूं। इस

कारण से मेरा नाम अध्यात्म है अध्यात्म कहिये सर्व आत्मा का अधिकारी ऐसा ईश्वर जो मैं हूं, सो तूं मनका निश्चल चेता मेरे में राख। और निरास हो आशा किसी फलकी ना कर। और चिन्ता ममता को त्यागकर युद्धकर यह मार्ग जो मैंने तुझको कहा है सो इस मेरे मार्ग को श्रद्धा संयुक्त मन विषे रखकर मुझको निरसंशय हो आप मिलैंगा। और जो प्राणी इस मेरे मार्गको मानते नहीं और निन्दा करते हैं सो कैसे हैं सो सब से अज्ञानी अंध मत मूढ़ मूर्ख हैं। अब अर्जुन और सुन जैसी प्रकृति का जीव माया ने उत्पन्न किया है तैसाही तिससे कर्म होता है सभी भूत

प्राणी स्वभाव के वस हैं अपने वस नहीं। इस बातको समझ कर ना किसी को भला कहिये और बुरा भी ना कहिये। कोई भला करे कोई बुरा सबका साखी भूत होकर संसार का कौतुक देखे। इस से सदा आत्मपद विषे लीन रहिये। अब अर्जुन और सुन यह असाधरूप जो इन्द्रियां हैं तूं इनके भोगों की ओर मत जा यह हर्ष शोक की दाती हैं और जैसे वाट मारने हारे चोर होते हैं तैसे ही इस मेरे मार्ग के मारने हारी यह इन्द्रियां चोर हैं। तूं इनके भोगों की ओर मत जावें। श्रीकृष्ण भगवानके वचन सुनकर अर्जुन बोलता भया॥ अर्जुनोवाच॥ हे यादवों के पति

कृष्ण भगवान जी इस बात को तो सभी मनुष्य जानते हैं कि पाप किये से दुःख मिलता है। हे प्रभुजी पापकर्म इन मनुष्यों से बल कर कौन करावे है सो मुझको कृपाकर कहो जी ॥ श्रीभगवानोवाच ॥ हे अर्जुन काम और क्रोध इनकी रजो गुण से उत्पत्ति है। इनका आहार भी बहुत है यह कभी तृप्त नहीं होते और यह पाप रूप हैं मनुष्यों के यह शत्रु हैं। यह दोनों मनुष्यों को बांधकर पाप कराते हैं ॥ अर्जुनोवाच ॥ हे भगवान इनका वृत्तान्त मुझको विस्तारपूर्वक कहो जो इनका जन्म किसप्रकार होता है और जन्म कर बड़े कहां होवें और इनका आत्मा

कौन है इनका आचार कैसा है सब विस्तार पुर्वक कहो ॥
अब इनका उत्तर श्रीकृष्ण भगवान जी कहते हैं श्री
भगवानोवाच ॥ हे अर्जन यह सूक्ष्म शत्रु हैं। और देह
इन्द्रियां मन इन विषे इनका निवास है। सूक्ष्म रूप धार
कर यह देह विषे आगए हैं यह तो इनका निवास कहा
है। अब इनकी उत्पत्ति सुन। भले स्वाद खाए से, उत्तम
सुगन्धता के सूघने से और भले वस्त्र पैहरने से काम
की उत्पत्ति होती है। अब क्रोध की उत्पत्ति सुन अहं-
कार अभिमान करना कि मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं इस
से क्रोध की उत्पत्ति होती है। हे अर्जन यह बड़े दुष्ट हैं।

अब इनकी करतूत सुन । पहिले हर्ष प्रसन्नता से काम उपजया तब अपनी स्त्री से संग किया जब वीर्य्य गिरा तब मृतक की न्याईं चिंतातुर होएकर गिरपड़ा सोए गया यह अपनी स्त्री के संग किये का फल है। फिर संतान हुई तिस से अति मोह को प्राप्त होयके अज्ञान अन्धेर और अन्धा हुआ जन्म मरण का अधिकारी हुआ यह अपनी स्त्री के संग का फल है। और कदाचित परनारी साथ प्रीत करी या संग किया किसी दूसरे पुरुष ने देखा तो भी खवारी। राजा के हाथ आया तो दंड देता है धन छीन लेता है कैद करता है राज दंड मरना पड़ा परलोक

की सासना बहुत सहारनी पड़ी। जम जंदार सासना देवेगा परलोक बिगड़ गया बाकी कुछ ना रहा। यह तो काम की करतूत कही अब हे अर्जुन क्रोध के लक्षण और करतूत सुन। अहंकार कर मन्द कर्म से अन्ध भरी जो देह मानुष्य की है विषियों के वास्ते या दूसरे किसी कार्य्य के वास्ते किसी को मारया या किसी को कष्ट दिया तब राजा ने पकड़कर खूब दण्ड दिया बांधिया पदार्थ छीन लिया और परलोक में जम की सासना सहेगा। यह क्रोध की करतूत कही; हे अर्जुन काम भी और क्रोध भी दोनों भय के दाता हैं। बारम्बार मनुष्य को मोहते, भ्रमावते

रहते हैं। फिर कैसे हैं यह दोनों पापरूप हैं, और निपट नीच हैं,हे धनंजय अर्जुन यह मनुष्यों के सदा ही छिद्र देखते रहते हैं। जैसे चोर अपना समय देखता रहता है जो कब घर का धनी सो जावे कब मैं द्रव्य लेऊं इसी भांत छिद्र देखते रहते हैं। और रजोगुण से इनकी उत्पत्ति है और आत्माके मारने को सावधान हैं मनुष्यों में यही दोनों उपद्रव हैं। जिस प्रकार मेरे जानने का ज्ञान इन्होंने छाया है सो सुन। ज्यूं धूएं करके अग्नि छादी जाए है ज्यों आरसी मल करके अछादी जाए और जैसे जाली विषे लपेटा हुआ बालक जन्मता है इसी भांत इन दोनों

ने मेरा ज्ञान अछाद लिया है,और नित्यही यह ज्ञान के वैरी हैं, हे कुन्ती नन्दन अर्जुन दोनों काम और मद कर अपूर रहे हैं पूर्ण कभी नहीं होते। और पापरूप हैं इन्द्रियां और मन और बुद्धि इनके विषे कामका निवास है इनमें वसकर मनुष्यों को मोहित करे हैं तिस कारण से हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन प्रथमे तूं इन्द्रियों को वशकर। इन्द्रियों से आदि लेकर मन बुद्धि चित्तको वश कर, यह पापरूप हैं ज्ञान और विज्ञान को नाश करने हारे हैं॥ अब जिस प्रकार इन्द्रियां जीतियां जावें सो सुन। यह देह जड़ है इस विषे जो चैतन्यरूप इन्द्रियां

हैं। और इन्द्रियों से परे मन है मनकर इन्द्रियां सुरजीत हैं मन से परे बुद्धि है। बुद्धि से परे आत्मा है। सो बुद्धिकर तिस आत्मा के ध्यान साथ जुड़कर हे महाबाहू अर्जुन इसका रूप बड़ा बलवान हो जावे है तिस अपने बल कर महा दुष्ट काम क्रोध तिनको मार डाल तिनको मारकर जय को प्राप्त हो ॥ इति श्रीभगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्यायोग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे कर्म योग नाम तृतीयो अध्याय॥ ३ ॥

* अथ तीसरे अध्याय का महात्म *

श्रीनारायणोवाच ॥ हे लक्ष्मी एक शूद्र महां मूर्ख

अकेलाही एक बन विषे रहिता था बड़े अनर्थों कर कितना ही द्रव्य उसने इकट्ठा किया था किसी कारण कर यूं ही वह पदार्थ जातारहा पदार्थ के जाने से वह शूद्र बहुत चिंतावान रहे और लोगों से पूछे कोई ऐसा कर्म बताओं जहां पृथ्वी में द्रव्य होवे मैं निकाल लूं मुझे फिर वह पदार्थ हाथ आवे। किसी को कहे कोई अंजन बताओं जिसे नेत्र में पायकर पृथ्वी का पदार्थ निकालूं। किसी ने कहा मास मदरा खाया पिया कर। वह वही खोटा कर्म करने लगा चोरी करने लगा एक दिन धन की लालसा कर चोरी करने गया रस्ते में चोरों ने मार दिया इस मृत्यु कर

मरा हुआ प्रेत की जून पाई। वह एक बट के वृक्ष पर रहा करे बड़ा दुःखी हुवा हाय हाय करके रुदन करे। और विरलाप करे। ऐसे हाहाकार करता रहे कहे कोई ऐसा भी होवे मेरे कुल में जो इस अधम देह से छुड़ावे ऐसे हाहाकार करने कर बहुत दिन बीते। इतने में उस शूद्र की स्त्री से पुत्र जनमियां जब उसका पुत्र बड़ा हुआ तो एक दिन अपनी माता को उसने पूछा मेरा पिता क्या व्योपार करता था और देहांत किस प्रकार हुआ है तब उसकी माता ने कहा हे बेटा तेरे पिताके पास पदार्थ बहुत था सो यूंही जाता रहा। वह धनके चले जाने से बहुत

चिंतावान रहे। एक दिन बनको गया कहे किसी का धन चुरा लाऊंगा मार्ग में चोरों ने मारडाला तब उसने कहा हे माता उसकी गति कराई थी तब माताने कहा नहीं।फिर पूछा हे माता उसकी गति करावनी चाहिये! उसने कहा भलीबात है। तब पण्डितोंसे पूछने गया जाकर प्रार्थनाकरी हे स्वामी मेरा पिता एक दिशा में जाकर मृत्यु हुआ है। इसका उपाय कृपा कर कहिये जो उसका उद्धार होवे। तब पण्डितों ने कहा तुं गयाजी जाकर उसकी गया करा तब तेरे पितरों का उद्धार होगा। तब उसने आज्ञा मान कर माता की आज्ञा लेकर गया को गमन किया। प्रयाग

राज का दर्शन स्नान करके फिर आगे को चला रास्ते में एक वृक्ष के नीचे बैठा वहां से उसको बड़ा भय प्राप्त हुआ। वह वृक्ष वही था जहां उसका पिता प्रेतकी जून में प्राप्त हुआ था। उसी जगह में चोरों ने उसको मारा था। तब उस बालक ने अपना गुरुमन्त्र पढ़ा और एक उसका और भी नियम था जो वह एक अध्याय श्रीगीता जी का भी नित्य पाठ किया करता था उस दिन उसने श्रीगीताजी के तीसरे अध्याय का पाठ किया उस वृक्ष के तले बैठ कर। उसके पिता ने प्रेत की जून में सुना सुन के उसकी प्रेत देह छूट गई। देव देही पाई स्वर्ग से

विमान आए। वह विमान पर चढ़कर उसके सामने आया आकर आशीर्वाद दिया। और कहा हे पुत्र मैं तेरा पिता हूं जो मर कर प्रेत हुआ था इस तेरे पाठ श्रवण करने से मेरी यह देव देही हुई। अब मेरा उद्धार हुआ है तेरी कृपा से स्वर्ग को जाता हूं। अब तूं गया जी में अपनी खुशी से जा मेरा उद्धार होगया है। वहां जाय के भी तुमने मेरा उद्धार करना था जो तैंने यहां पाठ मुझको सुनाया है इसी से मेरा कल्याण हुआ। इतना सुनकर पुत्र ने कहा हे पिता जी कुछ और आज्ञा करो जो मैं आप की सेवा करूं तब उस देव देही ने कहा हे

पुत्र देख मेरी सात पीढ़ियां पित्र नरक में पड़े हैं बड़े दुःखी हैं अब तूं श्रीगीताजी के तीसरे अध्याय का पाठ कर के उनको फल दे। वह इस दुःख से मुक्ति पावें वह तेरे बड़े हैं नरक से निकल कर स्वर्ग में पहुंचेंगे। इतना वचन कहिकर वह देव देही स्वर्ग को गया। तब उस बालकने वहां ही तीसरे अध्याय का पाठ किया सब पित्रों को पुण्य देकर वैकुंठ गामी किया तब राजा धर्मराजजी के पास यमदूतों ने जाकर कहा हे राजा जी नरक में तो बहुत से लोक नहीं हैं नरक में तो उजाड़ पड़ी है जो कई जन्मोंके पाप कर्मी थे तिन को विवानों पर बैठायकर श्री

ठाकुर जी के पारखद लेगये हैं तब इतना सुनते ही धर्म-राज उठकर श्रीनारायणजी के पास गया। जहां पतालमें शेषनाग की शय्या बनायके श्रीनारायण जी सोए हुए थे। और श्रीलक्ष्मीजी चरण झस रही थी। वहां जाय राजा ने दंडवत करी और हाथ जोड़कर कहा हे त्रिलोकी नाथ श्रीमहाराज जी। जो जीव जन्म जन्मान्त्रके पापी थे। तिनको तुम्हारे पारखद विवानों पर चढ़ाय के वैकुंठ को लेगये हैं तब नरकों का भुगावना यह दंड किसको देवें। और किस प्रकार दंड दिया करें। तब श्रीनारायण जी ने बहुत प्रसन्न होकर कहा हे धर्मराज तूं दुःखी मत हो। तूं

अपने मन में कुछ बुरा ना मान मैं तुझे एक वृत्तान्त कहता हूं तूं श्रवण कर। यह जो जीव पापी थे इनका पिछला धर्म कोई उदय हुआ है। उस अपने धर्मकर कई महापापी जीव वैकुण्ठ को गये हैं और यह एक आज्ञा में तुझे देता हूं जो जीव श्रीगीताजी का पाठ करे अथवा श्रवण करे या कोई किसी को पाठ किये का फल दानकरे तिन जीवों को तूने कभी नरक नहीं देना। यह तुझको मेरी आज्ञा है यह बात सत्य कर निश्चय से सुन याद रख इतना सुनकर धर्मराज अपनी पुरीको पधारा। आए कर अपने दूतों को बुलाकर कहा, हे जमदूतो जो प्राणी श्रीगीता

जी का पाठ करे या श्रवण करे या पाठ किये का किसी को पुण्य देवे तिस प्राणी को तुम कभी नरक में नहीं पावना। गीताजी के पाठ करने से श्रवण किये से पापी जीव भी बैकुंठ को प्राप्त होवेंगे। जो जीव श्रीगीताजी का पाठ करे या श्रवण करे तिस का फल कहां तक कहें। कहने में नहीं आसक्ता तब श्रीनारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी यह तीसरे अध्याय का फल मैं तेरे ताईं कहा है सो तुने सुना है॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तराखण्डे श्रीगीता महात्म्य नाम तृतीयो अध्याय ॥ ३ ॥

* अथ चतुर्थ अध्याय *

श्रीभगवानोवाच ॥ श्रीकृष्ण भगवान जी अर्जुन को कहे हैं। हे अर्जुन यह जो तुझको ज्ञान उपदेश किया है सो पाहिले मैंने सूर्य्य को कहा था। सो यह योग अवि· नाशी है। सूर्य्य ने अपने पुत्र मनुको कहा था, मनु ने इक्ष्वाकु को कहा था यही ज्ञान योग परम्परा पुरातन चला आया है इसको राजऋषि जानते हैं इसको समझ कर राज कर ही परमपद को प्राप्त होते हैं। दृष्टान्त– आवत हर्ष ना उपजता, जावत शोक न होए। ऐसी करनी जो रहे, ग्रह वन जोगी सोए। हे परंतप अर्जुन

इस योगको वहुत चिरकाल व्यतीत होगया है। अब पुरातन होगया, संसार से नष्ट होगया, मिटगया है। अब सोई पुरातन योग तेरे प्रति कहता हूं। इस करके तेरे प्रति कहता हूं जो तूं मेरा भक्त है, और मेरा सखा है, इस वास्ते यह योग वार्ता तुझको कहता हूं। सो चित्त एकाग्र कर सुन। आई वस्तु का हर्ष ना कर चली जावे तब उसका शोक ना कर एकही जैसा जान। हर्ष शोक से असंग रहे चित्त को स्थिर राखे॥ अर्जुनोवाच–अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी के यह वचन सुन कर प्रश्न करता है। हे महां प्रभुजी तुम्हारा जन्म तो अब वासुदेव के घर हुआ

वधावनेके निमित्त मैं जुग२ विषे अवतार धारण करता हूं। अरु जो मेरे जन्म और कर्म दिव्य जो हैं तिन को जाने। सो दिव्य क्या कहिये। जैसे और देहधारी रक्त बिंद से उपजे हैं तैसे मेरी देह नहीं। जैसे और जीव कर्मों के बन्धन साथ बन्धे देह लेते हैं जैसा जीवों ने कर्म किया है तैसे ही देह पावें हैं! हे अर्जुन मैं ऐसे नहीं जन्म लेता मेरा जन्म स्वच्छ है अपनी इच्छा से प्रकट होता हूं। जन्म तो मेरे ऐसे दिव्य ज्योति स्वरूप हैं और मेरे कर्म भी ऐसे दिव्य हैं। जो मैं करता हूं सो और किसी से करें नहीं जाते। जो मनकी चित्तवना कर भी किये

जाएं तिसका दृष्टान्त दिखावे हैं। प्रहलाद भक्त की रक्षा हेतु नृसिंहरूप होकर थंभ से निकलकर प्रगट होता भया तो कहो किसी ने जाना भी नहीं। हरनाकुश की छाती वज्र से भी कठोर सो नखों से विदीर्ण कर फाड़ डाली कोमल घास की न्याई। और गोकुल के भक्तों की रक्षा निमित्त सात दिन गोवर्धन पर्वत एक हाथ की नन्ही उंगली पर धारण किया और जो मैंने अनेक कर्म्म किये हैं सो दिव्य ही किये हैं। जैसे कोई मनुष्य मेरे जन्म और कर्म्म जो हैं दिव्य तिनको जाने सोई फल पावे सो भी सुन हे अर्जुन सो मनुष्य देह को त्याग कर मेरे परमानंद

अविनाशी पद विषे जाए प्राप्त होता है। फिर जन्म मरण के बंधन में नहीं आवे। अब अर्जुन जिस को मेरे चरणारविंद की भक्ति उपजी है तिसकी बात सुन। कई बहुत जन्म वैरागी हो कर बीते और कई जन्म बीतते भए वैरागी होकर निर्भय होयकर। क्रोध से रहित होए कर और मनका चेता मेरे विषे राख कर बहुत जन्म किसी भांत मेरी उपासना करता रहा होए इन साधनों कर जिनका मन पवित्र हुआ हो, तिनको मेरी प्रेम भक्ति उपजती है। जिसको प्रेम लक्षण भक्ति उपजती है हे अर्जुन तिसके रोम रोम विषे मैं आए निवास करता हूं अब

अर्जुन और सुन। जिसप्रकार कोई मेरा भजन स्मरण करे उसी प्रकार मैं तिसका स्मरण भजन करता हूं और मनुष्य सर्व ही जिस जिस प्रकार से मैंने लगाये हैं तैसे ही वह लग रहे हैं। अब और सुन मैं अपने भक्तों साथ ऐसा हूं, जिस प्रकार मेरे भक्त मुझ साथ हैं और जो तूं कहै सभी मनुष्य तुम्हारा ही भजन क्यों नहीं करते और देवता की उपासना क्यों करते हैं। तिनकी बात सुन देवतों की उपासना करके मनुष्य फल मांगते हैं जो मुझे पुत्र मिले, धन मिले, सो देवता तिनकी कामना पूरी करते हैं, सो देवता थोड़े यत्न किये से प्रसन्न होते हैं इस

निमित्त देवतों की उपासना करते हैं और मेरे में तिस पुरुष की श्रद्धा लागे है जिसके नेत्र ज्ञान रूपी देवी कर उघड़े हुए हैं। जिस को सब कुछ देह प्रपञ्च झूठा ही दृष्टि आवे है। और मेरे को ही सर्व व्यापक सत्यरूप जाने तिसकी श्रद्धा मेरी उपासना विषे लागी है। अब अर्जुन यह जो चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सो यह मैंने ही उपजाए हैं, और इनको भिन्न भिन्न आपो अपने कर्म में कहे हैं। चारों वर्णों से इनके कर्मों का कर्ता अकर्ता अविनाशी और अजन्मा तूं मुझको जान और जो कोई कर्म करता है। सो तिसकी तिस कर्म किये

का सर्वथा कर लेप लगता है और मुझको किसी कर्म्म किये का लेप नहीं लगता, सो इस वास्ते नहीं लगता जो मुझको वांछा नहीं किसी बात की। अवांछी हूं जैसे बालक माटी के खिलौने बनाता है, फिर तोड़ डालता है और बालक को कुछ लेप नहीं लगता। और हर्ष शोक कुछ नहीं करता तैसे ही मुझको किसी कर्म्म का लेप नहीं लगता। और जो प्राणी इस भांत कर मुझको ऐसा कर जाने जो श्रीकृष्ण भगवानजी को किसी कर्म्म किये का लेप नहीं सो मनकर सब कर्मों से अलेप रहेगा। अब हे अर्जुन ऐसा मुझको पहिचान कर तेरा युद्ध कर्म

ऐसा है जिस को मेरी महिमा के जानने का ज्ञान उपजिया है। तिसज्ञानकर तिसको किसी कर्मका आरम्भ नहीं उपजता कामक्रोध से रहित हुआ है। ज्ञान अग्नि कर जिसके सब कर्म जल गये हैं ऐसा जो होवे तिसको विवेकी पुरुष पण्डित कहते हैं। फिर कैसा है वह ज्ञानी पण्डित जिसने सब ही कर्म त्यागे हैं और कर्मों के फल भी त्यागे हैं सो पुरुष ज्ञानरूपी अमृतको पानकर तृप्त रहता है। ऐसा जो प्राणी होवे उस पुरुष को किसी कर्म किये का लेप नहीं निर्लेप है। किसी कर्म का बन्धन नहीं निरबन्धन है। फिर कैसा है जो एक परमेश्वर बिना किसी

को मानता नहीं किसी की आश नहीं करता निरासी है संसारकी वांछा जिसने रोक राक्खी हैं। अविनाशी चित्त जिसका जीतया है आत्मा जिसने और किसी वस्तु की संचना नहीं। जिसके सदाही एकांत और अकल्परूपी है शरीर मात्र जिसका रहा है। शरीर की रक्षा के निमित्त जो कुछ करे है सो तिसको तिन कर्म्मों का कुछ पाप नहीं। फिर कैसा है जो ईश्वर इच्छा से भोजन छादन आए प्राप्त होवे तिसकर संतुष्ट रहे। शीत उष्ण हर्ष शोक से रहित और किसी की जिसको बखीली नहीं और भली बुरी वस्तु पाने से एक जैसा है ऐसा जो है सो निरबंध

कहावे है फिर कैसा है दूसरे को जिसका संग नही ऐसा जो प्राणी है सो मुक्तरूप है और मेरी महिमा के ज्ञान विषे सदा निश्चल है चित्त जिसका। जितने कर्म हैं उतने सभी ज्ञान के समुद्र विषे डूब गए हैं। फिर कैसा है जिसको सर्वत्र ब्रह्म दृष्ट आया है जहां कहां लेन देन खान पान पहिरना जो कुछ देखना सुनना उपजना विनसना इत्यादिक ब्रह्म ही दृष्ट आया है जिसको सो प्राणी ब्रह्म रूप है। वह पुरुष ब्रह्म से उपज कर ब्रह्म विषे लीन हुआ है ऐसी समाधि जिस पुरुष को प्राप्त हुई सो प्राणी ब्रह्म ही कहावे है अब अर्जुन बहुत प्रकार के योग सुन जिस जिस

योग के मार्ग मुझको मेरे भगत पूजते हैं सो सुन। एक तो सार योग ब्रह्मज्ञान योगकर मुझको पूजते हैं जो पीछे कहा है। सर्वरूप ब्रह्म इस भांत। और एक प्राणी सब इन्द्रियां जो नेत्र करण आदि हैं इन सब को मेरे स्मरण के निमित्त संजम करते हैं, एक तो यह योग है। और एक मौनकर रहते हैं एक यह योग है। और एक सर्व इन्द्रियों को रोककर प्राण दसवें द्वार में रोकते हैं एक यह योग है, और एक प्राणी सन्तों साधों देहधारो की सेवा अन्न वस्त्र कर शीत उष्णका निवारण जल अग्नि कर सेवा करते हैं सो यह द्रव्य योग है। और एक तप योग है सो तपका

प्रकार सतारवें अध्याय विषे कहूंगा,और एक यज्ञ योग है जो मुझ साथ जुड़ रहना और मेरी महिमा करनी। एक यह भी योग है क्या महिमा वेद पढ़ने शास्त्र पढ़ने, विश्न पदे गावने, मेरे नाम का कीर्तन करना,राम,कृष्णगोबिंद हरी,नारायण,परमानन्द, अच्युत, अबिनाशी,करुणाकर इत्यादिक नाम जपने वाले नर्क से बच जाते हैं,हे अर्जुन श्रद्धा ही यज्ञ कहावे है। हे अर्जुन जो मनुष्य मेरी महिमा अपने मन में ही एकान्त वासी होकर करते हैं तिनको भी किसी कर्म का लेप नहीं। हे अर्जुन ऐसा मुझ को समझकर, तेरा कर्म युद्ध करना है। क्यों तूं क्षत्री है

सो तू अवाछी होकर युद्ध कर। यह तेरा कर्म है तुझको भी किसी कर्म का दोष नहीं लगेगा। और सुन जिसके जाने मूर्ख जीव पण्डित होते हैं और बड़े २ पण्डित भी जानते नहीं औरों की क्या कथा सो कर्म्म मैं तेरे ताईं कहता हूं, जिसके जाने से दुःखदायक जो संसार बन्धन है तिस से मुक्ति होवेगा। हे अर्जुन जो विचार कर स्तुति करना इसका नाम ज्ञान यज्ञ है एक जीत यज्ञ है। और एक प्राण अपानवायु को इकट्ठा कर प्राणायाम करते हैं एक यह यज्ञ है। और एक क्रम क्रम से एक २ ग्रास घटावते हैं। यह जितने प्रकार के सभी यज्ञ कहे हैं यह सभी पापों

का नाश करते हैं इन सब यज्ञों में से जिस यज्ञकर पुजे तिसी कर मुझको प्राप्ति होवेंगे तिसका जीवना अमृत के समान है, मेरी कृपाकर और जो कुछ वह भोजन करता है तिसको भी अमृतरूप है और देहको त्यागकर जो सनातन परे ते परे है तिससे पर और कुछ नहीं सो ऐसे मेरे सनातन ब्रह्म को पावेगा। हे कुरवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन मेरे पूजे बिना इस लोक विषे भी सुख नहीं परलोक की बात क्या कहिये। हे अर्जुन यह बहुत प्रकारके यज्ञ मैंने पहिले ही कहे हैं इनके जानने से तूं मुक्ति होवेगा अब इन यज्ञों विषे श्रेष्ठ यज्ञ जो है सो सुन। हे परंतप पांडव

यह दर्व यज्ञ से आदि लेकर सभी यज्ञ मैंने कहे हैं । इन समस्त यज्ञों से श्रेष्ठ मेरी महिमा जानने का जो यज्ञ है सो श्रेष्ठ है । और जितने और यज्ञ करे सो ज्ञान पावने के निमित्त करे हैं और जब ज्ञान उपजे तब सभी यज्ञ उदय होजाते हैं, जैसे वृक्षके फल लगे से फूल गिरजाते हैं तैसे यह भी मिटजाते हैं । अब जिसको मेरी महिमाका ज्ञान मेरी कृपा से होवे है तिससे और कोई ज्ञान पाया चाहे सो क्या विधि करे सो सुन । प्रथमे तो सत्तगुरू की न्याईं तिसकी शरण आयकर दोनों हाथ जोड़ परम नम्रता से तिसके चरण कमलों को नमस्कार कर मुख से मेरा नाम

लेवे श्रीराम, श्रीकृष्णजी, श्रीगोपालजी ॐनमो नारायण जी, राधाकृष्णजी, परमेश्वर की न्याईं जानकर अधीन होवे तिस आगे बेनती करे, हे प्रभुजी ! हे गुरुदेवजी कृपा करो जी श्रीभगवान के जानने का ज्ञान मुझे दान करोजी तब ज्ञान के देने हारा जो है ज्ञानी तिसको ज्ञान श्रवण करावे, और ज्ञान किस तरह श्रवण करावे सो सुन। हे पांडव अर्जुन जिस ज्ञान के जाने से फिर माया मोह व्याप नहीं सक्ता सो ज्ञान जिसके जाने से सब भूत प्राणियों विषे एकही आत्मा ब्रह्म व्यापिया जानेगा दूसरा भेद मिट जायेगा सो ज्ञान है अब इस ज्ञान का फल

सुन जितने पाप जान अजान किये हैं तिन पापों का फल जो है दुःख सो तिन दुःखों से ज्ञान नाव में चढ़के पार पड़ेगा जिसप्रकार लकड़ियों के अम्बारों को अग्नि जलाये के भस्म करे है तैसे ही ज्ञान अग्नि मोह को जलाये के भस्म करती है। और ज्ञान के समान दूसरा पवित्र कुछ नहीं। श्लोक ईंधन ज्ञानस के लिये पावक चखम में लाए। ज्ञानवैसंत्र प्रगट होए, कर्म पाप जल जाए॥ ३॥ हे अर्जुन ज्ञान महां पवित्र है ज्ञान के समान कुछ नहीं लगता सो ज्ञान कब उपजता है मेरे योग साथ जुड़ने के प्रसाद कर चिरकाल तक जो मेरे ध्यान साथ

जुड़ रहे तब तिसको आत्मा से ही ज्ञान उपजं आवे है। जिसको मेरे ज्ञान पावने की श्रद्धा होए सो सावधान हो कर पढ़े सुने समझे, इन्द्रीयों को बस करे सो पुरुष ज्ञान को पावे। ज्ञान पाए से परमशांति जो परम सुख है तिसको तत्कालही प्राप्त होते हैं और जो ज्ञानी पुरुष हैं तिनको मेरे ज्ञान पावने की वांछा नहीं जिसके आत्मा विषे संशय है उस पुरुष का आत्मा नाश को प्राप्त होता है। ना तिसको इस लोक में सुख ना परलोक में,और जो मेरे योग साथ जुड़े तिस से कोई कर्म नहीं उठता और ना तिनको कोई संशय ही व्याप सकता है ऐसा जो है योगी

ज्ञानी तिसको कोई चलाये हलाये नहीं सकता तिस कारण ते हे अर्जुन तुझको तेरे हृदय ही ते अज्ञान का कारण संशय संदेह उपजता है सो तूं हृदय ही ते ज्ञान नाम खड्गलेकर इस संशय संदेह को काटडार और उठ खड़ा हो। इति श्री भगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे कर्म संन्यास योगो नामचतुर्थो अध्याय।४।

अथ चौथे अध्याय का महात्म। श्रीनारायणोवाच॥ हे लक्ष्मी जी पुरुष श्रीगीता जी का पाठ करते हैं तिनके साथ छुहे से अधम देह से छूट कर विवेक को प्राप्त होवे है तब लक्ष्मीजी पूछे है श्रीमहाराज जी श्रीगीताजी के

पाठ करने वाले साथ छुहकर कोई जीव मुक्ति भी हुआ है! तब श्रीभगवानजी ने कहा हे लक्ष्मी तुमको एक कथा मुक्तिहुए की पुरातन सुनाता हूं। तूं श्रवण कर भागीरथी गङ्गाजी के किनारे पर श्रीकाशीजी नगर है वहां एक वैश्नों रहिता था वह श्रीगङ्गाजी में स्नान कर श्रीगीताजी के चौथे अध्याय का पाठ किया करता था। और उस साधू के पास तपस्या ही धन था, माया का जञ्जाल कुछ नहीं था, एक दिन वह साधू बन में गया वहां वेरीयों के दो वृक्ष थे उनकी वहां बड़ी छाया थी. वह साधू वहां बैठ गया और बैठते ही उसको नींद आगई। एक बेरी

से उसके पांव लगे और दूसरी के साथ सिर लग गया। वह दोनों बेरीयां आपसमें कांपकर पृथ्वी पर गिरपड़ीं, पत्तेउन केसूक गये परमेश्वर के करने से वह दोनों बेरीयां ब्राह्मण के घर जाय पुत्रियां हुई, हे लक्ष्मी बड़े उग्र पुण्योंकर मनुष्य देह मिलती है फिर ब्राह्मण के घर जन्म। उन दोनों लड़कियों ने तपस्या करनी आरम्भ की। जब वह दोनों बड़ी हुई तब उनके माता पिता ने कहा हे लड़कियों हम तुम्हारा विवाह करते हैं। तब उन दोनों ने माता पिता से कहा हम विवाह नहीं करातीं। उनको अपने पिछले जन्म की खबर थी। वह जाति में सुन्दर जन्मी थी उन्होंने कहा, एक

हमारे मन में जो कामना है परमेश्वर वह पूर्ण करे तब बहुत भली बात है। उनके मन में यही था कि वह साधू जिसके स्पर्श करने से हमारी अधम देह छूटके यह देह मिली है वह मिले। तब बहुत भला है। इतना विचार कर उन दोनों अकेलियों ने माता पिता से तीर्थ यात्रा करने की आज्ञा मांगी तब माता पिताने तीर्थ यात्रा की आज्ञा दी। कहा तुमको श्रीपरमेश्वरजी की आज्ञा है तब उन दोनों कन्याओं ने माता पिता को चरण बंधना करके गमन किया। तीर्थ यात्रा करतीं करतीं बनारस में पहुंचीं वहां जाकर देखा वह तपस्वी बैठा है जिसकी कृपा

से हम बेरीयों की देह से छूटी हैं। तब उन दोनों कन्याओं ने जाय दंडवत करी चरण बन्धना करके बेनती करी हे संतजी तुम धन्य हो हमको कृतार्थ किया है जी। तब उस तपस्वी ने कहा तुम कौन हो मैं तुमको पहिचानता नहीं, तब कन्याओं ने कहा हम आपको पहिचानती हैं, हम पिछले जन्म बेरीयों की जून में थी, तुम एक दिन वन में आए तुमको बहुत धूप लगी थी तब बेरीयों की छाया तले आए बैठे। लम्बासन होने से एक बेरी को आपके चरण लगे दूसरी को सिर लगा। उसी समय हम बेरी की देह से मुक्त हुई। अब ब्राह्मण के घर जन्म

लिया है हम ब्राह्मणी हैं बड़ी सुखी हैं। तुम्हारी कृपा से हमारी गती हुई तब तपस्वी ने कहा मुझे उस बात की खबर नहीं थी अब तुम कुछ आज्ञा करो तुम्हारी सेवा करूं तुम ब्रह्मरूप उत्तम जन्म श्रीनारायणजी का मुख हो। तब उन कन्याओं ने कहा, हमको श्रीगीताजी के चौथे अध्यायका फल दान करो जिसको पायकर हम देव देही पाकर सुखी होवें। तब उस तपस्वी ने चौथे अध्यायका पाठ का फल दिया। देते ही उनको कहा कि तुम आवागमन से छूट जावो। इतना कहते ही आकाश से विवान आए उन दोनों ने देव देही पाकर वैकुण्ठ को गमन

किया फिर तपस्वी ने कहा मैं नहीं जानिया जो श्रीगीता जी के चौथे अध्याय का ऐसा महात्म है। तब वह मन, वच, कर्म कर नित्य प्रति पाठ करने लगा तब श्रीनारायण जी ने कहा, हे लक्ष्मी यह चौथे अध्याय का महात्म है जो तुमको सुनाया है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तरखंडे श्रीगीता महात्मनाम चतुर्थो अध्याय ॥४॥

* अथ पांचवां अध्याय *

अर्जुनोवाच ॥ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान जी से प्रश्न करे है जो हे श्रीकृष्ण भगवानजी कर्मों का त्याग सन्यास कहो जी और कर्म्म योग भी कहो जी यह निश्चय कर

कहो जी जिस से मेरी कल्याण होवेजी। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण भगवानजी कहे हैं। श्रीभगवानोवाच हे अर्जुन संन्यास योग, कर्म योग यह दोनों कल्याण के दाता हैं। इस में जो कर्म्म त्याग ने हैं संन्यास के निमित्त सो उचित नहीं। कर्म्म करने अर्थात् कर्म्म योग भला है और जो प्राणी ऐसी ज्ञानकी बात का समझने हारा है सो संन्यासी है सो कैसा जो सर्व बातों के हर्ष शोकसे रहित है। हे महाबाहू अर्जुन ऐसा जो निरद्वन्ध है सो सुखैनही संसार के बंधनों से मुक्ति होता है! अब अर्जुन और सुन सांख्य को और योगको भिन्नाभिन्न बालक अज्ञानी कहिते

हैं पण्डित नहीं कहते। योग कहिये मेरे स्मरण साथ जुड़ रहना। और सांख्य कहिये मेरा ज्ञान,गोस्ट,कथा, वार्त्ता करनीं सो यह दोनों एक ही हैं और इन दोनों का फल भी एक ही है जिस मेरे परम स्थानों को सांख्य वाला पावे है तिसी स्थान को जोगी जाय प्राप्त होता है। जिन सांख्य और योग एक ही कर जाना है जिनही यथार्थ ज्यूं का त्यूं जाना है। हे अर्जुन संन्यास जो है संसार के कर्म से भी त्यागिये देहकर और मन कर भी त्यागिये इसका नाम संन्यास कहिये है। हे महाबाहू अर्जुन यह संन्यास पावना ब्रह्म योग जुड़े बिना कठिन है जब स्मरण साथ

जुड़ता है तब सुखैन ही संसार के सुखों की बात भूल जाती है, इसी का नाम संन्यास कहिये है। जो स्मरण योग साथ जुड़े ऐसा मुनीश्वर है सो तत्काल ही पारब्रह्म को आय प्राप्त होता है ऐसा जो प्राणी योग साथ जुड़या और निष्काम निर्मल है आत्मा जिसका, संसार की वाञ्छा से निवारिया है आत्मा को जिसने और समस्त इन्द्रियां जिसने पकड़ राखी हैं। और सब भूत प्राणियों विषे एक ही आत्मा ब्रह्म दृष्टि आया है ऐसा जो प्राणी है सो कर्म कर्त्ता भी अकर्त्ता है। निर्लेप है वह क्या समझता है कि जो आत्मा है सो कुछ नहीं करता नेत्र देखते हैं

श्रवण सुनते है, स्पर्श देह करे है, नासिका सूंघती हैं स्वाद जिह्वा लेती है, स्वास पवन कर आवे जावे हैं हाथ पकड़ते हैं छोड़ते हैं, चरण चलते हैं निमख नेत्रों के लगते हैं सोवती जागती देह है, जो इस प्रकार समझे जो यह सब इन्द्रियां अपने अपने विषयों को वरतती हैं, और मैं जो आत्मा राम हूं सो अकरता हूं इन सब से न्यारा हूं। इस भांत आत्मा को समझे है और इन्द्रियों कर कर्म करे सो तिस पुरुष को किसी कर्म किये का दोष नहीं। जैसे जल विषे कमल निरलेप न्यारा है तैसे ही वोह पुरुष न्यारा है। हे अर्जुन जो कोई योगीश्वर पुरुष हैं सो देह कर

मन कर इन्द्रियों कर सत्य कर्म जो स्नान से आदि हैं। सो करते हैं और फल कुछ वांछते नहीं तिसका फल निश्चल शान्ति को पावे है और जो कामना के निमित्त कर्म करते हैं, सो बन्धन को प्राप्त होते हैं। अब अर्जुन सदा सुखी कौन हैं तिन की बात सुन। जो प्राणी आत्मा साथ जुड़ा है और किसी इन्द्रियों का उदम नहीं उठाता सो सदा सुखी है। अब अर्जन मेरी बात सुन जो मैं कैसा हूं। मैं संसार को उपजाता हूं और प्रतिपालना भी मैं ही करता हूं मेरी मायाका यह स्वभाव है। यह संसार माया की खेल है और मुझ को इस

संसार से कुछ प्रयोजन नहीं । न मैं किसी से पाप कराता हूं न पुण्य कराता हूं, अज्ञानकर जीव मोहित हुए हैं और पाप करते हैं। और जो मुझ ईश्वर को न्यारा निरलेप समझते हैं तिनको कभी अज्ञान नहीं उपजे है। जैसे सूर्य्य को अन्धकार नहीं तैसे ज्ञानी निरलेप है। कैसा है॥

श्लोक—तत्त बुद्धि वस आत्मा, निश्चल निज घर सोय। सब किल विष उतरे ज्ञानकर, बौड़ जन्म न होय॥ १॥ अति अडोल और चेतना, सब जाने प्रभु सोय। सब मैं वरते सो प्रभु सब से न्यारा सोय॥ २॥ ध्यान रूप गुरु ज्ञान कर, अवर न पेखहु कोय। मनुआं निश्चल बुद्धि

थिर, आपे आप सु होय ॥३॥ स्वास स्वास स्मृत रहो, आत्म राम सुचीत । शरण एकही पकड़ तूं दृढ़ चित्त राखो मीत ॥४॥ तन धन तुमरा मन तुंही, मोहे नहीं सब तोय । ऐसा निश्चा दृढ़ करे, विघ्न न लागै कोय ॥ ५ ॥ फिर न्यारा निरलेप मुझको जान और मेरे विषे ही परम प्रीती रहे। मेरी ही शरण रहे और स्वास स्वास मेरा भजन स्मरण ऐसा मुझको जान कर जो मेरा भजन करता है। हे अर्जुन जो ऐसा पहिचाने सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद विषे जाय प्राप्त होता है। वहां गये से गिरता नहीं सो पूर्ण ज्ञानी है ऐसा जो होय ब्राह्मण

कैसा । जन्म से ऊंच ब्राह्मण के घर का । और विद्या कर पूर्ण होय तिस ब्राह्मण को जन्म का गर्भ भी नहीं होय । सब साथ नम्रता राखे ऐसा साधू ब्राह्मण और गौ हाथी स्वान जो है कुत्ता और चंडाल ऊंच नीच तिसको सब एक ही समान हैं ऐसा सम दृष्टि पण्डित कहिये हैं । फिर कैसा हैं इस प्रकार जिसको समदृष्टि आई है सो जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति हुआ । और आत्म ब्रह्म जो सभ विष निरलेप जानया है ऐसा जिसको ब्रह्म दृष्टि आया है । फिर कैसा है भली वस्तु पाये से प्रसन्न नहीं होय और बुरी वस्तु पाय से बुरा नहीं माने है ऐसा जो

स्थिर बुद्धि ज्ञानी ब्रह्म को जानने हारा जिसके हृदय विषे कुछ अज्ञान नहीं रहा, बाहर की इन्द्रियों के सुख तिस-को विसर गये हैं और आत्मा के सुख विषे जाय मग्न हुआ है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन जिसका आत्मा ब्रह्म योग साथ जुड़या है तिनही अविनाशी सुख पाया है। और भोगों का सुख अन्त वत है सो विषे भोगों को त्यागके आत्मा का सुख भोगते हैं इन्द्रियों के भोगों विषे नहीं रमते। इन्द्रियों के भोग दुःखों के उपजावने हारे हैं। इन्द्रियों के भोगों की ओर नहीं जाते अब जिसको आगे जन्म नहीं तिसकी बात सुन जैसे वलटोही से एक दाना

निकाल देखते हैं यदि वह गला है तो सभी दाने गले हैं। जो एक कच्चा है तो सभी कच्चे हैं इसी प्रकार जिस ज्ञानी को काम क्रोध नहीं उपजता तिसको फिर जन्म नहीं। जिसने काम क्रोधदोनों शत्रु जीते हैं तिसने ही योगकी युक्ति जानी है और सोई मनुष्य संसार विखे सुखी है तिस को क्यों नहीं काम क्रोध उपजते तिसकी बात सुन, आत्मा जो है ज्योतिस्वरूप तिस साथ जाय जुड़ा तिस आत्मा साथ जुड़ने का जो है निर्वाण सुख तिस निर्वाण सुख विषे जाय मग्न हुआ। तिस कारण से तिसको काम क्रोध नहीं उपजते सो आत्म ब्रह्म निर्वाण सुख को प्राप्त हुआ

है तिसके पाप मिटगये हैं और दूसरी दृष्टि तिस पुरुष की दूर हुई। सो ब्रह्मदर्शी हुआ है और सब भूत प्राणियों के कल्याण विषे है प्रीत जिसकी और शीतल स्वभाव है, और काम क्रोध जिसके नहीं ऐसा जो है ज्योतिस्व-रूप ब्रह्म निर्वाण सुख तिस विषे मग्न हुआ है अब जो देह साथ होते ही मुक्ति रूप हैं तिनकी बात सुन जिन बाहर की इन्द्रियों विषयों से बर्ज राखी हैं और नेत्रोंकर त्रिकुटी का ध्यान कर और प्राणवायु ऊपर की और समान वायु तले की इकट्ठी कर नासिका विषे लाई है और जीता है जन्म जिसने और नहीं किसी वस्तु की

वांछा और नहीं जिसको किसी का डर और क्रोध भी नहीं ऐसा जो मेरा भगत है सो जीवन मुक्त कहिये है। अब मेरी बात सुन, हे अर्जुन कई कोट लोग पावने के निमित्त यज्ञ करते हैं और कई कोट लोग तपस्या करते हैं और यज्ञ भी करते हैं। सो तिन यज्ञोंका और तपस्या का भोगता भी आप है और सब लोगोंका ईश्वर और सब भूत प्राणियों का मित्र ऐसा सो प्रभु है। जो कोई ऐसा जाने कि श्रीकृष्ण भगवानजी ऐसे हैं तिसके जाने का फल क्या पावे है सो परमात्मा सुख को पावे है ॥५॥

इति श्री भगवतगीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्या योगशास्त्रे

श्रीकृष्ण अर्जुनसंवादेसंन्यास योगोनाम पञ्चमोअध्याय।५।

* अथ पांचवें अध्याय का महात्म *

श्री भगवानोवाच—हे लक्ष्मी पांचवें अध्याय का महात्म सुन। एक ब्राह्मण पिङ्गला नाम अपने धर्म से भ्रष्ट हुआ था कुसंग में जाय बैठे मच्छी मांस खावे मदरापान करे, जूआ खेले, तब उस ब्राह्मण को भाई चारे में से छेद दिया तब वह किसी और नगर में चला गया देवयोग कर वह पिङ्गला एक राजा के नौकर जा हुआ राजा के पास और लोगों की चुगलियां किया करे जब वहुत दिन वीते तब वह धनवन्त हो गया तब उसने

अपना विवाह कर लिया, पर स्त्री भी व्यभिचारणी आई। जैसा वह था तैसी स्त्री आई, जो कुछ वह ब्राह्मण कहे सो वह न करे। ब्राह्मण कहे तूं बाहर ना जा वह रहे नहीं जहां उसका जी चाहे तहां वह जावे, भर्त्ता को जाने नहीं वह कल्पना करे और स्त्री को मारे, एक दिन उस स्त्री को बड़ी मार पड़ी। उस स्त्री ने दुःखी होकर अपने भर्त्ता को बिष देदिया। वह ब्राह्मण मरगया उस ब्राह्मण ने गीध का जन्म पाया कितने काल पीछे वह स्त्री भी मर गई उसने तोती का जन्म पाया तब वह एक तोते की स्त्री हुई वह तोता एक बन में रहता था एक दिन उस तोती

ने तोते से पूछा, हे तोते तू ने तोते का जन्म क्यों पाया. तब उस तोते ने कहा, हे तोती मैं अपने पिछले जन्म की वारता कह सुनाता हूं, मैं पिछले जन्म में ब्राह्मण था अपने गुरु की आज्ञा नहीं मानता था। मेरा गुरु बड़ा विद्यावान् था। उसके पास और विद्यार्थी भी रहते थे सो गुरुजी किसी और विद्यार्थी को पढ़ावें मैं उनकी बात में बोलपड़ता, कईवार हटका मैं नहीं माना मुझको गुरुजीने श्राप दिया कहा जा तूं तोते का जन्म पावेगा इस कारण से तोते का जन्म पाया अब तूं कहो किस कारण से तोती हुई उसने कहा मैं पिछले जन्म ब्राह्मणी थी जब व्याई तब

भर्त्ता की आज्ञा नहीं मानती थी भर्त्ता ने मुझे मारा एक दिन मैं भर्त्ता को विष दिया वह मर गया जब मेरी देह छूटी तब बड़े घोर नर्क में मुझे गिराया। कई नर्क भुगाये कर अब मुझे तोती का जन्म हुआ। तोते ने यह सुन कर कहा तूं बुरी हैं जिस अपने भर्त्ता को विष दिया। तोती ने कहा नरकों के दुःख भी तो मैंने ही सहे हैं अब तो मैं तुझे भर्त्ता जानती हूं। एक दिन वह तोती बन में बैठी थी वह गीध आया। तोती को उस गीध ने पछानिया जो वही मेरी भर्य्या है जिसने मुझे विष दिया था। वह गीध तोती को मारने चला आगे तोती पीछे गीध जाते जाते तोती एक

मसान भूमिका में थक कर गिर पड़ी वहां एक साधू को दाह दिया था, साधू की खोपरी वर्षा के जल के साथ भरी हुई पड़ी थी उस में गिरी इतने में गीध आया उस तोती को मारने लगा उस खोपरी के जलके साथ उनकी देह धोई गई वह आपस में लड़ते २ मरगये अधम देह से छूट कर देव-देही पाई विवान आये तिन पर बैठकर वैकुंठ को गये। तब तोती ने कहा, हे गीध ऐसा पुण्य कौन किया है जो वैकुंठ को चले हैं गीध ने कहा हमने तो जन्म में पुण्य कोई नहीं किया मैं इस पुण्य को नहीं जानता इतने में दोनों धर्मराज की पुरी में गये धर्मराज ने कहा,

क्योंरे गीध तूं पीछे कौन था उसने कहा ब्राह्मण था मुझे मेरे भाइयों ने देश से निकाल दिया था मैं और देश में जाय बसा वहां मैंने विवाह किया दुराचारनी स्त्री मिली उसने मुझे विष देकर मारा और वह मरकर तोती हुई। मैं गीध हुआ मैं इसको पहिचानके मारने लगा वहां एक मसान में मनुष्य की खोपरी जलके साथ भरी हुई थी तिस में तोती गिरी मैं भी वहां पहुंचा। उस जल का हम दोनों को स्पर्श हुआ तत्कालहमारी देह छूटी। देव-देही पाई बिवानों पर चढ़ा कर हम दोनों को बैकुंठ धाम को लेचले हैं। यह कौतुक हमको कुछ मालूम नहीं

हुआ तब धर्मराज ने कहा, वह खोपरी एक साधू की थी वह श्रीगङ्गाजी में स्नान करके नित्य श्रीगीता जी के पांचवें अध्याय का पाठ करता था। वह खोपरी परम पवित्र थी उसके स्पर्श साथ तुम वैकुण्ठवासी हुए हो। और अपने पारषदों को धर्मराज ने आज्ञा दी। जो प्राणी श्रीगङ्गाजी का स्नान करके गीता का पाठ करते हैं तिनको मेरे पूछे बिना बैकुण्ठ को लेजाया करो, जो सन्तों की सेवा करते हैं तिनको भी वैकुंठ लेजाओ तब वह पारषद दोनों को बैकुंठ में ले गये। श्रीनारायणजी ने कहा, हे लक्ष्मी ! ये गीताजी के पांचवें अध्याय

का महात्म है जो तैंने श्रवण किया।

इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्राखंडे श्रीगीता महात्म नाम पञ्चमों अध्याय॥५॥

* अथ छटा अध्याय *

श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन जो कर्मयोग कर मेरे साथ जुड़े हैं और फल कुछ पांछते नहीं तिनको संन्यासी जान। जो मेरे साथ जुड़े हैं इसी से योगी कहिये फल कुछ वांछे नहीं इसी से संन्यासी कहिये। हे अर्जुन कुछ जटा को धारे से, भस्म के लगाए से, अग्नि धूनी जलाय बैठने से, संन्यसी नहीं होते। हे पांडव योगीजन संन्यासी

तिसको कहते हैं जिसके मन में मेरे चरण कमल बिना और कुछ वांछा नहीं मेरे स्मरण साथ जुड़े बिना अवांछी होता नहीं अवांछी हुए बिना मेरे स्मरण साथ जुड़ता नहीं जब मेरे स्मरण साथ जुड़े तब अवांछी होय, अवांछी होय बिना योगी कोई नहीं, इस कारण से संन्यास और योग यह कहे हैं और जो कोई मेरे योग साथ जुड़ा तिस को मेरे जानने के जो हैं सत्य कर्म स्नान से आदि ले कर सो करने चाहिये। जब सत्यकर्म कर निर्मल होय तब मेरे साथ जुड़े। और जो कोई योग आरूढ़ हुआ तिसको कोई कर्म नहीं करना चाहिये जो कुछ उसको

इच्छा होय सो करे, सोवे तब सोय रहे, जो बैठे तो बैठ रहे, योग आरूढ़ इच्छाचार्य मुक्तरूप हैं योगारूढ़ कौन होता है, तिसके लक्षण सुन इन्द्रियां किसी विषे को न उठैं, और मन विषे मेरे स्मरण बिना कोई चिन्ता भी नहीं होवे है जब ऐसा होय तब योगारूढ़ कहिये तिन अपने आत्मा का उद्धार किया, संसार के विषयों के स्वादों में नहीं रमा और अपना ही आत्मा मित्र है, अपना ही शत्रु है। जिन विषयों से वरज कर अपना आत्मा मेरे भजन साथ जोड़ा है तिसका अपना आत्मा मित्र है। जिन मुझको विसार कर अपना आत्मा विषयों में लगाया है

तिसका आत्मा शत्रु है । फिर न कोई मित्र है, न शत्रु है, जिन आत्मा वरजकर विषयों से परमात्मा पारब्रह्म अविनाशी साथ जोड़ा है सो परमशान्ति सुख को प्राप्त हुआ है और उसको शीत उष्ण भी नहीं व्यापता और मेरी कृपा से और कोई दुःख भी नहीं व्याप सक्ता। जो आदर करने से प्रसन्न नहीं और अनादर करने से बुरा नहीं मानता, ज्ञान जो है अपने आपका जानना है। मैं क्या वस्तु हूं यह क्या खेल है, और विज्ञान कहिये परमेश्वर का जानना यह दोनों ज्ञान विज्ञान हैं इनको मैं तेरवें अध्याय में कहूंगा जिन्होंने ज्ञान विज्ञान रूप

अमृतपान किया है वा तृप्त हुआ है आत्मा जिसका सो इन्द्रियों को निवारण करे, सदा एकसा रहे कंचन, माटी, शत्रु मित्र एक सम जाने। धर्मी पापी एकसे देखे रागद्वेष न करे निरन्तर एक ध्यान मित्र शत्रु जाना करे यह पूर्ण लक्षण योग के कहे। यह युक्त रहे योगी आत्मा से जुड़े अभय रहे परमानन्द रूप रहे दूसरे की आस न करे माया के मोह से रहित हो तो परम पदको पावे है। हे अर्जुन जो कोई और भी योग आरूढ़ हुआ चाहे तिसकी बात सुन वह क्या करे प्रथम तो एकान्त ठौर एक थड़ी चार उंगली ऊंची जिस में कंकर टोया टिब्बा

न होय सो बनाए। ऐसी जैसी साफ़ थड़ी बनाकर तिस पर गोबरका चोका फेरे तिसपर कुशा उस पर मृगछाला पावे। ऊपर कपास का धोया हुआ कपड़ा डाले ऐसे पवित्र स्वच्छ आसन पर चौकड़ी मार बैठे मन को निश्चल करे इन्द्रियां वशकर ऐसा होयकर मेरे साथ जुड़े और सारी देह को सीधा रक्खे,बांका टेढा न बैठे सिर ग्रीवा को भी सीधा रक्खे,ऐसा निर्मल होयके बैठे अपनी नासिका का अग्र भाग देखे। और किसी दिशा को न देखे, अपने आत्मा को परमात्मा विषे लीन करे किसी का डर न करे, गोबिन्द को गहराखे और मनको संयम

कर मनका निश्चल चेता मेरे में राखे। इस भांत मेरे साथ योग जुड़े। इन लक्षणों साथ जुड़े तो परम शान्ति सुख जो है निर्वाणपद तिसको प्राप्त होवे है। हे अर्जुन और भी तिसकी युक्त सुन जो प्राणी उदर भर के भोजन खावे तब भी योग नहीं होय। योग किस भांत होवे सो सुन। युक्त का आहार होय कैसी युक्त दो ग्रास भूखा रहे, जिस से स्वास सुखी चलें और गिरे भी नहीं। और चले मस्त हाथी जैसा मन्द मन्द। जूता न पावे दृष्टिकर पृथिवी को देखता चले जहां कोई जीव जन्तु कंकर कांटा न होय वहां चरण धरे अपवित्र ठौर

पर न धरे जागता रहे तो भी योग नहीं होय। सोय रहे तो भी योग नहीं होवे। सोना जागना सहजकरपहर रात पहिली जागे, पहर पिछली जागे, सो ऐसा युक्त कर योग करे तिसको योग प्राप्त होय। ऐसी युक्त कर देह को कोई रोग भी नहीं व्यापता। इसका नाम दुःख नाश योग है। विवेकी पुरुष योगी का मन जब आत्मा साथ जाय जुड़े तब इसके मनविषे किसी वस्तु की वांछा रहे नहीं तिसको योग युक्त कहते हैं। अब योगी को एकांत बैठना क्यों कहा है तिसका दृष्टांत सुन। जैसे जिस जगह पवन नहीं चलती उस जगह दीपक निरमल अडोल

जोति प्रकाश करे है और जो पवन लगने की ठौर राखिये तो तिसकी जोति डोले है। इस कारण से योगी को एकांत बैठना कहा है। जो एकांत बैठकर मुझको चितव्या करे तब योगी का चेता मेरी सेवा युक्त कर निश्चल याय। तब तिसको आत्मा का दर्शन होता है आत्मा के दर्शन कर अति सुख को पावे है। आत्मा के दर्शन का सुख कैसा है अति अविनाशी सुख है तिसको बुद्धिजानती है। वह सुख बुद्धि गोचर है इन्द्रियां उस सुख को नहीं जानती इस कारण से इसका नाम अति इन्द्रिय सुख है और जिस सुख के पाये से वह योगी निरलेप निश्चल

होता है और जिस सुख के उपरान्त और कोई लाभ नहीं मानता जिस सुखके पाये से कोई शरीर को बड़ा दुःख लागे और शस्त्रों साथ काटे अग्नि में जलावे तो भी तिसको कुछ दुःख नहीं लगे। तिससे साक्षी प्रह्लाद की। जैसे प्रह्लाद को हिरनाकुश ने अनेक प्रकार की शासना दी, प्रह्लाद को कुछ कष्ट न हुआ ऐसा सुख है। जिस सुख पाये से सभी दुःख भाग जाये ऐसा सुख निधान योग संसार से विरक्त होकर अवश्य कीजिये विलम्ब न कीजे सभी कामना विसार कर और सब इन्द्रिय वश करके योग कीजे शनैः शनैः मन की बुद्धि

साथ पकड़ कर आत्मा विषे निश्चल राखे और कुछ ना चितवे। यह मन चंचल है जिस २ बात को चितवै तिससे निवारन कर आत्मा साथ लगावे जब मन जाय जुड़े आत्मा साथ तब कैसे परमशांत सुख को पावे है। तीन गुण को काट जावे है जिर्मल पाप से तब ब्रह्म साथ मिलके ब्रह्म का ब्रह्म हुआ कपट माया दूर किया इस प्रकार जिसने योग जाना सो नहीं डोलता आपसे आप जुड़िया पाप तिन के सब झड़े हैं साहिज से ही। तिन योग पाया तब ब्रह्म सुख का प्रकाश हुआ आत्मा संग किया परम सुख को पाया सगल घट में आप देखिया आत्मा में

सगल देखिया अपना परया कुछना व्यापै आत्मा जाना सदा ही सम दृष्टि देखिया आप मध्य ब्रह्म देखिया जुगत निर्मल योग पाया ब्रह्म प्रताप से। हे अर्जुन सभी भूत प्राणी तिसको अपने आत्मा विषे दृष्टि आये और सब भूत प्राणियों विषे अपना आत्मा तिसको दृष्टि आया तिसको ऐसी सम दृष्टि भई आप विषे भी मुझको लगा देखे जो सब विषे मुझ आत्मा ब्रह्म को देखे और सभी भुत प्राणी मुझे विराट पुरुष पर बैठे देखे ऐसी जिस की दृष्टि भई सो तिस से मैं भिन्न नहीं मुझ से वह भिन्न नहीं मैं और वह एक ही रूप है सो भी भूत

प्राणियों विषे मुझको व्यापिया पहिचान कर जो मेरा भजन करते हैं तिनको फिर जन्म नहीं और जो सबजनो विषे मैं व्यापा हूं तिन्हों विषे मेरा भजन क्या करना है, सो सुन। हे अर्जुन जैसा अपने आत्मा विषे दुःख सुख लगता है तैसा ही दूसरे को जाने यह जान कर किसी को दुखावे नहीं, सब का सुख दायक मित्र होय वर्ते, मेरे मत विषे सब योगियों से वह योगी श्रेष्ठ है। जो सब का सुखदायक है॥ अर्जुनोवाच—अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान जी से प्रश्न करे है, हे मधुसूदनजी तुमने जो यह योग मुझे उपदेश किया है। हे प्रभु जी यह योग तो मेरे

में नहीं है और मैं ऐसा योगकर भी नहीं सक्ता। हे भग-वानजी मन तो चंचल है। मस्त हाथी की न्याईं बलवान है। तिस मन को पकड़ना मैं पवन से भी कठिन जानता हूं। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण भगवानजी कहे हैं, श्रीभगवानोवाच–हे महाबाहु अर्जुन इस बात में कुछ सन्देह नहीं मन तो चंचल है। पकड़ा नहीं जाता पर इसके पकड़ने के दो उपाय हैं सो सुन मेरे साथ प्रीत, संसार के विषयों से वैराग्य, यह दोनों उपाय हैं। इन कर मन निश्चल होता है, सो जिसने मेरे साथ प्रीति नहीं करी संसार के विषयों से वैराग्य नहीं किया सो मुझको नहीं

पावेगा जिन्होंने अभ्यास कर मन मेरे साथ नहीं जोड़ा तिनको योग कहां है। अभ्यास कहिये जब मेरे स्मरण बिना जो कुछ और चितवना मन चितवे है मन को बुद्धि साथ पकड़ कर मुझ ही को सिमरे। इसका नाम अभ्यास है जिसने वैराग्य अभ्यास कर दोनों उपाय नहीं किये तिसको योग कठिन है। जिन्होंने अभ्यास और वैराग्य कर मन मुझ साथ जोड़ा है तिनको योग पावना सुखैन है अभ्यास वैराग्य दोनों उपाय मन पकड़ने के हैं अर्जुनोवाच—अर्जुन प्रश्न करे है। हे महाबाहू प्रभुजी जिन तुम्हारे साथ योग जोड़ा है देह छूटने के समय

तिनकी श्रद्धा जो है प्रीति सो तुम्हारे योग से छूटकर किसी और बात पर गई हो सो प्राणी योग की विधि को नहीं प्राप्त हुआ, हे श्रीकृष्ण भगवानजी सो किस गति को प्राप्त हुआ सो तुम्हारे योग से भ्रष्ट हुआ कि नहीं उसकी सारी सीद्धी निष्फल हुई कि तिसकी कुछ गति भई। जैसे मेघ उमङ्गकर आवे संसार में वर्षा के निमित्त किसी ओर से पवन आइके मेघकों खण्ड २ कर दिया वर्षा न हुई तिस मेघ की भांति योगी का योग नष्ट हुआ कि तिसकी गति हुई। हे महाबाहू प्रभुजी श्रीकृष्णजी सो तुम्हारें योग को नहीं पहुंचा तुम्हारा जो ब्रह्मपद है मुक्ति

पद वैकुंठ तिस मार्ग से वह फिर अन्ध हुआ तिसकी गति कहो, हे प्रभु मेरे मन का संशय काटो। तुम बिना इस संशय को छेदन हारा कोई नहीं। श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन तिस योगी का योग तूं नाश हुआ मत जान हे अर्जुन जिन एकबार मेरा नाम लिया और नमस्कार किया है मैं सत्य पुरुष अविनाशी सो सदा कल्याणरूप हूं, अब योगी जो मन देह छूटने के समय मेरे स्मरण को त्याग के और बात पर गया है तिसकी गति सुन। जिस स्वर्ग पावने के निमित्त मनुष्य बड़े दान करते हैं यज्ञ करते हैं तपस्या करते हैं सो स्वर्ग मेरे योगी को दंड

है सो भ्रष्ट योगी स्वर्ग जाय भोगे है सो स्वर्ग का वृत्तांत सुन वहां देवता ही वसे हैं। वहां न किसी की कोई स्त्री है, न कोई किसी का भर्त्ता है। तहां अप्सरा भोगने को हैं, कैसी हैं जिनकी देह से बड़ी सुगन्धता आवे है और दिव्य गन्धर्व गायन करते हैं। खाने को अमृत भोजन हैं सूंघने को दिव्य पारजात के फूल, पहिरने को दिव्य वस्त्र और अनेक प्रकार के दिव्य भोग हैं योगी भ्रष्ट तहां जाकर पहुंचे जब वह भ्रष्ट योगी उन दिव्य भोगों को भोगकर आजावै है जब तिन भोगों से तिस का मन विरक्त होगा, तब तिस स्वर्ग लोक को त्याग

कर मनुष्य लोक विषे आए जन्मपावे है । किसके घर पावै है सो सुन । पवित्र कुल ब्राह्मण क्षत्री और लक्ष्मी वंत कुल में जन्मे हैं । जिन थोड़े दिन योग साधना करी मरने के समय योग से चलगया होए सो स्वर्ग के भोग भोग कर ब्राह्मण क्षत्री द्रव्यवान के घर जन्म लेकर फिर वही योग की साधना तिसके मन विषे जाग उठती है । तिसपर दृष्टांत । जैसे कोई कार्य करता करता सोजावे जब जागता है तब वही कार्य करने लगता है इसी भांत तिस के मन में योग उपजावे है । तब मेरे साथ योग जुड़के मेरे परमानन्द अविनाशी पद विषे प्राप्त होता है यह

तो जिन थोड़े दिन साधन किया था और मरने के समय तिस का मन योग से चलिया तिसका वृत्तांत। जिसने बहुत दिन योग साधना किया हो और मरने के समय मन चलिया नहीं तिसकी बात सुन। वह योगी भी स्वर्ग के भोग भोग कर फिर मनुष्य जन्म पावे तो बड़े बुद्धिमान मेरी महिमा जानने हारे ऐसे योगी जो हैं मेरे तिन के घर जन्म पावे है। जो अति दुर्लभ से दुर्लभ है तहां जन्म लेकर जो कुछ पूर्व जन्म योगाभ्यास किया था सो यत्न से बिना ही तिससे अभ्यास होता है जैसी पिछले जन्म तिसकी बुद्धि थी सोई तिसको बुद्धि

प्राप्त होती है सो हे कुरुनन्दन योग का अभ्यास तिससे जाग उठे है। सो वह योगी शब्द ब्रह्म जो वेदों का तत्व है सो तिस में मेरी महिमा को जानने लगा परगामी हुआ और यत्न बिना ही मेरे साथ जुड़ जाता है सब पापों को काटकर मेरे योग की साधना को प्राप्त होता है। हे अर्जुन इस योग मार्ग की सिद्धि एक जन्म विषे नहीं होती। अनेक जन्म बहुत वार योग करता आवे तब मेरे परम गति परमपद अविनाशी धाम को जाय प्राप्त होता है। अब अर्जुन योगी भी तीन प्रकार के हैं। एक तप योगी हैं सो उनकी वारता सतारवें अध्याय में कहूंगा

सो तपयोगी से ज्ञानयोगी श्रेष्ठ हैं, एक ज्ञानयोगी हैं एक कर्म योगी, मेरी पूजा करनेहारे तपयोगी से ज्ञानयोगी अधिक श्रेष्ठ है तिसकी बात सुन जिस योगी का आत्मा मेरी प्रीति साथ मेरे विषे मग्न हुआ क्या डूब गया और नित्यही श्रद्धा से मेरी पूजा करता है और स्वास स्वास श्रद्धा से मेरा स्मरण भजन करता है सो मेरे मन विषे सर्व योगियों से श्रेष्ठ है, उससे अधिक मुझे और कोई प्यारा नहीं ॥ इति श्रीभगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्बादे आत्मा संयम योगो नाम छटवां अध्याय ॥ ६ ॥

* अथ छेवें अध्याय का महात्म *

श्रीभगवानोवाच:—हे लक्ष्मी! छेवें अध्याय का महात्म सुन। गोदावरी नदी के किनारे एक नगर है वहां एक राजे का नाम जानसुर था बड़ा धर्मज्ञ था। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधक था, तिसकी प्रजा भी धर्मज्ञ थी, लोग राजा की स्तुति करते थे। एक दिन उस नगर में हंस उड़ते उड़ते आय निकले उनमें से एक बैठता ही उतवला उड़गया। तब नगर के पण्डितों ने कहा, हे हंस तूं ऐसा उतावला उड़ा है, क्या तूं राजे जानसुर से आगे ही स्वर्ग को जाया चाहता है तब उन पंछियों

में जो सरदार था उसने कहा, इस राजा से भी एक रईयक मुनि ऋषिश्वर श्रेष्ठ है। वह वैकुण्ठ का अधिकारी होवेगा। वैकुंठ लोग स्वर्ग से ऊंचा है यह वार्ता राजे ने श्रवण करी तब मन में विचार करी कि मेरे से उसका पुण्य बड़ा होवेगा जिसकी यह हंस स्तुति करते हैं विचार के कहा, उसका दर्शन करिये, राजा ने सारथी से रथ मंगवाकर सवारी करी प्रथम बनारस श्रीकाशी जी में जाकर गङ्गा में स्नान किया, दान किया, शिवजी महाराज का दर्शन किया, फिर लोगों से पूछा यहां कोई रईयक मुनी भी है लोगों ने कहा नहीं, तब राजा दक्षिण

देश को गया द्वारकानाथ को परसा, वहां स्नान ध्यान कर दान किया। लोगों से पूछा यहां कोई रईयक मुनी भी है। उन्हों ने कहा नहीं। तब राजा पश्चिम दिशा को गया जहां जहां तीर्थों पर जावे तहां तहां जाय दान स्नान कर पूछे रईयक मुनी को फिर राजा उत्तर दिशा को गया बद्रीनाथ जाय परसा तहां से राजे का रथ चले नहीं। तब राजे ने कहा, मैं सगली धरती की प्रदक्षिणा करी है किसी स्थान रथ नहीं अटका यहां रथ अटका है यहां कोई ऐसा पुण्यात्मा रहे है जिसके तेजकर मेरा रथ नहीं चलता तब राजा उतर कर रथ से आगे चला, देखे तो

एक पर्बत की कन्दरा में अतीत बैठा है उसके तेज से वहुत प्रकाश हो रहा है। जैसे सुर्य्य की किरणें होती हैं। तब राजा ने देखते ही कहा यह रईक मुनी होगा। राजा ने दंडौत कर चरणवंदना करी हाथ जोड़ के स्तुति करी हे गुसाईं जी आपके दर्शन कर मेरी कल्याण हुई। आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मैं कृतार्थ हुआ हूं। तब रईयक मुनि ने राजा का आदर किया और कहा, हे पृथ्वी पति तूं चार धाम के परसनहारा धर्म्म के साधनहारा है तूंपुण्यात्मा हैंसत्कार सहितराजा को अपने पासबिठलाया सेव, कन्ध, मूल मंगवाकर राजा को दिये तब राजानेमुनि

से पूछा कि आपकातेजऐसाकिसकेबलकरहैतबमुनिनेकहा हे राजामैंतो अतीत जटाधारी भस्म लगाय कुपीनधारी हूं पुण्य क्या करना था। माया मेरे पास नहीं पर हमारे यहां तक बात है। नित्यप्रति गीता के छेवें अध्याय का पाठ करता हूं इस कन्दरा में इसी का उजाला है यहसुन कर राजा ने अपने पुत्र को बुलाय कर कहा, हे पुत्र आज से तूं राज कर मैं तीरथों को जाता हूं इतना कह कर राजा ने राजत्याग दिया। रईक मुनि से छेवेंअध्याय गीता जी का पाठ करना आरंभ किया। तब पाठकरने लगा इस पाठ के प्रताप से राजा त्रिकालदर्शी हुआ इस

प्रकार बन में रहते कई साल बीत गये। एक दिन प्राणा-याम करके दोनों ने देह का त्याग किया स्वर्ग से बिवान आये। तिनपर बैठकर बैकुंण्ठ गए। श्री नारायण जी कहे, हे लक्ष्मी यह छवें अध्याय का महात्म है सो तूने श्रवण किया है। इति पद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे श्री गीता महात्म नाम छठवां अध्याय ॥ ६ ॥

* अथ सातवां अध्याय *

श्रीभगवानोवाच—चित राखहु चर्णारबिंद भगवंत भक्ति को पाये। एक टेक डोलत नहीं, यह विद योग कमाये। हे अर्जुन मेरे ही आसरे योग धार मेरा आसरा क्या कहिये कि

हे महाप्रभु श्रीकृष्ण भगवान जी मैं जो तेरे स्मरण साथ योग कर जुड़िया हूं सो तुम्हारी कृपा से जुड़िया हूं आप से नहीं जुड़िया। यह विधि सगली समझ के पाया योग का राह। तुम्हारी कृपा से स्थित भई सच्चे बेपरवाह॥ हे अर्जुन मेरे योग जानने के प्रसाद से तिनको ज्ञान उपजे है, सो ज्ञान मैं तुझ को कहता हूं, जिस ज्ञान के जानने से फिर कुछ जानना नहीं रहता। जो कोई पुरुष संसार से विरक्त होता है जितने विरक्त होते हैं उन बिरक्तों में कोई एक मुक्तिपद को प्राप्त होता है और जितने मुक्त होते हैं तिन में कोई एक मेरी महिमा के ज्ञान को

पहिचानता है जो कोई कोटों मुक्त होनहारों में एक कोई जानता है। सो मेरी महिमा तूं मुझ से श्रवण कर, हे अर्जुन आप तेज वायु पृथिवी, आकाश और मन बुद्धि अहङ्कार यह आठ प्रकृति कही सो इनको उपजावन हारी मेरी माया है। यह आठों शरीर धारियों के बाहर भी हैं और भीतर भी हैं। जिस भांत देहों के विषे हैं सो भांत सुन धरती का अंश मास है। जलका अंश लोहू है, वायु का अंश स्वास, तेज का अंश अग्नि जो उदर में अन्न को पचावे है आकाश का अंश पुलाड़ है। मन बुद्धि और अहङ्कार यह सब आठों हैं यह सब मेरी माया है, हे महाबाहू

अर्जुन नौवाँ इसमें जीव भूत है सारा जगत संसार इन्होंका है सब चोरासी लक्ष जून इन्हीं की बनाई है और बात सुन मैं कैसा हूं, सब संसार और संसार के रचने हारी मेरी माया है तिन सबका उत्पत्ति करता हूं, पालन करता हूं, लय भी करता हूं, सब से न्यारा हूं, हे अर्जुन मुझसे न्यारा कुछ नहीं सब भूत-प्राणी मेरे साथ पराए हैं ज्यों धागे साथ मणी प्रोई है। हे अर्जुन यूं कोई मत समझे जो वासुदेव और देवकी के घर जन्मे हैं। जो सारे देह विषे जहां कोई तुचा पाड़े तहां ही पीड़ा होती है इसी तरह सबके समीप जो देखिये है सुनिये है सब में ब्रह्म

मैं ही हूं, ज्यों मेरे अधार सब लोक हैं सो भी मैं हूं; हे कुन्तीनन्दन सब देह-धारी जल के आसरे हैं। जलका जीव-रस है इस रसको जल को खाय जीवते हैं, जैसे दूध विषे घी है तैसे जल विषे रस है सो जल का जीव रस है, जलरस के अधार है, सो रस मेरे अधार है सभी लोक चन्द्रमा सूर्य्य के अधार हैं, चन्द्रमा सूर्य्य ज्योति के आधार हैं। जितने ब्रह्मा से आदि लेकर विद्या के पढ़ने हारे हैं जो वेदों में मेरी महिमारूप अमृत है सो ब्रह्मा से आदि लेकर जितने वेद-पाठी हैं सो उनका अधार मेरी महिमा है। और वेद-पाठी वेद के अधारी हैं, वेदों का

जीवना जीवरूप ओंकार है, सो वेद ओंकार के आधार हैं सो ओंकार मेरे आधार है। और सभी लोक आकाश के आधार हैं और आकाश का जीव शब्द आकाश शब्द के आधार है शब्द मेरा आधार है, सब मनुष्य बलके आधार हैं सो बल मेरा आधार है सब लोक धरती के आधार हैं, धरती का जीव गन्ध है, गन्ध जो वासना है सो धरती वासना के आधार है, वह वासना मेरे आधार है यह सब लोग अग्नि के आधार हैं, अग्नि का जीव तेज है, अग्नि तेज के आधार है, सो तेज मेरे आधार है, और सब भूत प्राणियों का जीवन मैं हूं, जितने तपस्वी हैं सब

तपस्या के आधार हैं तपस्या मेरे आधार है। हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन सब भूत प्राणियों का बीज तूं मुझको जान। और सनातन पहिले तूं मुझको जान और जो कुछ बुद्धवन्तों में बुद्धि है सो तूं मुझको जान तेज वालों में तेज मुझको जान बलवन्तों में जो बल है सो मेराही जान जो मुझको किसी वस्तु की वांछा नहीं, अपने आनन्दकर पूर्ण हूं, किसी साथ मेरा मोह नहीं,हे कुरुवंशी अर्जुन जो शुभ धर्म का मार्ग मारने हारा है काम सो भी मैं हूं,यह जो तीनों गुण हैं सातक, राजस, तामस तिन्हों में सब मेरी ही शक्ति की सत्ता है,और मेरे में यह नहीं इन से मैं

न्यारा हूं। त्रिगुण माया, महा माया, प्रजा मोह उत्पन्न से मोह मग्न मूढ़ अन्ध महा प्रभु नहीं गमते। देविये गुणमई माया, देवियं अर्थ कह। प्रजा रच खेल करती, देवियं यह अर्थ कह ॥ १ ॥ ऐसी माया प्रभु की, तरणी कठिन अपार। एक देव की शरण होय सो जन उतरे पार ॥ २ ॥ हे अर्जुन और उपाय माया से तरणे का कोई नहीं, महामूढ़ पापी जिन्होंने शरण प्रभु की नहीं लई, वह बहुत माया के भ्रम में भूले हैं। हे अर्जुन तिनका ज्ञान माया ने अछाद लिया है और स्वभाव तिनके वैसे हो रहे हैं। हे अर्जुन चार प्रकार

के जीव पुण्यात्मा हैं। एक तो रोगी मेरा स्मरण करते हैं। मनुष्य रोग मिटावन के अर्थ मेरा भजन करते हैं तिनका रोग ही गुरु है। एक ज्ञान पावने निमित्त मेरा भजन करते हैं। एक अर्थी मन की कामना पावने के निमित्त,पुत्र वा धन आदि मुझको सिमरते हैं। हे अर्जुन चौथे ज्ञानी भजन करते हैं तिन सभों में ज्ञानी श्रेष्ठ हैं किस कारण ज्ञानी श्रेष्ठ है। सत्य स्वरूप स्वामी प्रभु, अविनाशी सदा अनन्त। सुख दाता दुःख हरण प्रभु ऐसा केवला कन्त ॥१॥ इस प्रकार पहिचान कर, चरण कमल का ध्याय। सो ज्ञानी अति श्रेष्ठ है, मुझ उस में

भेद न मान ॥ २ ॥ हे अर्जुन मुझ को ज्ञानी प्यारे हैं, और ज्ञानियों को मैं प्यारा हूं, पर यह जो रोग से आदि लेकर मुझको सिमरते हैं, तिनको भी बुरा मत जान। सो भी बड़े उदार हैं, बड़े श्रेष्ठ हैं, जो मुझ ईश्वर को सिमरते हैं, पर ज्ञानी मेरा आत्मा है तिन ज्ञानियों ने केवल मेरे चरणों साथ दृढ़ निश्चय बांधा है। और तिन्होंने भी उत्तम ठाकुर ईश्वर जाना है। हे अर्जुन बहुत जन्म प्रयन्त भजन करते करते साधना से इनकी बुद्धि निर्मल होती है तब उनको मेरे जानने का ज्ञान उत्पन्न होता है कैसा ज्ञान सो सुन। तिनको सभी वासुदेव ही दृष्टि आवे

है सो ज्ञानी महा पुरुष महन्त कहिये हैं पर ऐसे ज्ञानी संसार में दुर्लभ हैं। जो मुझ को त्याग कर मनुष्य और देवता की उपासना करते हैं तिनकी बात सुन। कामना कर तिनका ज्ञान अछादिया है। कामना के पावने के निमित्त और देवता की उपासना करते हैं, और जिस देवता की उपासना करते हैं सो मैं तिनके हृदय विषे वैठकर उस देवता के विषे दृढ़ श्रद्धा लगाता हूं, तिसकी श्रद्धा तिस देवता में निश्चल करता हूं, सो मनुष्य प्रीतिके साथ देवता की पुजा करता है। और मैं ही तिस देवता विषे अन्तर्यामी होकर मनुष्यों को देवता से कामना

वर दिलाता हूं, देवतों का दिया जो वर सो अनित्य, अविनाशी नहीं अंतवत है विनस जाता है और जिनकी निपट थोड़ी बुद्धि है देवतों की उपासना करते हैं। अब अर्जुन और निर्णय की वात सुन। देवतों के पूजने हारे देवतों के लोक में जाय प्राप्त होते हैं। और मेरे भक्त मेरे परमानन्द अविनाशी पद विषे जाय प्राप्त होते हैं, अब अर्जुन और सुन मैं अविनाशी हूं, एकांती हूं, किसी से प्रगट नहीं हुआ किसी ने जाना भी नहीं किसी सवारिया भी नहीं अपनी कला कर मैं आपही पूर्ण हूं। दुर्बुद्धि जो मत के हीन हैं सो मुझको किसी से प्रगट जानते

है। सो मेरे प्रताप को नहीं जानते जो मैं कैसा हूं॥
अति उत्तम वह ऊंच प्रभु, तिस समान नहीं कोय।
निर्मल निश्चल अति अगम, यह प्रताप प्रभु होय ॥१॥
हे अर्जुन बिचारे मनुष्य क्या करें। तिनका ज्ञान मेरी योगमाया ने अछाद लिया है,सो माया प्रकाश होने नहीं देती॥ मोह माया महा मदरं, अधमं नीच विमोचं कहं।
अविनाशी अजन्मा तिह, प्रताप अन लखत ॥ १ ॥ हे अर्जुन एक मेरा नाम वेदों में चैतन्य पुरुष है। तिसका अर्थ सुन ब्रह्मा से आदि चींटी प्रयन्त सब भूत प्राणी वर्तमान जो अब वर्ते हैं और जिन्हों ने आगे होना है

और पीछे होय बर्त्ते हैं सो तिनको मैं भली भांत जानता हूं मुझको एक तुहीं जानता है और कोई नहीं जानता क्यों नहीं जानते इन्द्रियों के भोगों में तिनकी कामना है भली वस्तु पाये से प्रसन्न और बुरी वस्तु पाये से दुःखी होते हैं ऐसे हर्ष शोक कला क्लेश कर मोह को करते हैं इसकर मुझको नहीं पहिचानते मूढ़ हुए हैं इसीकर जन्मते मरते हैं और जिनके पाप काटे गये हैं सो ऐसे पुण्यकर्म्मी परम पुण्यात्मा है, संसार के हर्ष शोक कला क्लेश से मुक्ति होयकर मन दृढ़ निश्चय साथ मेरा भजन करते हैं, मेरे ही आसरे हैं सो मेरे भजन के ज्ञान का फल क्या पावेंगे

सो सुन। जरा जो बुढ़ापा और जन्म मरण तिन दुःखों से मुक्ति होवेंगे। तिनके मनमें मेरे जानने का ज्ञान उपजे है सो कैसा ज्ञान, मुझको ही ब्रह्म जानते हैं मुझको ही अद्भुत जानते हैं, मेरे को ही अध्यात्म देव जानते हैं। ऐसा मुझको जानकर प्राण त्यागने के समय मनको निश्चल चेता मेरे में राखकर मेरा स्मरण करते देहको त्यागते हैं। इसी से प्राणी परमानंद अविनाशी पद विषे जाय प्राप्त होते हैं।

इति श्रीभगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्या योग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्बादे प्रकृति भेदनाम सप्तमोऽध्याय॥

* अथ सातवें अध्याय का महात्म *

श्रीनरायणोवाच—हे लक्ष्मी अब सातवें अध्याय का महात्म सुन। एक पटल नामा नगर है तिस में संकूकर्ण वैश्य रहिता था वह व्यापार करने को नगर के बाहर कहीं को जाता था रसते में संकूकर्ण को सर्प ने डसा वह मर गया उसके साथियों ने उसकी दाह कृत्यकर आगे को सिधारे। जब फिरके घर में आये तिसके पुत्र ने पूछा मेरा पिता संकूकर्ण कहां है। उन व्यापारीयों ने कहा तेरे पिता को सर्प ने डसा था, वह मर गया, और यह पदार्थ तेरे पिता का है तूं ले। एक करोड़रुपयालिया और तिसकी गति करने को कहा। क्यूं जो वह अवगति

मरा था। उस बालक ने अपने घर आयकर ब्रह्मणों से पूछा कि सर्प के डसे से मरे की क्या गति करनी चाहिये पंडितों ने कहा नारायणबिल करावो। ऊर्द के आटे का पुतला बनाय चूनियां जड़ाये। जैसी विधि पंडितों ने कही तैसी करी बड़ा यज्ञ किया बहुत ब्राह्मण जिवाये श्राद्ध पिंड पत्तल कराये। बाकी द्रव्य जो रहा चारों भाइयों ने बांटा। एक पुत्र ने कहा जिस सर्प ने मेरे पिता को काटा है मैं तिसको मारूंगा उन व्यापारियों से पूछा वह ठौर मुझे बतावो,जहां मेरा पिता संकूकर्ण मरा है व्यापारियों ने कहा चल वह ठौर तुझे बतादे, वहां लेजाय कर

खड़ा किया देखे तो वहां एक वर्मी है तिसे कुन्दालों के साथ खोदने लगा जब छेद बड़ा हुआ वहां से एक सर्प निकला। कहा तूं कौन हैं मेरा घर क्यों खोदता है उस बालक ने कहा मैं संकूकर्ण का पुत्र हूं जिस सर्प ने मेरे पिताको मारा है मैं तिसको मारूंगा तब उस सर्प ने कहा हे पुत्र मैं तेरा पिता हूं तूं मुझे इस अधम देह से छुड़ाये और मुझे मत मार यह मेरा पूर्बला कर्म्म था, सो मैंने भोगा तब लड़के ने कहा हे पिता कोई यतन बतावो जिस से तेरा उधार होय। तब उस सर्प ने कहा, हे पुत्र किसी गीता पाठी ब्राह्मण को घर में भोजन करावो और उस

की सेवा करो उसके आशीर्वाद कर मेरा कल्याण होगा। तब उस बालक ने अपने घर आकर अपनी स्त्री को समाचार कहा। तब उसकी स्त्रीने कहा, अवश्य करो जी। साधुओं को जिमावो संतों की सेवा करने से उधार होय तो करो। तब खोजना कर उस नगर में जितने पाठ गीता का करते थे तिन सबको बुलाय कर श्रीगीता जी के सातवें अध्याय का पाठ कराये और उनको भोजन करवाया। और बहुत सेवा करी तन मन करके उनकी प्रदक्षिणा करी बिनती करी हे महा पुरुषों आप आशीर्वाद करो जो मेरे पिता संकूकर्ण का उधार होवे अधम

देह से छूटे तब उन साधू ब्राह्मणों ने आशीर्वाद करा तत्काल वह अधम देह से छूटकर देव-देही पाये बिवान पर चढ़ कर आकाश मार्ग को जाता हुआ अपने पुत्र को धन्य धन्य करता बैकुंठ धाम में जाय प्राप्त हुआ। श्रीनारायण जी ने कहा,हे लक्ष्मी सातवें अध्याय का यह महात्म है जो तैंने श्रवण किया है। जो पढ़े सुनेगा, सो सद्गति पावेगा ॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्बादे श्री गीता महात्म नाम सप्तमो अध्याय ॥७॥

* अथ आठवा अध्याय प्रारम्यते *

अर्जुनोवाच–श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन

प्रश्न करे है, हे पुरुषोत्मजी तुमको जो तुम्हारे भक्त ब्रह्म जानते हैं सो ब्रह्म क्या कहिये, अध्यात्म क्या कहिये है, कर्म्म क्या कहिये है, अद्भुत क्या कहिये, अद्वैत क्या कहिये हे मधुसूदनजी अधयज्ञ क्या कहिये है और जो प्राण त्यागने के समय तुमको ऐसा जानते हैं तिन की गति क्या है। इन सब अपने नामों को कृपा करके मुझ को समझावो जी। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण भगवान जी कहते हैं। श्रीभगवानोवाच—हे अर्जुन मैं सब से न्यारा और अविनाशी हूं, इस कारण मेरा नाम ब्रह्म है, और मुझको अपने ही प्रताप से प्रताप है अपने बल

कर ही बल है, अपने ज्ञान कर ही ज्ञान है। और जितने भूत-प्राणी हैं तिन सबको मेरे बल करही बल है मेरे प्रताप करही प्रताप है मेरे ज्ञान करही ज्ञान है सब मनुष्यों का अधिकारी ठाकुर प्रभु हूं, इस कारण से मेरा नाम अध्यात्म है, और सर्व भूत-प्राणियों को उपजावता हूं। जैसी २ किसी के मस्तक में कर्म रेखा लिखता हूं वैसी ही तिस को प्राप्त होती है। इस कारण से मुझको कर्म कहते हैं पंच भूत जो अपतेज, वायु, पृथ्वी, आकाश हैं, तिनका अविनाशी करता हूं। इस कारण से मेरा नाम अद्भुत है और जो कुछ होनहारी है तिसका भी प्रभु ठाकुर मैं ही हूं इससे

मेरा नाम अद्वैत है, जितने यज्ञ होते हैं देवतों पितरों के निमित्तश्राद्ध,श्राद्ध,मनुष्य करते हैं सबमें प्रथम मेरीहीपूजा होती है। इससे मेरा नाम अधयज्ञ है और एक मेरा नाम देह भरतम्वर है,इसका अर्थ सुन, जितने देहधारी हैं तिन सब में मेरी देह अति सुन्दर है। मेरी देह जैसी किसी की देह सुन्दर नहीं। और न मेरे जैसा किसी में बल है। देह धारियों की क्या कहिये जितने मेरे अवतार हैं उन सब में से यह मेरा अवतार महाश्रेष्ठ है। इस कारण से मेरा नाम देहभरतम्वर है,अन्तकाल देह त्यागने के समय ऐसा मुझको पहचानकर मेरा स्मरण करते२ देह त्यागते हैं सो

मेरे परमानन्द अविनाशी पदमें जा प्राप्त होते हैं। इस में सन्देह नहीं। हे अर्जुन देह त्यागने के समय जिस २ का स्मरण करते देहको त्यागते हैं सो तिसही को पहुंचते हैं इसी से सर्वकालों में मेरा ही स्मरण कर, क्या जानिये यह देह क्षण भंगुर है किस समय छूट जावे मेरे विषे निश्चल चित्ता राखे तो मुझको पावेगा, इस में संशय नहीं। हे अर्जुन सब समय चित्तकर स्वास२मेरा ध्यानकर मेरा स्मरण कर यह अभ्यास योग का लक्षण है। मुझ प्रभु विषे मनराख महा ईश्वर पूर्ण प्रभु ऐसा जानकर ध्यान करने से तो मेरे विषे मिल जाता है। फिर कैसा हूं कामरूप सबका ज्ञाता

सब से आदि अलेख हूं। मेरी आज्ञा सबके सिर पर है। मुझ पर किसी की आज्ञा नहीं। और सूक्ष्म से अति सूक्ष्म हूं,सबका उत्पत्ति कर्त्ता हूं, अचिन्त हूं, प्रवीन हूं; सबके जानने हारा हूं,जिसको अचिन्त रूप कहते हैं,वही तेजरूप होकर सूर्य्य में विराजमान होता हूं। अज्ञान अन्धकार से न्यारा हूं, पारब्रह्म हूं और एक योगी पुरुष प्राण त्यागने के समय अपनी इच्छा को निश्चलराखकर भक्ति योग के बलकर प्राणवायु को त्रिकुटी से भली भांत ठहराये परमपुरुष की श्रद्धा साथ ऐसा जाप संग्रह कर देह त्यागते हैं। सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद

में जाय प्राप्त होते हैं। और जिस पुरुष के पावनें के निमित्त ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य रखते हैं तिस पुरुष का महात्म मैं तुझको थोड़े ही में कहता हूं। एक योगी इस प्रकार देह त्यागते हैं सो सुन। यह नौ द्वार देह के संयम साथ मन्द कर्म्मों को हृदय से निश्चल करते हैं और प्राण पवन को रोककर मस्तक में लेआते हैं। और मेरे नाम का हृदय में जाप करते हैं ॐब्रह्म इस नामका जाप स्मरण करते देह को त्यागते हैं। सो मेरे परमपद ब्रह्म अविनाशी पद में जाय प्राप्त होते हैं। अब मेरे प्रेमी भक्तों का वृत्तांत सुन जो मेरे प्रेमी मन करके निश्चल चेता

मेरे में रखकर चलते फिरते बैठते उठते मुख से राधा कृष्ण कहैं, राम, भगवान, पारब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा, वासुदेव, कृष्णाविश्वंभर इन नामों का जाप करते हैं ऐसे जो नित्य योगी मेरे साथ जुड़ते हैं सो मुझे सुखेन ही पावेंगे और देहकोत्यागकरमेरे परमधाममें जायप्राप्त होते हैं, संसार तो दुखोंका समुद्र है इससे महापुरुष जो परमसिद्धि हैं सो फिर जन्म नहीं पावेंगे, हे अर्जुन यह जीव ब्रह्मलोक तक जाकर फिर आते हैं। और संसार में जन्म मरण पाते हैं, और जिन पुरुषों ने मुझे पाया है सो प्राणी मेरे पद में आय फिर जन्म नहीं पाते। अब अर्जुन जिन पुरुषों ने मेरा

महात्म सुना है तिनकी दृष्टि सुन। कैसे हैं सो प्राणी चारों युग जो हैं। सतयुग,द्वापर,त्रेता,कलियुग जब यह चारों युग सहस्रवार वर्त चुके हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता है इसी प्रकार यह चारोयुग सहस्रवार व्यतीत होते हैं तब ब्रह्मा की रात्रि होती है। अब इन युगों की मर्यादा सुन सत्रालक्ष अठाईहज़ार वर्ष का सतयुग,बारहलाख छानवें हज़ार वर्ष का त्रेतायुग,आठ लाख चौंसठ हजार का द्वापरयुग,चारलाख बत्तीस हजार वर्षका कलियुग है यह चारों त्रिताली लक्त बीसहजार वर्ष के हैं,जिन मेरा प्रताप परम अविनाशी जाना है तिनकी दृष्टि सुन। यह चारों

सहस्त्र वार बीत जावें, तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। इनके जाने से एकसा ही है अपनी आयु भोग के ब्रह्मा भी नष्ट होजाता है, मानुष्य भी मरजाते हैं। इस से जो बिनसे हैं सो एक समान हैं। तिन्होंने एक अविनाशी ही पहचान कर मेरे चरण कमलों के साथ दृढ़ निश्चय बांधा है। अब और सुन। हे अर्जुन मेरा जो है अवगति स्वरूप तिस स्वरूप से ब्रह्मा के दिन विषे सृष्टि उपजती है। फिर ब्रह्मा की रात्रि में मेरे अविनाशी अवगति स्वरूप में जाय समाते हैं। हे अर्जुन यह जो चौरासी लाख जून ब्रह्मा के दिन में उपजे हैं और रात्री को मेरे अब

गति स्वरूप में जाय लीन होती है। सो मेरा अवगति
स्वरूप सबसे न्यारा है। और सनातन पुरातन है सर्वके
नाश होने से तिसका नाश नहीं होता। ऐसा तो परम
अविनाशी हूं और किसी ने कबी प्रगट देखा भी नहीं
इस कारण से इसका नाम अवगति है उसको परमगति
कहिते हैं।उसके प्राप्त होने से फिर संसार के मार्ग में नहीं
आता । सो परमधाम मेरा घर है। हे अर्जुन सो पुरुष
सब से न्यारा है और तिस मार्ग के पावने का उपाय
सुन। जिस मार्ग के पाने से अनन्त भक्ति अखंड भक्ति
कर पाये है। अब अखण्ड अनन्त का वृत्तांत सुन मेरे

साथ दूसरा देवता नहीं पूजना, मेरे भजन बिना एक श्वास नहीं खोवना इसका नाम अनंत अखंड भक्ति है इस भक्ति कर मैं पाया जाता हूं। सो कैसा पुरुष है जिस से सभी सृष्टि उपजती है फिर उसमें जाय लीन होती है। हे अर्जुन और सुन इच्छाचारी जो दो योगी हैं एक तो देह त्याग कर मुझ पारब्रह्म में जाय लीन होते हैं। फिर संसार मार्ग में नहीं आते। दूसरे योगी चंद्रमा के लोक तक जाकर फिर आते हैं। अब जो चंद्रमा के लोक तक जाय कर फिर आते हैं तिनकी बात सुन। वह इच्छा चारी योगी कब देह को त्यागते हैं जब मनुष्यों का

दिन होता है शुक्ल पक्ष चान्द्रायण सोई पितरों का दिन होता है। और कृष्णपक्ष जो अंधेरा पक्ष है सो पितरों की रात्री होती हैं। देवताओ का दिन कौन है जब छः महीने सूर्य का रथ उत्तरायण रहता है। और छः महीने सूर्य का रथ दक्षणायण होता तब देवताओं की रात्री होती है। वह इच्छाचारी योगी जब देवताओंका पितरों का मनुष्यों का दिन होय तब देह का त्याग करे हैं। मनुष्य भी जागते हों पितर भी और देवता भी जागते हों। सो देह त्यागकर मनुष्यों का, पितरों का, देवताओं का कौतुक देखते हुए जाते हैं। इन लोकों से आगे अग्निका जोत नामा नगर है

तिस का कौतुक देखते हुए मेरे परम पद अविनाशी मैं जाय लीन होते हैं। तब मेरे जानने हारा परम सुख रूप होय जाता है। अब दूसरे योगी की बात सुन जो जाय कर फिर आवे है। वह योगीश्वर जब मानुष्यों की देवतावों की रात्री होती है तब देहत्यागकर इन लोकों बीच होकर एक धुंए का नगर है उस बीच से चन्द्रमा की ज्योति में जाय प्राप्त होता है। वहां कितनाक काल वास करके फिर मनुष्य लोक विषे आवे है। यह दोनों मार्ग योगियों के पुरातन हैं। एक का नाम शुक्ल चांदनी रात्री और एक का नाम कृष्ण अंधेरी रात्री है एक मार्ग

को गये फिर नहीं आवते एक मार्ग को गए फिर आवते हैं, हे अर्जुन! तुमने दोनों मार्ग योगियों के सुने। जिन्होंने यह बात समझी है सो मोह को प्राप्त नहीं होते, इस से हे अर्जुन तूं भी इन सर्व कालों में मेरे साथ जुड़िया रहो। अब जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े सुने तिसको कितना पुण्य प्राप्त होता है सो सुन। चार वेद पढ़े से जो पुण्य होए, सर्व यज्ञ किए से जो पुण्य होए, सर्ब तप करने से जो पुण्य होए, सभी तीर्थ स्नान किये से जो पुण्य होए, सब दान किये से जो पुण्य उपजे है सो सभी पुण्य इस अध्याय के पढ़ने से प्राप्त होवेंगे जो श्रद्धा सहित इसको धारण करे

तिस को अनंत पुण्य प्राप्त होवेंगे ॥ इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषत सूब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे अक्षर ब्रह्मयोगोनाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

आगे आठवें अध्याय का महात्म चलिया ॥

श्रीनारायणजी बोले—हे लक्ष्मी! अब आठवें अध्याय का महात्म सुन। दक्षिण देश नर्बदा नदी के किनारे एक नगर है, उसमें शुशर्मा नाम एक ब्राह्मण रहता था;उसके पास बहुत द्रव्य पदार्थ था और संतों की सेवा करनेवाला था, बड़े यज्ञ करता था। एक दिन एक संत से पूछा, जो ऋषिजी मेरे सन्तान नहीं है। तब ऋषिश्वर ने कहा, तूं अश्वमेध यज्ञकर बकरा देवी को चढ़ाय देवी तुझको पुत्र

देवेगी, तब उस ब्राह्मण ने यज्ञ करने को एक बकरा मोल लिया उसको हाथ कर मेवा खिलाया जब उसको मारने लगा तब बकरा कह कह शब्द करके हंसा। तब ब्राह्मणने पूछा, रे बकरे! तूं क्यों हंसा है बकरे ने कहा, पिछले जन्म मेरे भी संतान नहीं थी, एक ब्राह्मण ने मुझे भी अश्वमेध यज्ञ करने को कहा था, सारी नगरी में बकरा ढूंढ रहा था, बकरा हाथ ना लगा ढूंढते २ एक बकरी का छेला दूध चूंघता था उस छेले समेत बकरी को मोल ले लिया जब बकरी के स्थन से छुड़ाय कर यज्ञ होने लगा, तब बकरी बोली, अरे ब्राह्मण! तूं ब्राह्मण नहीं मेरे पुत्रको

होम में देने लगा है तूं महापापी है। यह कबी सुना है जो बिगाने पुत्र को मारने से किसी ने पुत्र पाया है, अपनी सन्तान के लिये मेरे पुत्र को मारता है, तूं निर्दयी है, तेरे पुत्र नहीं होवेगा वह बकरी बहुत कहरही पर मैंने होम किया। बकरी ने श्राप दिया जो तेरा भी गला इसी भांत कटेगा इतना कहे तड़फ कर बकरी मर गई। कई दिन बीते मेरा भी काल हुआ जम मारते मारते धर्मराज के पास लेगये। तब धर्मराज ने कहा इसको नर्क में देवो यह बड़ा पापी है! फिर नर्क भोगायकर बांदर की जून दी एक बाजीगर ने मोल लिया। वह मेरे गले में जेवड़ी पायकर

दर दर सारा दिन मांगता फिरे। खाने को थोड़ा दिया करे जब बांदर की देह छूटी तो कुत्ते का जन्म पाया। एक दिन मैं किसी की रोटी चुराय खाई। उसने ऐसी लाठी मारी कि कमर टूटगई। उस दुःखकर मेरी देह छूटगई। फिर घोड़े की देह पाई। उस घोड़े को एक भठियारे ने मोल लिया वह सारा दिन फिरिया करे। खाने पीने की खबर नहीं लेवे सांझ पड़े तब एक छोटीसी रस्सी के साथ बांद छोड़े। ऐसा बांधे कि मैं मक्खी भी नहीं उड़ाय सकूं। एक दिन दो लड़के एक कन्या मेरे पर चढ़कर चलाने लगे वहां कीचड़ बहुत था। फंसगया ऊपर से वह मारने लगे

वहा मेरा मरणा हुआ। इस भांत बहुत जन्म भोगे अब बकरे का जन्म पाया,मैंने जाना था जो इसने तुझे मोल लिये है मैं सुख पाऊंगा । तूं छुरी लेकर मारने लगा है। तब ब्राह्मण ने कहा, हे बकरे ! तुझे भी जान प्यारी है ! जैसे चिड़िया को कंकर मारने से वह आगे से उड़जाती है। अब मैं अपने नेत्रों कर देखी हुई कहता हूं सो सुन। कुरुक्षेत्र में एक राजा स्नान करने आया नाम उसका चन्द्रशुशर्मा था उसने ब्राह्मण से पूछा ग्रहण में कौण दान करूं उसने कहा राजा काले पुरुष का दानकर तब राजे ने काले लोहे का पुरुष बनवाया। नेत्रों को लाल जड़वाय

सोने के भूषण पहराय कर तिसको त्यार किया राजा स्नान करने चला स्नान करके दान किया । वह काला पुरुष कह कह कर हंसा । राजा डर गया कहे कोई बड़ा औगुण है जो लोहे का पुरुष हंसा है। तब राजे बहुत दान किया वह फिर हंसा। ब्राह्मण को कहा, हे ब्राह्मण ! तुं मुझे लेवैगा। तब ब्राह्मण ने कहा, मैं तेरे सरिखे कई पचाये हैं। तब काले पुरुष ने कहा, तूं मुझको वह कारण बताओ जिस कारण तैंने अनेक दान पचाये हैं, तब ब्राह्मण ने कहा जो गुण मेरे विषे है सो मैं ही जानता हूं। तब वह काला पुरुष कह कह कर फट गया

उस में से एक और कालका की मूर्ति निकल आई तब
ब्राह्मण ने श्रीगीताजी के आठवें अध्याय का पाठ किया,
तब उस कालका की मूर्ति ने सुन कर देह पलटी जल
की चुली भरके उस ब्राह्मण ने उस मूर्ति पर छिड़की
जल के छूने से तत्काल उस की देह छूटी देवदेही पाई।
विवानों पर बैठकर बैकुंट को गये। तब उस अजा ने कहा
तुम्हारे में भी कोई ऐसा है जिसके शब्द कर मैं भी अधम
देह से छूटूं। तब उस ब्राह्मण ने कहा, मैं वेद-पाठी हूं,
उस नगर में एक साधू गीता पाठी भी था तिस से आठवें
अध्याय का पाठ सुन कर अजा की देह छूटी देव-देही

पायकर बैकुंठ को गया और कहता गया । हे ब्राह्मण ! तूं भी गीता का पाठ कर तुम्हारा भी उधार होयगा, तब वह ब्राह्मण भी श्रीगीताजी का पाठ करने लगा श्रीनारायजी कहैं, हे लक्ष्मी ! यह गीताजी के आठवें अध्याय का महात्म है सो तूने सुना है । इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संबादे उत्त्राखंडे गीता महात्म नाम अष्टमों अध्याय ॥८॥

* अथ नौवां अध्याय *

श्रीभगवानोवाच–श्रीकृष्ण भगवानजी अर्जुन को कहे हैं, हे अर्जुन ! मैं गुह्य से परम गुह्य ज्ञान तेरे प्रति कहता हूं तू सुन तेरे प्रति क्यों कहता हूं तूं मेरे वचनों

की निंदा नहीं करता, सत्य सत्य कर मानता है। इसी से ज्ञान जिस के जानने से संसार से निरलेप रहेगा। जितनी विद्या हैं और जो गुह्य वस्तु हैं तिनका भी राजा हैं और पवित्र से अति पवित्र हैं उत्तम से अति उत्तम हैं और अगम पुरुष जो किसी के कहे जाना नहीं जाता। तिसको प्रत्यक्ष दिखाऊंगा जिस ज्ञान के जानने से अति सुन्दर अविनाशी पुरुष पाइये है ऐसे ज्ञानको जो पावे है तिसकी बात सुन। हे परंतप अर्जुन! जो ऐसे ज्ञान के जानने से बिना हैं, सो प्राणी मुझ को नहीं पावते बारम्वार संसार में जन्मते मरते हैं। अब अर्जुन और सुन जिस

ज्ञान की पीछे महिमा कही है सो सुन। हे अर्जुन मेरा जो अविगत स्वरूप है तिस से सारा जगत प्रगट हुआ है और दूसरा जो मेरा विराट स्वरूप है तिस पर ब्रह्मा से आदि लेकर चीटी प्रयंत जो बसे हैं, सो किस भान्त विराट पर लोक बसे हैं सो सुन। जैसे एक बड़े वृक्ष पर असंख्य पंखेरू बसते हैं तैसे ही मेरे विराट्रूप में लोक देह धारी भूत प्राणी बसते हैं। और सबके हृदय में आत्मा राम मैं ही बसूं हूं, एक रूप तेरे रथ पर तेरे साथ कौतक करूं हूं। हे अर्जुन देख तो मैं तुझको अपनी प्रभुता वडियाई ऐश्वर्य्य योग कहा है। सबके भरण पोषण हारा भी मैं हूं। सबसे

न्यारा भी मैं हूं। सब वार्ता तेरे आगे कही है,सबका उप-जावनहारा भी मैं,ही हूं। और निरलेप कैसा हूं इसका दृष्टांत सुन जैसे नित्य ही पवन का निवास अकाश में रहता है, और अकाश को स्पर्श नहीं करता है। तैसे सभी भूतप्राणी मेरे से ही उत्पन्न हुए हैं। मेरे,मैं ही वरते हैं और मैं ही सब के भीतर हूं और सबसे न्यारा हूं। ऐसा निरलेप हूं। हे कुन्ती नन्दन! जब यह संसार अपनी मर्यादा लग पहुंचता है तब संसार प्रलय होकर मेरी प्रकृति जो माया है तिस में जाय लीन होता है। फिर तिस माया और संसार का आदि मैं ही हूं। फिर संसार को प्रकट करता हूं और अपनीजो प्रकृति

मायाहै तिसमें बारम्बार संसार को प्रगट करता हूं पालना करता हूं,प्रलय करता हूं। और यह जो सब भूत प्राणियों का गांव चौरासी लाख जीव की योनी है,यह अपने बस नहीं माया के बस है अब अर्जुन और सुन। मैं संसार को उ- पजाता हूं,संघार करता हूं, पर इस कर्म किये का मुझ को लांछिन दोष नहीं लगता क्योंकि मैं किसी के साथ ममता मोह नहीं रखना मैं निरमोही उदासीन हूं इन सब से उदास हूं, इस कारण से मुझको कोई बन्धन नहीं बन्ध सक्के। हे कुन्ती नन्दन अर्जुन मेरी कृपा दृष्टि को पायकर तूं भी निरलेप न्यारा होय रहो, आपको निरलेप जान। अब अ-

र्जुन और सुन। यह जो मेरी प्रकृति माया है सो संसार जड़ जंगम को उपजावती है,प्रगट करती है दूसरा प्रकार संसार के उपजावने का तूं मत जान ऐसा ईश्वर मैं ही हूं, हे अर्जुन यह जो मनुष्य देह मैंने धारण करी है सो मूढ़ मत मूर्ख अज्ञानी मुझको समझते नहीं मुझे पछानते नहीं जो श्रीकृष्णजी ऐसे प्रभू हैं सो प्राणी मेरे प्रताप को नहीं जानते जो मैं कैसा हूं। सब भूत प्राणियों का ठाकुर प्रभु हूं जो पुरुष मुझको ऐसा नहीं जानते सो क्या फल पावते है सो सुन तिनकी आशा सब निष्फलहै वह जो कुछ भले कर्म दान पुण्य आदिक करते हैं सब निष्फल हैं फिर कैसे

हैं राक्षसों जैसे तिनके स्वभाव हैं। तिस प्रकृति के मोहे हुए मुझे नहीं पछानते जो भले पुरुष महात्मा भक्तजन मेरा भजन करते हैं वह कैसे हैं। तिनकी बात सुन। तिनकी देव-तों जैसी प्रकृति है मेरा भजन मुझको पछान कर करते हैं। कैसे पछानकर करते हैं श्रीकृष्णजी सर्व की आदि हैं। निरन्तर मेरी ही महिमाको गावते हैं। पढ़ते हैं। कथा की-र्तन करते हैं, दृढ़ निश्चय साथ मेरी पूजा करते हैं, बार-बार मुझको नमस्कार करते हैं इसप्रकार मेरा भजन करते हैं। दूसरे ज्ञानी जो मेरे भक्त हैं मुझको किसप्रकार भजते हैं। तिनका भजन सुन। ज्ञानी मुझको जानते हैं जो एक परमे-

श्वर पारब्रह्म है सो अनेन रूप होकर पसारिया है दूसरा भेद कोई नहीं एक ही है। और कहां २ वह मुझको जानते हैं हे अर्जुन प्रकृति भी मैं ही हूं यज्ञ भीमैं हीहूं सो प्रकृति यज्ञ का नाम है पर तिनमें कुछ भेद है स्वाहा और सुध इन वचनों कर जो कुछ अग्नि में होमये है यह वचन भी मैं हूं।खीरसे आदि लेकर जो अन्न हैं सो मैं हूं। यज्ञो विषे जो मंत्र पढ़ते हैं, सो मैं हूं। विधाता भी मैं हूं, वेदों विषे ओंकार मैं हूं, ऋग, यजु, साम, यह वेद भी मैं हूं, उसकी गतीकरता भी मैं हूं। सखा भी मैं हूं,निवास सौन के ठाहर भी मैं हूं और संसार मेरी शरण है मैं ही सबका

मित्र हूं, सर्व का प्रलय भी मैं ही करता हूं सब का उत्पत्ति करता भी मैं हूं, और यह विश्व मेरे में लीन होती है सर्व बातों कर मैं पूर्ण हूं। इस कारण से मेरा नाम निधानिधान कहा है। सर्व का अविनाशी बीज हूं, सूर्य्य होकर मैं ही तपता हूं प्रलय होकर प्रलय भी मैं ही करता हूं मैंने ही देवता अमर किये हैं और मनुष्यों से आदि लेकर सब शरीरों को मैंने ही मृत्यु लगाई है। हे अर्जुन! जो मनुष्य मुझको इस विध कर पूजते हैं, तिन के पाप काटे जाते हैं जो प्राणी यज्ञ कर स्वर्ग पावने की कामना करते हैं, वहां अपने पुण्य की मर्यादा लग स्वर्ग दिव्य भोग कर जब

तिनका पुण्य क्षीण होता है तब स्वर्ग से गिरते हैं। फिर मनुष्य लोक में जन्म पावते है। जो इस प्रकार त्रिविधि यज्ञ करते हैं, स्वर्ग की कामना के लिये सो स्वर्ग के सुख भोगते हैं। पुण्य भोगकर वहां से गिर कर फिर गर्भ में आवते हैं। बहुत दुःख पावते हैं और यह बात निश्चल है कामना वाले को सुख नहीं। अब अर्जुन मेरे भक्तों की बात सुन। मेरे भक्त मन का निश्चल चेता मेरे में राख कर स्वास२मेरा स्मरण करते हैं तिनके कल्याण निमित्त मैं चारों ओर सावधान होकर फिरता रहता हूं इस प्रकार जैसे धन पात्र मनुष्य के घर के चारों तरफ चौकीदार

पहरा देता रहता है। हे अर्जुन ! तूं जो मेरा भक्त है, इस लिये मैं तेरी देह की रक्षा करता हूं। सो देख कैसा सावधान होकर तेरे रथ की रक्षा करता हूं, और अपनी दिव्य महिमा कहकर तेरे मन को अपने साथ दृढ़ करता हूं, और परम प्रीति के साथ तेरे रथ के घोड़े हांकता हूं। मैं ऐसे अपने भक्तों साथ प्रीति करता हूं। हे कुंतीनन्दन ! मैं जैसा तेरे अधीन हूं ऐसा और किसी के साथ नहीं। हे अर्जुन ! जो मुझको छोड़ किसी और देवता की प्रीति साथ उपासना करते हैं सो भी मेरी ही पूजा करते हैं पर भूलकर करते हैं। भूलकर क्यों करते हैं सो सुन। हे अर्जुन !

सर्व यज्ञ भोगता मैं ही हूं। और सर्व यज्ञों का प्रभु हूं। जो मुझको ऐसा प्रभु ईश्वर नहीं जानते हैं वह जन्मते मरते हैं। अब अर्जुन एक न्याय की बात सुन जो कोई मनुष्य देवतों का उपासक है सो देवलोक में जाय प्राप्त होता है। जो प्राणी पितरों का उपासक है सो पितर लोक में जाय प्राप्त होता है। जो मुझ पारब्रह्म का उपासक है सो मेरे को आय मिलता है। हे अर्जुन मैं जो शालिग्राम हूं सो मेरी पाषाण की प्रतिमा अथवा धात की, जैसे चतुर्भुज लक्ष्मी नारायण वैकुंठ में विराजता है सो इन विषे मेरे भक्त प्रीति साथ पुष्प पत्र जल समर्पण करते हैं।

सो मेरे भक्तों का दिया प्रीति साथ लेता हूं । जो तूं भोजन करता हुआ पहिले आग्नि में होमे है, सो सब मेरे विषे समर्पण कर तिनका फल क्या पावे है । जो संसार के भले बुरे कर्म तिनका फल सुख दुःख तिनके बन्धन को काटकर होवेगा । हे अर्जुन ! मैं सब भूत प्राणियों के साथ एकसा हूं; किसी देवता के भक्त साथ मोह नहीं पर जो कोई भक्त मेरा स्मरण करते हैं,तैसे ही मैं तिनका स्मरण भजन करता हूं । अब अर्जुन और सुन जो कोई अज्ञानी दुराचारी पापी है किसी समय आनन्द होकर मेरा स्मरण करता है कि हे श्रीकृष्णजी मैं जैसा कैसा हूं, आप की शरण हूं, मैं तुम्हारा हूं ! हे

अर्जुन तिसको भी तूं साधू ही जान। जिस प्राणी ने मेरे साथ निश्चय किया है तिसको साधू होते क्या लगता है। मेरे भजन के आगे पाप क्या वस्तु है। जैसे लकड़ियों की पोट को एक ओर से अग्नि लगावें तो एक घड़ी में सब भस्म होजाती है। इसी प्रकार मेरे भजन के आगे पाप क्या वस्तु हैं,तत्काल धर्मात्मा होजाता है,शान्तिपद को प्राप्त होता है। हे कुन्तीनन्दन! जो मुझको पाप जून भी होकर सिमरे, कौन पाप जून स्त्री, वैश्य, शूद्र से प्राणी भी परमगति के अधिकारी होवेंगे, सो यह निश्चय जान जो मेरे भक्त हैं तिनका नाश नहीं होता। हे अर्जुन!

ब्राह्मणका जो पुण्य जन्म है सो मेरा मुख हैं, क्षत्री मेरी भुजा हैं, तिनको कृतार्थ होना कुछ आश्चर्य नहीं तिस कारण हे अर्जुन मनुष्य का देह तुझको प्राप्त हुआ है। ऐसे देह को पायकर मेरा भजन कर। अब मनुष्य देहका वृत्तान्त सुन जो कैसी मनुष्य देह है सदा नहीं क्षणभंगुर तत्काल नाश होजाती है। रोगों का घर है हाड़ मांस से आदि अपवित्र वस्तुओं से पूर्ण है। यह तो मनुष्य देह के अवगुण हैं। अब इस देही की बड़याई सुन जब यह भ्रमत भ्रमत मनुष्य देह में आवे है तब मेरे जानने का ज्ञान पावे है, मुझे पछान कर मेरा स्मरण करता है। मेरे भजन के

प्रताप कर मेरे परमानन्द अविनाशी पद में जाय प्राप्त होता है। मेरे पदका दाता यह मनुष्य देह ही है। इसकी बड़याई कही है, इसी कारण से हे अर्जुन! यह देह तुझे प्राप्त हुई है। इसको पाकर मेरा भजन कर अब भजन सुन। मन का दृढ़ निश्चय मेरे विषे राख मेरा भक्त हो मेरी पूजाकर मुझको नमस्कार कर इस प्रकार निश्चय कर भजन कर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) ऐसे मेरा भजन स्मरण कर। मेरे साथ ऐसा मिलेगा, जैसे पानी के साथ पानी मिलजाता है। इसी प्रकार मेरे साथ अभेद हो (ओं नमो नारायणा) यह कहो। इति श्रीभगवत गीता सूपनिषद्

सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वादे राजविद्या योगो नाम नवमो अध्याय ॥ ९ ॥

* अथ नवमें अध्याय का महात्म *

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! तूं श्रवण कर दक्षिण में एक भाव सुशर्मा नाम शूद्र था, बड़ा पापी मांस [illegible]सा आहारी था। जूआ खेले, चोरी करे, परस्त्रीरमें [illegible]ा, पाप कर्मी था। एक दिन मदिरापान से तिसकी देह [illegible]ी वह मर कर प्रेत हुआ। एक बड़े वृक्ष पर रहे, एक [illegible]ह्मण भी उसी नगर में रहता था, दिनको भिक्षा मांग [illegible] स्त्री को लेजाय देवे, उस की स्त्री बड़ी कलहनी

थी वह कबी किसी को भिक्षा भी ना देवे। समय पायकर उनदोनों ने प्राण त्यागे। वह दोनों मर कर प्रेत हुए,वह भी उसी वृक्षके तले आय रहे जहां वह प्रेत रहता था। वहां रहते कुछ काल व्यतीत हुआ। एक दिन उस की स्त्री पिशाचनी ने कहा, हे पुरुष पिशाच! तुझको कुछ पिछलेजन्म की खबर है। तब पिशाच ने कहा, सब खबर है, मैं पिछले जन्म ब्राह्मण था।तब पिशाचनी ने कहा, तैने पिछले जन्म मैं क्या साधना करी थी जिससे तुझको पिछले जन्म की खबर है। तब उस ने कहा, मैं पिछले जन्म एक ब्राह्मण से अध्यात्म कर्म सुना था।

तब फिर पिशाचनीने कहा तैंने और कौन साधना करी थी और वह ब्राह्मण कौन था और वह अध्यात्म कौन. कर्म है जिस के सुनने से तुझको पिछले जन्म की खबर रही तब पिशाच ने कहा, मैंने और कोई पुण्य नहीं किया। गीताजी का श्लोक श्रवण किया है। उसका प्रयोजन यह है। एक समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण से तीन बातें पूछी जो गीता जी के नौवें अध्याय में लिखी हैं वह तीन बातें पिशाचनी ने पिशाच से श्रवण करी इन बातों के सुनते ही एक और प्रेत वृक्ष से निकला उसने कहा, री पिशाचनी यह तीन बातें फिर कहो

जोअब कह रही थी। पिशाचनीने कहा, तूं कौनहै मैं तुझेनहीं सुनाती मैं अपने भर्त्तासे पूछती हूं। वह ब्राह्मणकौन था, वह कर्म कौन थे, जिससे। पिछलेजन्मकी खबर रही। इनबातों के सुनते करतेही प्रेतदेही छूटी। तब ब्राह्मण ने कहा, हे साधूएक श्लोक गीता का है जिसके सुनने से पिशाच और पिशाचनीकी देह छूटी। तत्काल देव देही पाईस्वर्ग से बिवान आए तिन पर चढ़कर बैकुंठ को गमन करते हुए जाते २ रस्ते में देवतों ने रोक लिया। कहा तुम ने ऐसे कोन उग्र पुण्य किये जिस के करने से इतनी जल्दी बैकुंठ को चले हो तीर्थ स्नान ब्रत तपस्या दान पुण्य ऐसा कोई नहीं

हुआ जिसका यह फल तुम को मिला है। श्रीनारायण जी की भक्ति नहीं करी कौनकरनी के बलकर बैकुण्ठ को जाते हो तो उन्होंने कहा एक ब्राह्मणके मुखसे हमने श्रीगीताजीका अर्ध श्लोक श्रवण करा है तिसके प्रताप कर बैकुण्ठको जाते हैं तब देवतों ने सुन के कहा श्रीगीता जी का एसा प्रताप है जिस के आधे श्लोक श्रवणसे ऐसे जीव बैकुण्ठवासी हुए हैं वह तीनों जाय बैकुंठमें प्राप्त हुए। श्रीनारायणजीने कहा,हे लक्ष्मी! यह नौवें अध्यायका महात्म है, तैने श्रवण किया है। इतिश्रीपद्मपुराणेसती ईश्वर संवादे उत्तारखंड गीता महात्म नाम नवमों अध्याय ॥९॥

* अथ दशवां अध्याय *

श्रीभगवानोवाच–श्रीकृष्णजी अर्जुन प्रति कहे हैं हे महाबाहू अर्जुन फिर भी तूं मेरा परम बचन सुनमैं तुझ को कहता हूं। क्यों कहता हूं जो तुझको सुनने की प्रीति है सो मैं तेरे कल्याणके निमित्त कहता हूं। हे अर्जुन ! ऐसी मेरी प्रभुताप्रभाव और प्रताप है तिसको तूं भली प्रकार जानता हैं। ब्रह्मा से आदि लेकर, महादेवजी और असंख्य जो मुनिश्वर हैं सो भी नहीं जान सकते। क्यों नहीं जान सकते सो सुन। सर्व देवतों के आदि मैं हूं, यह देवता सब मेरा ही रूप हैं सो मेरे से उपजे हैं यह बात प्रगट है

कोई किसी से उपजता है सो उपजावन वाले की बातको उपजा हुआ क्या जाने तिसका दृष्टान्त सुन। जैसे माली बाग में वृक्ष लगावे है। वृक्ष माली का क्या कर्म जाने ऐसे जो ऋषि मुनि और देवता हैं सो मेरे प्रताप को नहीं जानते। जिस मेरे प्रताप को देवता ऋषि मुनि नहीं जानते सो तुझकोकहि सुनाता हूं। जन्ममरण से रहित हूं, अनादि हूं, मेरा आदि नहीं। सब का ईश्वर हूं, जो पुरुष मुझ को ऐसा जानते हैं तिनको क्याफल होवेहे अर्जुन! वह ज्ञानी सब पापों से मुक्त होगा। और सुन बुद्धि ज्ञान निरमोह क्षमा सत बोलना इन्द्रियों का जीतना सुख दुःख में

एकसा रहना। भय से निरभय होना दया ममता में सन्तुष्ट तपस्या दानयश अपयश यह सभी लक्षण मनुष्यों में पाय जाते हैं। हे अर्जुन! मैं इन से न्यारा हूं और जिस प्रकार सब की उत्पत्ति करता हूं सो भी सुन। कमल नाभ नारायण जो मैं हूं सो मेरे नाभ कमल से मेरा अंश जो ब्रह्मा उपजता है तिस ब्रह्मा की इच्छा से सप्तऋषि चार मुनी उपजे। फिर सप्तऋषि चार मुनी और देवतों से आदि मनुष्य राक्षस असुर सभी प्रजा सृष्टि हुई हे अर्जुन सब संसार अनेक भांति कर पधारा। इसका आदि कर्ता मुझ को जानने से निश्चल योग प्राप्त होता है इस में

संशय कुछ नहीं है, हे अर्जुन सबका उत्पत्ति कर्ता मुझको जान। पर कुम्यार की न्याई करता नहीं, कुम्यार तो बासन घड़े आदि बनाने के लिये माटी पृथिवी से लेता है। पृथिवी से माटी न लेवे तो कुम्यार के बासन नहीं बनते, और मैं कैसा हूं एक सृष्टि उत्पत्ति करी है, किसी दूसरी ठौर से लेकर नहीं उपजाई। आप से आप सृष्टि उपजाई है आप ही सुधारी है। मेरे ज्ञानी भक्त ऐसा मुझे जान कर भाव श्रद्धा साथ मेरा भजन करते हैं। हे अर्जुन मुख्य तो मन का निश्चल चेता मेरे में रखते हैं, मेरी प्रीति में तिनके प्राण भी चले जाते हैं, पर संसार की कोई बात तिनको

चित्त नहीं आती। और आपस में एकांत बैठकर मे
गोष्ठ करते हैं। नित्य मेरी कथा सुनते हैं। जो२मेरी कथा
सुनते हैं तिसी तिसी में जाय कर रमते हैं। मेरे गुणों को
सुन कर संतोष सुख पाते हैं। निरंतर मेरा भजन प्रीत
साथ करते हैं,और मैं तिन को बुद्धि योगदान करता हूं।
सो कौन बुद्धि योग है। जिसको पायकर मुझको आय
मिलते हैं।हे अर्जुन तिन पर एक और भीकृपा करता हूं।
कथा तिनके हृदय में अपनी महिमा का ज्ञानरूप दीपक
जगाय कर प्रकाश कर देता हूं। तिसी प्रकाश के होनेपर
तिन की जीव बुद्धि का नष्ट होजाता है। यह बचन श्रीमुख

से सुन कर अर्जुन पूछता है। हे श्रीकृष्ण भगवानजी। तुम पारब्रह्म हो क्या सब से परे हो, हे प्रभुजी ! तुम परमधाम हो, परमधाम क्या धाम नाम घर का, सो जिसका धाम बैकुंठ सब से पर है और धाम नाम तजका भी है, और जो तुम पवित्र हो, क्यों कि आपके चरणो से गंगा से आदि तीरथ प्रगट हैं। जो सबको पवित्र करते हैं, ऐसे तो परम पवित्र हो, सर्व व्यापी हो। पुरातन हो पहिलेयों से भी पहिले हो। दिव्य हो, किसी ने तुमको किया नहीं तुम ने सब को किया है। हे प्रभुजी। यह महिमा आप की सर्व ऋषि मुनि कहते हैं। प्रभुजी तुम अपने सुख कीर्ति को

सर्वप्रकार आपही जानतेहो । अपना प्रताप सब कह सुना वो । पीछे कुछना राखो । अपने आत्मा की दिव्य विभूति श्रवण करावो । जिस विभूति को विस्तार व्यापक होकर विराज रहे हो । हे महाप्रभुजी तुम्हारे कौन२ भावों विषे चितवना करें । यह सारे ब्रह्मांड जो हैं, तिन में स्थावर जंगम भूत प्राणी विचरते हैं । खेलते हैं,सो यह तुम्हारी रचना को देखकर मैं तुम्हारा भजन करता हूं । प्रभुजी मुख कमल से तुम्हारी माहिमा जो अमृतरूप है सुनकर मुझ कोशांति आतीहै अपनीमाहिमादिखातेहो।हेकेशवजी! जो माहिमा महान्‌भाव तुम्हारी माहिमा करते हैं सो मुझको

कैसे श्रवण करावे है। हे भगवान्! जितनी जिसकी बुद्धि है उतनी ही कही है पर जैसी तुम्हारी महिमा मर्यादा प्रभुता है, तैसे तिनके जानने को देवता ऋषि मुनि न कोई और समर्थ है। हे पुरषोत्तमजी! अपने आपको और मर्यादा तुम आपही जानते हो। सो तुम कैसे हो सर्व भूतों के उत्पत्ति कर्ता हो। सबके ठाकुर हो सब के देव हो, सर्व संसार के प्रभु हो। हे प्रभुजी! तुम अपनी शक्ति से तृप्त नहीं होते कृपाकर अपनी विभूति महिमा का श्रवण करावो। मैं देखूं जो कितनी तुम्हारी प्रभुता है, और कितनी प्रभुता के तुम प्रभु हो। अर्जुन की विनती मानकर

श्रीकृष्ण भगवान्‌जी बोले ॥ हे पांडवो में श्रेष्ठ अर्जुन मैं तुमको दिव्य विभूति कहता हूं, परन्तु सारे विस्तार का अन्त कुछ नहीं। अब दिव्य से भी दिव्य विभूति कहता हूं तिसका दृष्टान्त सुन। जैसे किसी चक्रवर्ती राजा का द्वीप नगर होवे उस बड़े शहर के मनुष्य गिने नहीं जाते। तिस सारे नगर से दस बीस घर परवार समेत चुन लेवें तिन घरों में श्रेष्ट एक मनुष्य चुन लेवें, इसी प्रकार मैं कहता हूं। हे अर्जुन मेरे शरीर के विस्तार का कुछ अन्त नहीं है सारा विस्तार सुन। हे अर्जुन सारे संसार का आत्मा तूं मुझको जान और सर्व भूत प्राणियों के हृदय विषे

मैं ही बसता हूं,अब सब का आदि मध्य अन्त तूं मुझको जान । यह प्रभुता थोड़े में कही अब दिव्य और प्रधान प्रताप सुन । बारह सूर्य्य जो प्रतिमास में प्रकाशते हैं । उन में पौष के महीने का विष्णु नाम सूर्य्य मैं ही हूं । जितनी प्रकाश करने वाली वस्तु हैं, तिन सब में सूर्य्य मैं हूं । और उनचास पवनों में मरीची नाम पवन मैं हूं । और अठाईस नक्षत्र जो हैं तिनमें चन्द्रमा मैं हूं । चारों वेदों में शामवेद मैं हूं । और तेतीस कोड़ देवतों में इन्द्र हुं इन्द्रियों में ग्यारहवां मन मैं हुं और जो कुछ भूत प्राणियों में चेतना है सो मेरी है ग्यारह रुद्रों में शङ्कर रुद्र मैं

हूं। दानियों में कुवेर मैं हूं। आठों वसु जो हैं तिनमें अग्नि मैंहूं। सब पर्वतों में चार लाख कोस ऊंचासोनेका सुमेर पर्वत मैं हूं। प्रोहतों में देवतों का प्रोहत वृहस्पति मैं हूं सब सेना के नायकों वें शिवजी का बेटा स्वाम कार्तिक मैं हूं सरोवरों मे सागर मैं हूं ! सप्त ऋषियों में भृगु मैं हूं। अंगिरा भी मैं हुं। जितने बोलने वाले वचन हैं तिनमें ओंकार मैं हुं। और मेरे प्रसन्न करने तोषन हारे जो समग्र यज्ञ हैं तिनमें स्वास २ मेरा भजन करना। सो जप यज्ञ जो है सो मैं हुं। जितने स्थावर ठौर से ना चलने वाले हैं तिनों में हिमाचल पर्वत मैं हुं। वृक्षों मैं पीपल मैं हुं देवतों मैं

नारद मैं हूं ऋषियों मे चित्ररथमैं हूं। और सिद्धों मे कपिल मुनि मैं हूं। और घोड़ियों मे खीर समुद्र के मथन से जो अमृत के साथ निकला है जिसका नाम ऊचश्रव है सो घोड़ा मैं हूं और हाथियों मैं ऐरावत मे हूं नागो मे अनन्त जो शेषनाग है सो मैं हूं। नदियों मे गंगा मे हूं। सप्त समुद्रों मे खीर समुद्र मे हूं। सब जलों मे जो जलका राजा वरुण है सो मैं हूं। और मनुष्यों विषे राजा मे हूं। और शस्त्रों मे बज्र मे हूं। और गौओं मे कामधेन मे हूं और जितने पदार्थ प्रजाके उपजावन हारे हैं तिनों मे काम मैं हूं। और सर्पों विषे वासकनाग मैं हूं। और दण्ड दायकों मे यम मैं हूं

और मृगों विषे सिंह मैं हूं। पितरों मैं अर्य्यमा मैं हूं। दैत्योंमें प्रहलाद मैं हूं। निगलने हारियों में काल में हूं। सब पंखेरुओं में गरुडमैं हूं उछलन हारियोंमें पवन मैं हूं शस्त्र धारियों में परशराम मैं हूं नदियों में मूलजो गङ्गा गौमुखीहै सो मैं हूं हे अर्जुन! सब संसार को मूल आदि अन्त मध्य मुझको ही जान। और सब विद्यों में अध्यात्म विद्या मैं हूं अध्यात्म विद्या कौन है सो सुन सब आत्माओं का अधिकारी इससे मेरा नामअध्यात्म विद्या है। सबका अधिकारी ठाकुर मैं हूं। यह अध्यात्म विद्या तूं मुझको जान जितने गोष्ठ करने हारे, झगड़ा करने हारे जहां मेरी गोष्ठ चर्चा

होवे तहां तूं मुझको जान व्याकर में जो समास है तिन में धुंद समान मैं । अच्चर अविनाशी मैं हू । काल का भी काल हूं और संसार की अनेक प्रकार की रचना रचने हारा हूं। जो सब चुराने वाले हैं तिन में मृत्युमैं हूं जो सबके देखते ही जीवको चुराय लेजातीहै और स्त्रियों में जो रीति और श्रवक्षा और लक्ष्मी और सामिता मेधा और घृति और क्षमा और शांति यह सब स्त्रियां मैं हूं और व्याकरण में विरहत साम मैं । छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूं बारा महीनों में मघ्घर महीना मैं हूं। छः ऋतुमें वसंत ऋतु मैं हूं। कपट में जुवा मैं। सर्व तेजों में

जो तेज है सो मैं हूं। जहां दोदल इक्ट्ठे होते हैं युद्ध करने को जहां जीत होवे तहां मैं हूं जो उद्यमों मैं उद्यम है सो मैं हूं। जो बलवंतों मैं बल है सो मैं हूं और चन्द्रवंसी जो यादव तिन मैं वासुदेव मैं हूं। पांडवों मैं जो हे अर्जुन! तूं हैं सो मैं हू। मुनियों मैं व्यासदेव मैं हूं। कवि जो हैं चतुर तिन मैं शुक्रदेव मैं हूं जितने निबावनहारे हैं तिन मैं दण्ड मैं हू। जो जीतने की इच्छा वाले हैं तिनमैं धर्म युद्ध मैं हूं। अधर्म हारे की कभी जीत नहीं होती जो पावने की वस्तु है तिनमैं चुप मैं हूं, और जो सर्व ज्ञान रूप है सो मैं हू। सब अन्नों विषे जौ मैं हू। त्रिण की जो सब

जाती है तिनमें दंभ मैं हूं हे अर्जुन जो सब भूत प्राणी हैं तिन सबका बीज मैं हूं सब कुछ तूं मुझको जान। मुझ बिना कुछ नहीं मैं सर्वव्यापी हूं हे अर्जुन मैं तुझको प्रधान और दिव्य विभूति कहता हूं तिसका अन्त कोई नहीं यह विभूति तुझको किस भांति कही जैसे सब धागे जोड़ पहिरने वालों में से एक तत्व काट दिखाइये तिसी भांत यह विभूति कही। अब अर्जुन और सुन जो कोई विभूति वन्त हैं शोभावन्त प्रतापवान जीव हैं तिनको मेरे तेज से उपजा जान। हे अर्जुन यह थोड़ासा ज्ञान है। और जानना क्या वस्तु है यह तो एक ब्रह्मांडकी विभूति कही

सो सब की समग्री कही नहीं गई। ऐसे ही असंख्य ब्रंह्माड हैं नानाप्रकार की विभूतियों से भरे हुए मेरे से निकस कर निकसे जान। सो मेरे से किस प्रकार निकसे जैसे जलकर संम्पूर्ण समुन्द्र से एक बून्द निकले वह बून्द रेतके दाने पर पड़े सो तिसी दाने को भिगोवे है। पीछे समुन्द्र पूर्ण भरया है। इसी भांति अनेक ब्रह्माण्ड मेरे से निकले हैं, मैं पीछे पूर्ण हूं। यह जो विभूति कही अब अर्जुनमैं तेरे रथ पर विराजता हूं इस मेरे स्वरूप की महिमा बड़ाई सुन। मेरा आदि अन्तमध्य नहीं। पूर्णब्रह्म परमंधाम पुरुषरूप तेरे रथ पर विराजता हूं। इति श्रीभगवतगीता सूपानि

षट् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे वि-
भूति योगो नाम दशमों अध्याय ॥ १० ॥

* अथ दशवें अध्याय का महात्म *

श्रीनारायणोवाच हे लक्ष्मी ! दशवें अध्याय का महात्म कहता हूं तूं श्रवण कर । जिसके सुनने से महा पापियों की गति होए । नबारस शहर में एक धीरजीनाम ब्राह्मण रहता था । धर्म्मात्मा हरिभक्त एक दिन विशेश्वर महादेवजी के दर्शन को जाता था । गर्मी की ऋतु थी उसको धूप लगी घबराया उसका दिल घटने लगा अं-घाली खायकर मंदरके निकट गिरपड़ा । इतने में भृंगी

नाम गन आया। देखे तो ब्राह्मण अचैत मूर्छितपड़ा है।
उसने जाकर शिवजी से कहा, हे महादेवजी एक ब्राह्मण
आपकेदर्शन को आया था,वह मूर्छा में पड़ा है। महादेवजी
सुनके चुप कर रहे। उस गन ने ब्राह्मण को देखा वह मरा
पड़ा है। फिर जाकर कहा, हे स्वामी यह चरित्र मैंने देखा
है इसने कौन पुण्य किया जिससे भली जगह मृत्यु पाई है
चारों बातें इसकी भली आय बनी हैं। एक बनारस क्षेत्र
श्रीकाशीजी, गंगाजी का स्नान संतों का और विश्वेश्वर
जी का दर्शन' अन्न का छोड़ना एकादशी का दिन यह
बात कह सुनावो। इसने कौन पुण्य किया था तब महादेव

जी ने कहा, हे भृंगी इसके पिछले जन्म की खबर मैं कहता हूं। सो सुन एक समय कैलाश पर्वत पर (गौरां) पार्वती और हम बैठे थे। गन भी हमारे पास थे फुलवाड़ी की शोभा देख रहे थे। एक हंस मेरे दर्शन को आया, वह हंस ब्रह्मा का वाहन था। ब्रह्मलोक से मानसरोवर को जाता था, उस सरोवर में सुन्दर कमल फूले थे। एक कमल को लंघने लगा, उसका परछावां पड़ा वह हंस अचेत काला होगया अकाश से गिरा तब उसी वक्त उसी मार्ग में एक गन और आया। हंसको गिरा देख कर गन ने कहा, हे स्वामीजी! यह हंस आपके दर्शन को आया था सो श्याम

वर्ण होकर गिरपड़ा है महादेवजी की आज्ञा से हंसको ले आए महादेवजी ने पूछा, हे हंस ! तूं श्यामवर्णक्यों हुआ । हंस ने कहा, हे प्रभुजी ! मैं आपके दर्शन को आया था, मानसरोवर में कमल फले थे । मैं उनको लंघकर आया इससे मेरी देह श्याम होगई । अकाश से गिर पड़ा । कारण जानता नहीं कौन हुआ है । यह सुनकर शिवजी हंसे अकाश वाणी हुई, कि हे शम्भूजी! आप क्यों सोच करते हैं इस हंसका प्रसंग मैं कह सुनाता हूं । तब महादेव ने कहा, अकाश वाणी तुम मेरे पास आओ मैं तुझको देखता हूं। तूं कौन हैं तब चतुर्भुज स्वरूप धारे श्याम सुन्दर

एक पारषद आया । कहा, हे स्वामिजी ! तुम इस कमलनी से पूछो। सो यह कमलनी कहेगी कमलनी कहे है हे शिवजी! महाराज मैं अपने पिछले जन्म की कथा कहती हु।सुनो जी पिछले जन्ममैं अप्सरा थी।नाम पदमावती था एक समय श्रीगंगाजी के किनारे ब्राह्मण स्नान करके गीताके दसवें ध्यायका पाठ किया करता था । एक दिन राजा इन्द्र का आसन चला । इन्द्र ने देखा यह ब्राह्मण गीता पाठी है तब राजा ने मुझे आज्ञा करी तूं जाके इस ब्राह्मण की तपस्या भंग कर । आज्ञा पायकर उस ब्राह्मणके पास गई।जाकर देखा वह ब्राह्मण एकान्त बैठा हे । अचानक ही मेरी उस

ब्राह्मणा से भेंट हुई। मेरे अंग से अंग लगा,उस ब्राह्मण ने मुझे श्राप दिया। कहा,हे पापनी!तू कमलनी हो। उसी समय मैं कमलनी हुई। तब ब्राह्मण ने कहा,जैसे सर्प के अंग हैं वैसे तेरे भी पांच अंग हैं दो कमल चरणोंके दो कमल हाथोंके,एककमल मुखकी जगह। इस मानसरोवर में साठ हज़ार भौंरा रहता है सो मेरी वास्ना कर तृप्त हुए रहते हैं। यह बात कही नहीं जाती यह मेरा प्रकाश होरहा है।जो पीछे मेरे ऊपरसे लांघताहै भस्म होजाता है। कमलनी ने कहा,हे हंस!तू कौन है?यहां क्यों आया है?हंस ने कहा,हम चार हंस हैं। ब्रह्मा के बाहन तिन में

एक मैं हुं,मानसरोवरके मोती चुगने कीआज्ञा हुई थी।
वहां को जाता था,रास्ते मैं मैंनें कहा शिवजी का दर्शन
करता चलूं। तेरे पर से लंघिया तो सुफेद से काला
होगया आकाश से गिर पड़ा। कमलनी ने कहा, मैं पहिले
एक ब्राह्मण के घर कन्या थी मैंने एक करवई का बच्चा
पाला था वह बहुत अच्छी बोली बोलता था, मैं तिस
को पढ़ाया करती थी, एकदिन मेरा भर्ता आया मैं उठकर
उसका आदर ना किया।उसने कहा,तूं उठकर रसोई कर
मैं उसके लालच से ना उठी बहुत चिर लगा तो, भर्ता
ने श्राप दिया, तूं कमलनी हो उसकी सुध मुझको अब

तक है। पर वह गीता के दसवें अध्याय का पाठ करता था,मैंने भी कंठ किया था। अब मैं तिसका पाठ करती हूं, उसी कर मेरा तेज है। यह पाठ का फल है। हंस ने कहा,मेरा श्याम वर्ण से श्वेत वर्ण होवे, तूं इस कमलनी की देह से छूटे देव-देही पावे। तब कमलनी ने कहा, कोई गीता जी के दसवें अध्याय का पाठ सुनावे, तब उद्धार होएगा। तब एक ब्राह्मण ने उस सरोवर में स्नान कर, शालिग्राम का पूजन कर, दसवें अध्याय गीता का पाठ किया। उस हंस और कमलनी ने सुना तब उसका उद्धार तत्काल भया हंस श्वेत हुआ कमलनी देव कन्या हुई, दोनो

ने हाथ जोड़ कर निम्न होकर नमस्कार करी। और कहा, तुम धन्य हो जो हम को कृतार्थ किया। तब ब्राह्मण ने पूछा यह क्या हुआ। हंस से कमलनी ने पिछली वार्ता कह सुनाई। और कहा, आपके पाठ सुनने से हमारी कल्याण हुई है, हमको आशीर्वाद दो कृतार्थरूप होकर दोनों देवलोक को प्राप्त हुए श्रीनारायनजी कहते हैं। हे लक्ष्मी! यह दसवें अध्यायका महात्म है जो तूने सुना है। इति श्री पद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे गीता महात्म नाम दसमों अध्याय ॥ १० ॥ * अथ ग्यारवां अध्याय *

अर्जुनोवाच–अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न

करता है । हे प्रभुजी! तुमने अपनी गुह्य प्रताप श्रवण कराया है सो आप की कृपा से सुनने से मेरा मोह दूर हो गया है । संसार उपजाना और प्रलय होना मैंने विस्तार पुर्वक सुना है। सो हे कमललोचनजी आपके अविनाशी आत्मा की महिमा मैंने श्रवण करी है । हे पुरुषोत्तमजी। आपके अविनाशी आत्मा के साथ मेरी प्रीति है। सो आप मेरी बिनती मानो। हे प्रभुजी। अपने अविनाशीआत्माका दर्शन करावोजी।अर्जुन की बिनती मानकर श्रीकृष्ण भगवानजी बोले। श्रीभगवानोवाच—हे अर्जुन। तूं मेरा रूप भी देख और ही और वर्णों के रूप देख। नाना प्रकार

कियां प्रकृतियां देख । कई सूर्य, कई वसु, कई अश्वनी,
कुमार कई पवनदेव जो तैने आगे नहीं देखे हे भारतवं-
सियों में श्रेष्ठ अर्जुन! बहुत भांत के आश्चर्य देख। हेगूड़ा-
केश! अर्जुन सब संसार एकट्ठा देख, मेरी देह विषे स्थावर,
जंगम और जो कुछ देखने की इच्छा है सो भी देख, पर
हे अर्जुन! इन नेत्रों कर देख ना सकैगा, इस से तुझको
दिव्य नेत्र देता हूं। जिससे मेरा दिव्य ईश्वर योग देख।
संजय उवाच—संजय धृतराष्ट्र को कहता है। हे राजन्!
महां योगीश्वर के ईश्वर श्रीकृष्ण भगवानजी, जिन्होंने
यह बचन कहकर तत्कालही अर्जुन को परमरूप ईश्वर

दिखाते हैं। जिस स्वरूप में अनेक ही मुख हैं और अ-
नेक ही दिव्य नेत्र हैं। अनेक दिव्य अद्भुत दर्शन हैं,
अनेक ही भूषण पहिरे हैं। अनेक प्रकार के वस्त्र, अनेक
गल विषे माला, दिव्य सुगंधता के साथ लेपन कियेहुए रूप
सभी आश्चर्य और अनंत सर्व ठौर में मुख जो अकाश
विषे एकही वार सहस्र सूर्य्य प्रकाश कर दिखाते हैं सो
तिनके प्रकाश से अधिक भगवान के विश्वरूप का
प्रकाश हुआ। तहां सारा जगत इकट्ठा ही अनेक प्रकार
का देवों के देव जो श्रीविष्णु भगवानजी हैं। पांडव अ-
र्जुनके यह देखकर रोमखड़े होगये आश्चर्य हुआ नमस्कार

क्रिया दोनों हाथ जोड़कर कहता है । अर्जुनोवाच–हे देवन के देव श्रीकृष्ण भगवानजी । मैं तुम्हारी देह विषे अनंत रूप ही देखता हुं । और जो तुम्हारी देहके अंग हैं अनंतही देखता हुं । और जो तुम्हारा अंत नहीं देखता हेविश्वेश्वर ईश्वर ऐसा तुम्हाराविश्वरूपहैअनंतजो तुम्हारे शिर हैं, तिनके मैं अति सुन्दर मुकट देखता हुं, हाथजो हैंतिनमें गधाशंख चक्रदेखता हुं। और मैं तुम्हारे तेजके प्रकाश को देखता हुं,इस तुम्हारे विश्वरूप को देख नहीं सक्ता, कैसा है रूप जैसे प्रबल अग्नि जलती है जैसे अ-संख्य ही सूर्य्य चढ़े हैं तैसे अमृत वमर्यादा आपका तेज

है और जो तुम अक्षर अविनाशी हो,सबसे परे हो तुम जानने योग हो अनेक अनेक प्रकार की रचना तिससे पूर्ण पहिले से पहिले हो धर्म की रक्षा करते हो,सनातन पुरुष पुरातन हो। मेरे मत विषे तो तुम ऐसे ईश्वर हो अनादि हो तुम्हारे बलका कुछ अंत नहीं इससे तुम्हारा नाम पराक्रम है। अनंतही तुम्हारी भुजाहैं,अनंतही नेत्र, अनंत ही मुख हैं,जिन मुखों में अग्नि बलती देखता हुं, जिस अपने तेज के प्रकाश कर सारी विश्वको प्रकाश करतेहो और तुम्हारे अद्भुत भयानक रूपकोदेखकर तीनों लोक डरते हैं कई कोट देवते तुम्हारे में प्रवेश करते देखता

हुं।कई कोट देवता,तुम्हारे सामने हाथ जोड़े कांपते देखता हुं,तुम्हारी स्तुति करते हैं। कईकोट ऋषिश्वर और सिध तुम्हारे से डरतेहुए अशीर्वाद करतेहैं सो हे ईश्वर तुम्हारी जयहो!तुम चिरंजीव होवो, कई ऋषिश्वर सिध तुम्हारी स्तुति करते हैं,कई पुष्प चढ़ावते हैं, कई पुष्पों की वर्षा करते हैं।और तुम्हारे इस रूपको देखकर जो कई लोग डरते हैं, तिनको कई मुनिश्वर कहते हैं,हे लोगों! तुम मत डरो,ईश्वर परम दियालु है और कई रुद्र देखता हुं, और कई साध देखता हूं, कई ब्रह्मा, कई प्रजापति, कई पवण कई कोट दैत्य, कई प्रकार की विश्व देखता हूं, और कई

इस तुम्हारे रूपको देखकर विस्मय हुए देखताहूं,कई नेत्र और बड़िया भुजा बहुतही तुम्हारे उरूस्थलदेखता हूं, बहुतही तुम्हारे चरण बहुत ही उधर और मुख तिन मैं भयानकदाड़ां देखताहूं। इसरूपको देखके बहुत डरगये हैं।मैं भी डरता हूं.फिरकैसे हो?आकाश को छुह रहे हो, ठौर२कई सूर्य्य प्रकाश रहे हैं। अनेक ही तुम्हारे रंग हैं, अनेक ही नेत्र हैं। जिस में से महाप्रलय की अग्नि के पर्वत बलते हैं। प्रभुजी ? यह भयानक रूप देखकर मेरा आत्मा डर गया धीरज भी नहीं धर सकता है। हे भगवन। अब वस करो जी वस। अब प्रसन्न होवो

जी प्रभुजी महाप्रलय की अग्नि तुम्हारे मुखमें दाड़ा देखता हूं,अब मुझे दिशा भी भूल गई है। मैं जानता नहीं पूर्व, पश्चिम कहां हैं, शांति भी नहीं पाता हूं,हे जगनिवास, हे जगतके आसरा अब वस्सजी वस्स तुम्हारा विश्वरूप देखा अब प्रसन्न होवोजी। यह धृतराष्ट्र के पुत्र की सैना के जो योद्धा हैं राजे,इनमें मुख्य हैं भीष्म, द्रोणाचार्य और करण इनसे आदि जो सभी अग्नि के पर्वतों जैसे तुम्हारे मुख में पड़ते देखता हूं। महाभयानक जो तुम्हारे मुख में दाड़ा हैं सो कितने योद्धा के शिर उन दाढ़ों में लट-कते देखता हूं। फिर कैसे हैं ज्यों नदी के प्रवाह बहुत

वेगके साथ समुद्र में आए पड़ता है। उसी भांत यह योद्धे तुम्हारे मुख में पड़ते देखता हूं। जैसे प्रबल अग्नि जलती है तिसमें बड़े उतावले उतावले पतंग आए पड़ते हैं तैसे ही बड़े वेग के साथ योद्धा पढ़ते हैं। तिनको स्वासों से निगलते जाते हो। महा अग्नि साथ भरे हुए तुम्हारे मुख में जो हैं तिन मुखों कर संसार को उपजाते हो और तुम्हारे तेजकर सारी विश्व भर रही है। हे कृष्णजी। मैं तेरा मुख देखता हूं, तुम एकही भयानक रूप धारकर सारी विश्वको भर रहे हो। हे देवोंकेदेव। तुझको मेरा नमस्कार है। बस्स जी बस्स। अब प्रसन्न होवो

जी जो तुम्हारा आदि अंत मैं पाया चाहता था,सो नहीं पासक्ता।तुम्हारा आदि अंत होवे तो पायें,आप बे अन्त हो। अर्जुन के बचन सुनकर श्रीभगवान बोले—श्री भगवानोवाच–हे अर्जुन ! इस समय इन लोकोंका काल रूप मै ही हूं। यह मैंने बड़ा रूप धारा है। इन लोकों के नाश के निमित्त यह जो दुर्योधन की सैना के योद्धा हैं,जो मुख देखते हो सो तुझ एक के बिना यह सभी नहीं होवेंगे इनको ग्रास कर लूंगा,इस कारन से हे अर्जुन उठ खड़ा हो। यशले, इन सब शत्रुओं को जीत कर बड़े धर्म के साथ पृथिवी का राज कर।जो दाएं बाएं हाथ से एक जैसा

शत्रुओं को मार। यह सभी योद्धा मैंने मार रखे हैं। तूं तो निमित्त मात्र कथनी मात्र हैं। जो लोक कहैं यह सभी योद्धा अर्जुन ने मारे हैं। यह योद्धा कैसे हैं? सो पहिले द्रोणाचार्य कैसे हैं? जिनसे तूंने शस्त्र विद्या सीखी है, जो बाण की चोट से चूकता नहीं, देखो बाणों से भी मारे हैं, श्राप कर भी मारे हैं। ऐसा द्रोण है और भीष्म कैसा है। जिसको पिता शांतनु का वर है हे पुत्र। जब तेरी इच्छा होवेगी तभी मरेगा। जयद्रथ कैसा है? जिसका पिता तप करता है कुरुक्षेत्र के मंडल में, जहां परशराम के कुंड हैं, सो कैसे कुंड हैं? जब इक्कीस वार परशरामजी ने पृथिवी

निचत्रायण करी है। तिन क्षत्रियों के रुधिर साथ कुंड भरे हैं। तिन कुंडों पर जयदरथ का पिता तप करता है। यह वांछा करता है कि जो कोई मेरे पुत्र का सिर काटे उसका भी शिर भूमि पर गिर पड़े। और करण जो है सूर्य का अवतार इनसे आदि और जो योद्धा हैं, यह तेरे से मरने नहीं यह मैंने पहिले ही मार रखे हैं। मेरे मारे हुए को तूं मार, और डर मत। संजय उवाच–संजय राजा धृतराष्ट्र को कहे है। हे राजाजी! कीटी जो अर्जुन मुकट साथ जन्मया है तिससे अर्जुन का नाम कीटी है। सो भगवान के वचन सुन कर दोनों हाथ जोड़ भयभीत होकर श्रीकृष्ण भगवान

के चरणों पर गिरपड़ा और प्रसन्न होकर बोला। अर्जुनो-वाच–हे भगवानजी ! जो कुछ तुम्हारी देह विषे चरित्र देखा है सो कहता हूं। तुम्हारे शरीर के जो अंग हैं तिन्हों में बहुत जगह पर साध सन्तों महन्तों की मंडलियां देखी हैं सो आपस में तुम्हारी महिमा कहते सुनते हैं। तेरे प्रसाद कर, तेरे नाम के प्रताप कर, तेरा जो परमपद मुक्तिपद, उस पद को साधू संत महंत प्राप्त होते देखता हूं। बैकुंठ भी तुम्हारी देह विषे देखता हूं, और संसार भी तुम्हारी देह विषे देखता हूं। तुम्हारी महिमा करने हार भी देखता हूं, और जो कहीं कहीं

राक्षसों की सैना इस तुम्हारे रूपको देखकर डरते हैं । सो राक्षस डर कर दशों दिशा को भागते हैं। कई क्रोड साधू तुमको नमस्कार करते हैं । हे बड़ियों से बड़े! तुमको क्यों न नमस्कार करिये तुमको अवश्य नमस्कार करनी चाहिये है । तुम कैसे हो ? इस संसार के करनेहारा जो ब्रह्मा है तिसके भी कर्त्ता हो। और अनंत हो सर्व देवतों के पहिले हो, प्रभु हो, इसी से सब देवता तुम्हारे किये हुए हैं, सारा संसार जो है जगत सो सब तुम्हारे विषे बसे है, इस कारण से तुम जग निवास हो अविनाशी हो। देह से परे हो तुम देवतों के आदि हो अनेक प्रकार के विश्व

साथ पूर्ण हो इसी से विश्व निधान हो। वेदों विषे जानने योग्य हो, तुम्हारा धाम जो ग्रह और तेज सब से परे है इस कारण से परमधाम हो अनंत प्रकार के संसार के कर्त्ता हो। हे प्रभुजी! विभूतिरूप भी तुमहो, चन्द्रमा भी तुमहो, प्रजा के पति भी तुमहो, पिता माता तुम और दादा परदादा भी तुमहो, हे प्रभुजी! यह तुम्हारे एक २ रूपको मेरी सहस्त्रवार नमस्कार है। फिर भी नमस्कार नमस्कार है। हे महाप्रभुजी तुमको नमस्कार! तुम्हारे मुखको नमस्कार! तुम्हारी पीठ को नमस्कार! तुमहारे तले ऊपर को नमस्कार! तुम्हारे सर्व ओरको नमस्कार! तुम्हारे बल वीर्य

का भी और पराक्रम का भी अन्त नहीं। सब के भीतर हो, बाहर भी तुमहो। हे प्रभुजी। जो मैंने आपको सखा जानकर कहने और न कहने योग वचन कहे हैं, सो कथा बचन। हे कृष्ण। मेरारथलेआओ। हे यादव। मेरा अमुका कार्य कर। हे सखे! मेरी अमुकी टहलकर इत्यादि जो मैंने आप की अवज्ञा करी है। हे प्रभुजी। आप को पहिचाना न था। जो तुम ऐसे हो। मैं तुम्हारी महिमा के जानने को सावधान न था, जो अचेत था। हे प्रभुजी! जो कुछ मैंने आपकी अवज्ञा की हंसते हंसते और आप के साथ मार्ग चला हूं, और आप के साथ बराबर शय्या

पर शयन किया। आपके समान एक आसन पर बैठाहूं, हे अच्युत अविनाशी पुरुष जी मेरी अवज्ञा क्षमा करो। प्रभुजी। तुम्हारी महिमा अप्रमेव है, अप्रमान है, लेखे से परे है, इस कारण से अप्रमेव है। हे प्रभुजी ! स्थावर जो अपनी ठौर से न चले वृक्ष पर्वत आदि तृण घास जैसे। और जंगम जो चर्णों से चलते हैं, इन सबके पिता हो, अवश्य कर तुम सबके पूज्य हो, और सबके गुरु हो। तुम्हारे समान कोई नहीं, तुम सब से अधिक हो त्रिलोकी में तुम्हारे समान कोई नहीं इसी से तुम ईश्वर हो, हे ईश्वर! तुम सर्व प्रकार स्तुति करने योग्य हो। मुझ पर कृपा

करो जैसे पुत्रका अपराध पिता क्षमा करता है।जैसें पति-
ब्रता स्त्रीका अपराध पति क्षमा करता है। इसीप्रकार मेरी
सब अविद्या मत्ता करो। हे प्रभुजी!ऐसा रूप तुम्हारा मैं।
आगे कभी नहीं देखा सो इस स्वरूप को देखकर मुझे
डरआता है। हे जगनिवास! हे देव! अब बसजी बस।
प्रसन्न होकर वही दिव्य स्वरूप दिखाओ मुझे वही स्वरूप
देखने की इच्छा है। सो कैसा स्वरूप परम सुन्दर चिकने
घुंघरवाले केश शोभा पायरहेहैं। और तुम्हारे ऊपर पीतां-
बर पहरे हो, कण्ठ विषे बनमाला बिराजे है, एक हाथ
में कमोदकी गदा, एक हाथ में शंख चक्र सुदर्शन एक

हाथ में मेरे रथ के घोड़ों की बाग। एक हाथ में चाबक। हे विश्वरूप। हे सहस्रबाहू। अब मुझे वही चतुर्भुजरूप दिखाओ। अर्जुन की विनती मानकर श्रीभगवानजी बोले श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन। यह विश्वरूप तुझको मैंने प्रसन्न होकर दिखाया है। यह कैसा रूप है, अपने आत्मा का दर्शन तुझे दिखाया है फिर कैसा है सब से परे है, अनन्त है, जिसका अन्त नहीं। सो ऐसा परम ईश्वररूप तुझको दिखाया है, जो कोई चारों वेद पढ़े तो भी यह रूप देखने से दूर है। कई यज्ञ कर, अनेक पाठ करने से भी यह रूप नहीं देख सक्ता, और तीर्थ के दर्शन

करने से अनेक तपस्या करने से भी यह दर्शन दूर है। हे कुरुवंसियों में श्रेष्ठ अर्जुन। त्रिलोकी विषे कोई नहीं जो यह दर्शन देख सके। तुझे ही यह दर्शन दिखाया है और किसी ने नहीं देखा। इसी से हे अर्जुन। भय को त्याग। डर कर जो मूढ़सा सोरहा हैं सो डर को त्याग निडरहो। मेरा प्रीतिवान हो, मन कर मेरे साथ प्रीतिवान हो, फिर वही मेरा रुप देख। संजय उवाच–संजय धृतराष्ट्र को कहे है। हे राजाजी।श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन को यह वचन कह के फिर वह अर्जुन को शखारुप दिखावते हैं। जो सत्त स्वरूप था, सो अर्जुन को

दिखाया, डर तिसका दूर किया। फिर अर्जुन बोला। अर्जुनोवाच–हे जनार्दनजी। यह आपका स्वरूप देखिया है। सो अतिदुर्गम है। श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन। यह मेरा रुप देवतों को भी दुर्लभ है। इस मेरे रूप के देखने की देवते भी वांछा करते हैं जो रूप तुझे दिखाया है सो, वेद पाठियों को भी दुर्गम है। हे अर्जुन। वेदके पढ़ने से भी मैं नहीं पाता और न तपस्या से पाता हूं, ना यज्ञ किये से पाता हूं, हे अर्जुन। अनेकप्रकार के जो धर्म हैं तिन्हों कर भी मुझे पावना कठिक है। जैसे तुमने पाया है तैसे किसी ने नहीं पाया। सो तूंने क्यों पाया है तूं

मेरा अनंत भक्त है । मुझ बिना तूं किसीका भजन नहीं करता, इसी से मुझको देखिया है। इन नेत्रोंकर भी और ज्ञान नेत्रों कर भी देखिया है । प्रेम कर तुमने मुझे पाया है मैं तेरे अधीन हूं, और तूं मेरे विषे प्राप्त हुआ है,तूं मुझ विषे मैं तेरे विषे । हे पांडव नंदन अब जो तुझको करनी आई है सो सुन परम प्रीति साथ मेरी पूजाकर स्वास २ मेरा नाम स्मरण कर। इस प्रकार मेरा भक्तहो संसार के लोगों साथ प्रीति न कर सब भूत प्राणियों से निर्वैर हो जब ऐसा होवेगा तब मेरे विषे प्राप्त होवेगा यह निश्चय जान ॥ इतिश्री भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योग

शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे विश्वरूपदर्शन नाम एकादसो अध्याय॥११॥ ॥अथ ग्यारवें अध्याय का महात्म॥

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी अब ग्यारवें अध्याय का महात्मसुन एकतुंगभद्रनाम नगर था, जिसके राजेकानाम सुखानन्द था, वहां श्रीलक्ष्मीनारायण की सेवा बहुत करते थे, वहां एक ब्राह्मण बड़ा धनपात्र विद्यावान पंडित रहताथा उस ब्राह्मणका नेम था नित्यगीताजीके ग्यारवें अध्याय का पाठ करता था और राजा भी वहां नित्यलक्ष्मीनारायणकी सेवा करता था। और पाठ भी नित्य श्रवण करता था ऐसे ही बहुत काल गुजरा सेवा करते। एक दिन राजा घर

को गया, उस दिन अतीत बहुत देशान्तर फिरते २ उस नगर में आए अतीतों ने राजा से कोई जगह मांगी। हे राजन्! हम कोई दिन रहेंगे, हमें जगह दीजे। राजाने बड़ी हवेली खुलवाए दी। वहां अतीत उतरें, राजा ने सीधा दिया रसोई कर अतीत बड़े प्रसन्न हुए। अमृत वेल राजा उनके दर्शनको गया। राजेका बेटा भी साथ था, कई नौकर साथ थे, राजा उस हवेली में आया। जो महंत था उस के साथ राजा बात चीत करने लगा, और राजा का पुत्र खेलने लगा, वहां एक प्रेत रहता था। उस प्रेत ने राजाके पुत्र को मारा चाकरों ने राजा को खबर करी। हे राजाजी!

कुंवरको प्रेतने मारा है। तुम यहां बैठे हो सो राजा यद्यपि सेवा करता, कथा श्रवण करता था। परन्तु पुत्रके मोह कर राजा के मनमें दुर्बुद्धि आगई। राजा बोला-हे सन्तजी! आपका दर्शन हमको बहुत फलेया है। एक पुत्र था सो भी प्रेत ने मार लिया। तब ब्राह्मण ने कहा, हे राजाजी! चलो देखिये कहां है तेरा पुत्र। राजा, ब्राह्मण, महंत सभी वहा आए जहां राजकुमार मरा पड़ा था। तब ब्राह्मण ने कहा, अरे प्रेत। तूं इस लड़के पर कृपा दृष्टि कर जो यह लड़का जी उठे और मैं तुझे गीता के ग्यारवें अध्याय का पाठ सुनावता हूं। तूं श्रवण कर इस कर तेरी कल्याण

होवेगी, जितने जीव तैंने पीछे मारे हैं, तिनका भी उद्धार होवेगा। अब तूं अपने जन्म की बात कहो, क्योंकर प्रेत हुआ हैं तिसके पीछे तेरा उद्धार करूंगा, तब प्रेत बोला मैं पहिले जन्म ब्राह्मण था, इस गांव के बाहर मैं हल जोतता था। वहां एक दुर्बल ब्राह्मण आया था, सो इस खेत में गिर पड़ा उसके अङ्गोंसे रुधिर निकला, एक इल्ल ने उसका मांष नोच खाया, मैं बैठे देखता था मेरे मन में दया ना आई जो इस ब्राह्मण को छुड़ा दूं। इतने में एक और ब्राह्मण आया उसने देखा एक दुर्बल रोगी ब्राह्मण गिरा पड़ा है चीलें नोच नोच मांष खाती हैं, उसने देख

कर मुझे कहा, अरे हल जोतने वाले ब्राह्मण तूं यज्ञोपवीत पेहिरे बैटा हैं, कर्म्म तो तेरे चंडालके हैं। हे निर्दय। तेरे खेत पास ब्राह्मण का मास चीलें तोड़ तोड़ खाती हैं, और आखों से अंधा हैं तूं छुड़वता नहीं। इस कारण तूं बड़ा पापी है, यह तीनों अपकर्म्मी नरकोंको जाते हैं। एक तो किसी को चोर लूटता मारता होवे। और शक्ती होकर भाग जावे। दूसरा रोगी होवे, तिसकी खबर लेवे नहीं। तीसरे किसी को भूत लगा हो, यह छुड़ा जानता होवे छुड़ावे नहीं यह तीनों पापी नरक को जाते हैं और जो सर्व जीवों पर सहायता और दया करते हैं तिनको अश्वमेध यज्ञ का

फल प्राप्त होता है, जाह मेरे श्राप से तूं प्रेत जून पावेगा। तब मैं उसके चर्ण पकड़ कर कहा, मेरा उद्धार कैसे होवे। तब ब्राह्मण ने कहा, जब तुझको कोई गीता के ग्यारवें अध्याय का पाठ सुनावेगा, तब तेरा उद्धार होवेगा। प्रेत ने अपनी कथा सुनाई। तब ब्राह्मण ने राजा से पुछा राजा ने कहा, इसका उद्धार करिये और मेरे बेटे को जीवत करें। तब ब्राह्मण ने गीता के ग्यारवें अध्याय का पाठ किया, और प्रेत पर जल छिड़का तत्काल प्रेत की देह से छूट कर देव देही पाई। उसने पिछले जो कोई जीव खाये हुए थे तिनका भी उद्धार हुआ। राजा का बेटा सावधान हुआ

शाम सुन्दर चतुर्भुजरूप होयके खड़े होगये । स्वर्ग से बिवान आए,तब वह प्रेत बोला–हे राजा! अपने पुत्र को मिल, जब मिलने लगा। तब वह बोला,हे राजा! जिसकी कुलमें एक वैष्णव होवे उसकी कई कुलों का उद्धार होता है। तूं आप बड़ा वैष्णव है तब राजा ने मोह कर कहा हे पुत्र! तूं मुझको मिल पुत्र बोला, पिता तूं किसको कहता है मैं कई वार तेरा पुत्र भया कई वार तेरा पिता भया, यह प्रेत धन्य है जिसने मुझे मारा और श्री गीता जी के ग्यारवें अध्याय का पाठ श्रवन कर मैं कृतार्थ हुआ हूं। फिर राजा ने कहा,हे पुत्र ! तूं मेरे घर में एक पुत्र था,मेरी

अब कौन गती करे। और कोई संतान नहीं। तब पुत्र ने कहा,हे राजा! जिस कुल में एक वैष्णव होवे उसका उद्धार होता है। हे पिता! तूं चिन्ता ना कर अब मैं नारायणजी परायण हुआ हूं। जब मैं श्रीनारायणजी,परायण हुआ हूं, तब मैं श्रीनारायणजी का दर्शन करूंगा। तब तेरी कुल का उद्धार होवेगा। इक्की कुलें तेरी उद्धारेंगी तो राजा ने कहा सिधारो, बिवानों पर बैठकर बैकुंठ में गये। तब उस ब्राह्मण से राजा ने ग्यारवें अध्याय का पाठ श्रवण किया। मन में कहा,अब पुत्र पुत्री कोई नहीं। विरक्त होकर गीता का पाठ करो तुलसी में जल डालिया करे, ब्राह्मण साध

चलते रहे राजा भी परमगति का अधिकारी हुआ श्री नारायणजी कहते हैं। हे लक्ष्मी! यह ग्यारवें अध्याय का महात्म है जो तैने श्रवण किया है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तारखंडे गीता महात्म्य नाम एकादशो अध्याय ॥

* अथ बाहरवां अध्याय *

अर्जुनोवाच—अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से प्रश्नकरता है। हेप्रभुजी! तुम्हारे भक्त तुम्हारे इस कमलनैन के उपासक हैं। एक तुम्हारे आश्चर्यरूप के उपासक हैं, और एक जो तुम्हारा अन्तर अविनाशीरूप है तिसके उपासक हैं,

और एक तुम्हारा रूप अनन्द देश है, जो मन बाणी से परे है तिसकी उपासना करते हैं, इन सबमें चतुर उपासक कौन है ? हे प्रभुजी! यह कहो। अर्जुनकी बिनती मान कर श्रीकृष्ण भगवानजी बोले। श्रीभगवानोवाच—हे अर्जुन। यह जो मेरा कमलनैन प्रगट रूप है सो मनको निश्चल चेता मेरे में राख। मन को एकाग्र करके परम श्रद्धा साथ जो इस कमलनैन के उपासक हैं, मेरे मत में यह भक्त श्रेष्ट हैं और चतुर हैं, अब दूसरों का वृत्तांत सुन। प्रथमे अक्षर अविनाशी है, तिसकी महिमा मन बाणी पर आवती नहीं। जिह्वा कह नहीं स-

क्ती. इस से अनिरदेश करते हैं, जो नेत्रों कर देखा न जाए, तिसे अव्यक्त कहते हैं, सर्व व्यापी जो है मन कर तिसका प्रताप चितविया नहीं जाता। इस कारण से अचिंत कहिये तिसमें कोई विकार नहीं। कभी घटना बढ़ता नहीं, इससे स्थित कहिये, कभी ठौर से हलता चलता नहीं। इसी से अचल कहिये। फिर किसीका हलाया हले नहीं, इसी से ध्रुव कहिये यह आठ प्रताप मेरे अव्यक्त स्वरूपके हैं। जो कोई इसकी उपासना करे तिसके लक्षण सुन जिन साधनों कर अव्यक्त रूप पाये हैं तीन साधन करने योग्य हैं मुख तो सब इन्द्रियों का संयम

करना इन्द्रियां जीतनी । सभ भूत प्राणियों साथ समता और सबके कल्याण साथ प्रीति जो हे अविनाशी पुरुष । सभ जीव सुखी रहैं, इन साधनों कर अविगत स्वरूप का उपासक अव्यक्त जो मैं ईश्वर हूं, सो मुझको पावे है । अब और सुन । हे अर्जुन ! अविगत स्वरूप के उपासक जो हैं तिनको अधिक कष्ट है, क्या क्लेश है ? और समता दृष्टि भी कठिन है, सो सुन । जो कोई पूजा करे तिस का भला वांछना । जो पूजा न करे तिसका भी भला वांछना यह जो जितने जीवधारी हैं तिनको यह कठिन साधन है जिसके पावनेके निमित्त यह कठिन साधन किया है सो तो

देखने का नहीं, नेत्र देखकर क्या सुख पावें, वचनों कर तिस की महिमा कही नहीं जाती, सो जिह्वा किस गुण को पाकर सुख पावे, मनकर चितवने का नहीं। मन किस स्वरूप को चितवे इस से जितने देहधारी हैं। तिनको अव्यक्त की उपासना में कष्ट है। हे अर्जुन मेरे कमलनैनन के जो उपासक हैं तिनकी सुन मैं जो देवकीनन्दन जसोधानन्दन, नन्दकोनन्दन, परमसुन्दर, आनन्दको समुद्र हूं। जो मेरे इस रूप के उपासक हैं और मेरी शरण आए हैं, तिन्हों ने सब कर्म मुझ में समरपे हैं कैसे जो यह घर जो है हे भगवान! तेरा मैं दास हूं, दासभाव होकर मेरा भजन

करे हैं और रसोई आदि जो है सब मुझको समर्पण करे, मेरा शीत प्रसाद जानकर खाते हैं। हर समय मेरा ही ध्यान, मेरा ही स्मरण, हे गोविंदजी विश्नपदे गावने मेरा कीर्तन करना, इस प्रकार आनन्द होकर मेरा भजन, मेरी उपासना करते हैं। तिन्होंके साथ मैं कैसा हूं, सो सुन। यह संसार जो दुखरूप जन्म मरणका घर तिससे उद्धार करता हूं, तत्काल ही मुक्ति करता हूं। जिन पुरुषों ने मेरे विषे मन को निश्चल चेता राखा है। हेअर्जुन! मेरे उपासक जो सेवक हैं तिनको यह साधन करने योग्य है कौन, पहिले तो मनको निश्चल चेता मेरे में रखना और

बुद्धि भी मेरे विषे रखनी, यह दोनों साधन मेरे भक्तों को करने योग्य हैं । इस से और कोई मेरे रिझावने का साधन नहीं, इस से मेरे भक्तों को भक्ती करनी रही नहीं । हे अर्जुन । तेरे मनका निश्चल चेता मेरे विषे लगा है । तुझें बाकी करना कुछ नहीं रहा । तूं कृतार्थ हुआ है मेरे को त्यागके मन किसी और बातको जावे तब बुद्धि साथ मनको रोक मेरे में निश्चल कर, इसका नाम अभ्यास है। हेअर्जुन।जो तेरेसे अभ्यास योग किया न जाए और मनमें मेराध्यान नालगे प्रातःकालसे लेकर रात्रि शयन प्रयंत मेरी सेवा पूजाकर।जब मेरे अर्थमेरी पूजा करेंगा

तब तू संसारसे मुक्ति होवेगा। जो पूजा भी नाकर सकै तो दोनों हाथ जोड़ कर मेरे चरणकमलों को नमस्कार कर। मुखसे यह कहो श्रीकृष्ण भगवानजी मैं तेरीशरण हूं, जब इस प्रकार मेरी शरण आवेगा तब मन अपने चरणों साथ निश्चल कर रखेगा। हेअर्जुन! मनका निश्चय चेता मेरे में राख, यह मार्ग बहुत कल्याण का है। इसे अभ्यास योग कहते हैं। इस अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। कौन ज्ञान? मेरी महिमा का जो कहना सुनना और इस ज्ञान से मेरे ध्यान साथ जुड़ना श्रेष्ठ है। जब मेरे ध्यान साथ जुड़ता है तब सभी कर्म्मों के फल त्यागे जाते हैं

तिसको क्यों जो मेरा भक्त होता है सत्य स्वरूप और जो कोई मेरा भक्त सत्यपद को पावे है तिसके लक्षण सुन। किसी भूत प्राणीका बुरा न मनावे। सबका मित्र होए रहे, सबसे कृपालता अहंकार ममतासे राहितहोकर कहे ना कुछ मेराहै ना कुछ मैं हूं। सबकुछ परमेश्वरका है सुख दुख एकसा रहे, क्षमावन्त सदासन्तुष्ट प्रसन्न निरंतर मेरे साथ जुड़ा हुआ संसार के विषयों से आत्मा जीत रखा है। मेरे दृढ़साथ दृढ़ निश्चल चेता रखना बुद्धि को भी मेरे मे दृढ़ करना, जो इस प्रकार मेरे भक्त मेरा भजन करते हैं सो मुझे पाए रहे हैं। फिर किसी से डरते

नहा। भली बुरी वस्तु पाये से हर्ष शोक नहीं करते। ऐसा जो मुक्ति रूप सो मुझे प्यारा है फिर कैसा जिसको किसी वस्तु की वांछा नहीं, और देहको जल मृतिका से पवित्र रखे। अन्तश करण मेरे भजन कर पवित्र रखे। उज्वल मतकर मुझे अविनाशी पिछाने संसार के लोक से उदास रहे। सदा सुखी जिसने सर्व कार्य्य संसार के जो हैं तिनका आरम्भ त्याग दिया है। सो मुझे प्यारा है। फिर कैसा है गई वस्तु की चिन्ता नहीं और मिली वस्तु की वांछा नहीं करता और संसार के भले बुरे को त्याग दिया है, मेरे चरणों के साथ प्रीति है। ऐसा भक्त मुझे

प्यारा है। फिर कैसा है शत्रु मित्र तिन्हें एक समान हैं। आदर अनादरमें एकसा, शीतऊष्ण, दुःख, सुखमें एक रस है दूसरे का संग ना करे एकाएका निरबंधन रहे, फिर स्तुति निन्दा किये से एकसा है, मेरे नाम विना जिह्वासे कुछ बोले नहीं, जिस किस प्रकार सन्तुष्ट रहे। घर बनाने का भी आरम्भ न करे, बनी होई जगह पर बैठकर भजन करे। संसार की तरफ मे ऐसा रहे। मेरे चरणों साथ दृढ़ निश्चय मेरे साथ ही प्रीति करे ऐसा जो प्राणी है सो मुझे प्यारा है हे अर्जुन। यह साधन मैंने अपने भक्तों को उपदेश किये हैं इन साधनों का नाम अमृत धर्म है जैसे

अमृत पान किये से कोई रोग नहीं रहता, जीव अमर होजाता है। तैसे ही यह अखंड ब्रह्मरूप मेरा है। जैसे कैसे तैसे अपने भक्तों को यह यथार्थ धर्म कहे हैं, सो परमश्रद्धा से जो इन धर्मों की उपासना करे है सो भक्त मेरे को अति प्यारा है। इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे भक्त योगो नाम द्वादशो अध्याय ॥ १२ ॥

* अथ बारवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीभगवानोवाच—हे लक्ष्मी ! अब बारवें अध्याय का महात्म्य सुन दक्षिण देश में एकसुखानंद नामा राजा

रहता था। तिसकी नगरी में एक अवंतका नाम लंपट रहे था। एक गनिना से उसकी प्रीति थी, वह दोनों एक देवीकेमंदिर में जायके मदरापानाकिया करैं मास खावें भोग भोगें। जो कोई पूछे तुम यहां क्या करते हो तो कहें हम यूहा रहते हैं, देवी की सेवा करते हैं झूठ कह देवें। उसी मंदरमें एक ब्राह्मण देवी की सेवा करता था, एक दिन उस ब्राह्मण ने देवी की स्तुति करी देवी प्रसन्न हुई। कहा, वर मांग जो मांगगा सो देऊंगी। फिर उसने धन संतानसुख मांगा। देवी ने कहा, हे ब्राह्मण! अवश्य कर तुझे धन संतान सुख देऊंगी पर एक बात कर। पहिले इन दोनों का उद्धार करले ऐसा

उपाय कर जिससे इन दोनों का उद्धार होवे। तो ब्राह्मण ने नमस्कार करी और अपने गुरू पास आकर कहा हे, गुरूजी! मैंने देवी की स्तुति करी थी सो प्रसन्न हुई धन संतान दी है, पर पहिले इन दोनों का उद्धार होवे। तब गुरू ने कहा, हे ब्राह्मण! चल श्रीनाराणजी से पूछिये। तब श्री नारायणजी का तप किया। तीर्थ ब्रत किये भगवानजी प्रसन्न हुए। आकाश वाणी हुई स्मरण करो तब वह स्मरण करने लगा तब श्रीनारायणजी गरुड़पर सवार होके आये। और कहा, तेरी क्या कामना है? पिछली बात कही देवीजी की मैंने भक्ति करी थी, भगवती प्रसन्न हुई कहा धन संतान

देती हूं।पर इन दोनों का उद्धार कर जिस किस तरह कर के। सो मैं जानता नहीं हूं, आप कृपा करके कहो उनका उद्धार किस प्रकार होसकता है । तब श्रीनारायणजी ने कहा, हे ब्राह्मण ! गीता के बारवें अध्याय का पाठ सुनावो तो उन दोनों का उद्धार होवेगा। तब उस ब्राह्मण ने भगवान की स्तुति कर धन्यवाद किया। आशीर्वाद कही तुम्हारी जय होवे जी। तब ब्राह्मण ने देवी के मंदिर में भगवती की स्तुति करी तुम्हारी जय होवे। तब देवी प्रसन्न भई कहा, हे देवीजी। श्रीनारायणजी ने आज्ञा करी है। तब देवीने कहा,हे ब्राह्मण। तूं उनको पाठ सुना

जिस से उनका उद्धार होवे। तब दोनों गनिका और लंपट को बैठाकर गीता के बारवें अध्याय का पाठ सुनाया, सुनते ही उन दोनों की देह छूटी। देव-देही पाई, और बैकुंठ को गये,देखकर देवी प्रसन्न हुई। ब्राह्मण को कहा हे पंडित ! आज से मेरा नाम वैष्णों देवी हुआ इस पाठ को सुन कर ऐसे अपकर्मी तर गये हैं, इस नगरी का राज तुझको दिया। इतना कह कर अन्तर ध्यान हुई,ब्राह्मण घर गया। उस राजा के संतान न थी, राजा ने उस ब्राह्मण को बुलाए राज देके आप तप करने को गया, बन में विरक्त होकर। और ब्राह्मण राज करने लगा।

श्रीनारायणजी कहैं, हे लक्ष्मी ! यह गीताजी के बारवें अध्याय का महात्म्य है जो मैंने कहा, और तूं सुनिया है इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्रारवंड श्रीगीता महात्म्यों नाम द्वादशो अध्याय ॥ १२ ॥

* तेरवां अध्याय *

अर्जुनोंवाच—अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न करे है। हे प्रभुजी। भगवान प्रकृति किस को कहते हैं और पुरुप किसको कहते हैं। और क्षेत्र किसको कहते हैं, ज्ञान और गेय किसको कहते हैं। और क्षेत्रग्य किसको कहते हैं इनका उत्तर कहोजी। श्री भगवानोंवाच हे कुंतीनंदन

अर्जुन ! यह जो मनुष्य की देह है इसको क्षेत्र कहिये है सो क्यों कहते हैं । जब यह जीव फिरता २ चुरासी से मनुष्य देह में आवे है तब चैतन्य होता है । कैसा चैतन्य परमेश्वर को भी पछाने है पाप पुण्य को भी समझे है। क्यों जो इस देहको पायकर भला बुरा करता है, पाप पुण्य का फल भोगता है दूसरे देहधारियों को न पाप है न पुण्य है।मानुष्य देहको पायकर पापपुण्य उपजते हैं और जितनी बातोंका इस शरीर में ठाट है उनको जो समझे सो तत्त्व-वेत्ता पुरुष है। क्षेत्रज्ञ भी उसी को कहते हैं जो शरीर रूपी क्षेत्र का जानने वाला होवे । सो हे अर्जुन।क्षेत्रज्ञ

मुझ को जान। जिस के ज्ञान कर क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ दोनों को जानिये सो यह मेरे मत का ज्ञान है। अब क्षेत्र जो देह तिसका वृत्तांत सुन। देह का ठाट कितनी वस्तुओं कर बना है। जो कुछ इस क्षेत्रमें वर्तमान वरतेहैं सो सुन। इसका वृत्तांत ऋषियों ने बहुत भांतों कर कहा है वेदों ने भी कहा है, भिन्न भिन्न सुने हैं। हेअर्जुन मैं भली प्रकार कहता हूं सो तूं निश्चय जान, जो मेरे मुख कमल से निकसे हैं। शरीरक्षेत्र में पांचतत्वहैं। पृथिवी, जल, अग्नि पवन आकाश। पृथिवीका अंश इस देह में मास है जल का अंश रुधिर। अग्निका अंश इस देह मे अग्नि है। जो

भोजन आदि वस्तु को पचावे है। पवन का अंश स्वांस है। आकाश का अंश पुलाड़ है यह पाचों महाभूत देहमें है और मन बुद्धि चित हंकार दसों इन्द्रियां पांच कर्म्म इन्द्रियां ज्ञान इंन्द्रियां कौन हैं। नेत्र, नासिका, श्रवण, त्वचा जिह्वा यह ज्ञान इन्द्रियां हैं। इन पांचों में ज्ञान है कर्म्म कर नहीं जानती। कर्म्म इन्द्रिया कौन हैं। हस्त, पांव गुदा लिंग, वाक यह पांचों कर्म्म इन्द्रियां हैं। यह कर्म्म को ही कर जानती हैं। त्वचा स्पर्श इन्द्री जो है सो सब इन्द्रियों में व्यापी हुई है। जिह्वा में भी दो गुण हैं! जब स्वाद लेती है तब तिसमें ज्ञान गुण है। जब बचन बोले तब कर्म्म गुण

हैं। लिंगमें भी दोनों गुण हैं, मैथुन (भोग) करता है तब ज्ञान गुण लघी (मूत्र) करता है तब कर्म गुण यह तो दसों इन्द्रियां कही। पांच इन्द्रियों के पांच ही आहार हैं। सो कौन नेत्रों का आहार देखना। नासिका का वाश्ना लेना; जिह्वा का स्वाद लेना आहार है। श्रवणों का शब्द सुनना और स्पर्श इन्द्री जो त्वचा है, तिसका आहार वस्त्र पैहिरने सुगंध लेपन करना, शीत उष्ण समझना। यह पांचों के आहार पांच हैं इनसे ही सब वस्तु का शरीर बनता है॥ जो इस शरीर नगर में वसते सो सुन। अच्छी वस्तु खाने की वांछा, बुरी वस्तु की वांछा। कभी सुख कभी दुख यह

चारों बातें इसमें तीन प्रकार वरते हैं। इन चारोबात्तों की विश्वमें भोड़ी वस्ती है। और चारों की इसमें चैतन्यता है, यह चारों बातें इस में दृढ़ हैं हे अर्जुन! इस शरीर क्षेत्र का वृत्तांत मैंने तुमको भली प्रकार कहा है, और जिस साधन से मेरे जानने का ज्ञान उपजे सो साधन सुन। मुख्य का तो यह साधन है, जो अपमानी होवे निर्मान रहे अपनी पूजा मानता ना करावे। गुरु गुसाईं होके ना बैठ मन, वच, कर्म कर सबका सेवक होये रहे। परवंडी भी ना होवे, क्या चौकड़ीमार नेत्र मुंदके बैठे रहे। लोक जाने कोई बड़ा तपी है और विषय भोगों की वासना से कुछखाइये

कुछ पहरिये इस परंवड से रहित हो। मनकर किसी का बुरा ना चितवे। मन,वच, कर्म्मकर किसी को दुखावे नहीं वचनों कर दुर्बचन ना कहे। हाथकर मारे नहीं। पैरोंसे चल कर किसी का बुरा ना करे। किसी स्थावरजंगमको दुःख ना देवे,इत्यादि कोई और इसको दुःख देवे तो बुरा ना माने। क्षमाकरे, नम्र रहे, सब किसी साथ नम्र भाव रहे, और जो अच्छे मार्ग के उपदेश करने हारे गुरु तिनकी सेवा करे। जल मृतका कर अपनी देह पवित्र रखे, धैर्य कर मनको निश्चल रखे। इन्द्रियों के भोगों से उदास रहे अहंकार से रहित होजो प्राणी यह साधन करे सो जन्म

मरण के दुःखों से रहित मुक्त होवेगा। और साधन सुन। पुत्रस्त्री घरके और सम्बन्धियोंसे मोह लगावे नहीं। और शत्रु मित्रता से रहित रहे। सदा एकसा रहे। मुझ साथ आनन्द रहे। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने भर्ता की सेवा करती है। पराया पुरुष देखती नहीं। तैसे मेरा भक्तमुझ सिमरे किसी दूसरेका नाम ना लेवे। ऐसा मुझ साथहोवे और एकान्त बैठ संसारी मनुष्यों का संग ना करे। और मैं सब आत्माओं का ठाकुर अधिकारी हूं। जो मुझ ईश्वर अध्यात्मके जाननेको एकांत बैठ जो देखे अध्यात्म ईश्वर ठाकुर कैसा है। हे अर्जुन। यह सब साधन मैंने

तुझे कहे, ज्ञान पावने के निमित्त इन साधनों बिना और जो कुछ करे सो अज्ञानी जानना। यह तो ज्ञान के साधन हैं। जैसे दीपक की सामग्री तेल रुई अग्नि सब इकट्ठे कर दीपक जला कर घर में धरीये तिस उजाले कर सब वस्तु घर में जो कुछ पड़ी हैं देखी जाती हैं सो ज्ञान तो दीपक भया, और वस्तु देखनी सुन। हे अर्जुन तैंने यज्ञका प्रश्न जो किया था, सो भी मैं हूं इस कारण से मेरा नामयज्ञ है। पाहिले तिसका महात्म सुन तिसके सुननेसे जन्म मरण से मुक्त होवेगा। जैसे अमृत पान करने से देह अरोग्य होती है मृत्युभी नहीं होती तैसे

ही मेरे यज्ञ रूप सुन। अमृत पान करने से अजर, अमर होवेगी। सो सुन। गेय अनादि है। जिसकी आदि, नहीं सब से परे है। इसी से पारब्रह्म कहते हैं। देह जीव इनसे परे है और सब ठौर में नेत्र हाथ सिर श्रवण इत्यादिक अंगों में व्यापक है। सब जगह में बस रहा है सब इन्द्रियों से गुणों का प्रकाश है सब इन्द्रियों से रहित है। सब साथ मिला हुआ है सबके करने हारा है। फिर आप निर्गुण है और सब गुणों को भोगता है। स्थावर जंगम जो भूत प्राणी हैं तिन के बाहर भीतर व्यापक है। और सूक्ष्म है जाना नहीं जाता। इससे परमेश्वर को दूर कहते हैं सब

में व्यापक भी है । सब से न्यारा भी है, तिसको हे अर्जुन तूं ज्ञेय जान । जब संसार को ग्रास लेता है। तब तिसका नाम ग्रासन होता है । जब संसार को अपने से प्रगट करता है तब उसका नाम उत्पत्ति कर्त्ता है । जब संसार के अन्तर बाहर व्याप रहा है तब तिसको विष्णु कहते हैं। सूरज से लेकर जितने जोत वाले हैं तिन सब की जोत मुझको जान । और तम जो अन्धकार है अज्ञान इससे परे है । हे अर्जुन यह ज्ञेयके जानने का ज्ञान है । इस ज्ञान से ही जानेया जाता हूं । हाथ से पकड़िया नही जाता । इस देह को नेत्रों कर नहीं देखता सब, के हृदय में बसे

है। हे अर्जुन ! खेत्र क्षेत्रज्ञ और ज्ञान ज्ञेय का वृत्तांत भिन्न भिन्न कर कहा है। हे अर्जुन ! मेरे भक्त इस प्रकार मुझे समझकर मेरे चरण कमलों से जो श्रद्धा प्रीति लगावे है। अब अर्जुन प्रकृति पुरुष का वृत्तांत सुन। प्रकृति जो है माया पुरुष जो जीव, इनको तूं अनादि जान। ज्यों मेरा आद अन्त नहीं, जब का मैं हूं तब के यह भी हैं। अब इनका वृत्तांत सुन यह देह इन्द्रियां तत्व जो हैं, इन सबके उपजावनहारी माया है। कार्य, कारण, कर्त्ता, कार्य कहिये जो वस्तु उपजी और जिस वस्तु से कार्य उपजिया सो कारण कहिये जिसने बनाई सो कर्त्ता कहिये दृष्टांत सुन कार्य

जो है माटी का बासन, तिस बासन का कारण माटी है। जिससे बासन बना सो तिस बासन का कर्त्ता घुमार है। सो हे अर्जुन ! यह संसार जो कार्य है सो कार्य भी माया है यह संसार माया का स्वरूप है, संसार का कारण भी माया है। माया से संसार प्रगट हुआ है, संसार के करने हारी भी माया है। सो यह तीनों बातें माया से जान हे अर्जुन ! यह सारा वृत्तांत माया का कहा। अब पुरुष जो जीव है तिसका अर्थ सुन। इसप्रकृति का जो उपजाया हुआ शरीर नामा नगर है सो इस शरीर में दुःख सुख भोगता जीव है। प्रकृति से उपजे हुए जो देह इन्द्रियां

तीनों गुण सबको भोगे है। तीनों गुणों के संयोग का रंग इस जीव को लगता है। तिन रंगों कर रोका जाता है। गुणों की संगत कर यह जीव भ्रमता फिरता है। अब अर्जुन मेरी बात सुन। मैं कैसा हूं, इस माया और जीव ने आपस में मिलकर मेरे आगे एक कौतक करना है। सो इन के कौतक को देखनहारा मैं हूं, जीव के और काया के निवारणहारा भी मैं हूं,। हे अर्जुन ! यह दोनों मुझको नमस्कार करते हैं। इन दोनों के न्याय करनेहारा भी मैं हूं, इस जीव और देह से मैं परे हूं। हे अर्जुन ! इसी कारण से मैं परमात्मा कहता हूं। जो कोई इस प्रकार दुःख

सुख का भोगता जीव को जाने और इन्द्रियों के गुण सो माया को जाने। इनका कौतक देखनहारा मुझे इन से न्यारा जाने। सो इस जानने का फल क्या पावे है सो सुन। स्वास स्वास संसार के जन्म मरण के बंधक से मुक्ति होवे। हे अर्जुन! कई एक योगी ध्यान कर आप विषे अपने आत्मा का दर्शन पाते हैं इस मार्ग कर कृतार्थ होते हैं।.इस सांख्य शास्त्र के मार्ग मुझको देखते हैं सो कहते हैं, जो कुछ है परमेश्वर ही है।दूसरा कुछ नहीं,एक मेरे स्व-रूप की पूजा करते हैं। तिस स्वरूप का दर्शन करते हैं,एक मेरे भक्तों से मेरी माहिमा सुन के उनकी प्रीति मेरे में लगाते

हैं। मेरे नाम को सिमरते हैं। सो प्राणी मेरी परमगति को प्राप्ति होवैंगे। हे भारतवंसियो में श्रेष्ठ अर्जुन! और सुन जो कुछ स्थावर जंगम भूत प्राणी प्रगट हुए हैं सो इस देह और जीव के एकत्र होने से प्रगट हैं। तिन सब भूत प्राणियों में एक मैं ही परमेश्वर व्यापक हूं। देह के नाश हुए तिसका नाश नहीं होता। जिन ऐसा अविनाशी परमेश्वर जानियाहै और जिन सब भूत प्राणियों विषे एक ही मुझे समीप देखा है सो सबका सुखदायक सेवक होएरहे। दुखावे किसी को नहीं। सो भी मेरी परम गति को प्राप्ति होवेगा। हे अर्जुन! जो कर्म होते हैं सब

देह इन्द्रियां मन से होते हैं। यह सब प्रकृति माया की है। जो कोई आत्मा को देखे सो अकर्त्ता देख। आत्मा कुछ नहीं करता यह सब प्राणियों का विस्तार सो भिन्न २ देखता है यह दृष्टि दूर होवे। एक आत्मा ब्रह्म सब में दृष्टि आवे, जब ऐसा होवे तब तुरंत ही तिन आत्मब्रह्म को पाया है। ब्रह्म साथ मिला सो आत्माब्रह्म अनादि हुआ जिसका आदि अन्त नहीं सो अनादि है। निर्गुण, गुणातीत परमात्मा अविनाशी है। हे कुन्तीनन्दन! इस शरीर में ही आत्मा बसे है। कुछ कर्म नहीं करता निरलेप सब देहों में बसे है। देह के गुण तिस आत्माको नहीं व्यापते ज्यों

आकाश सर्वव्यापी है, सब से न्यारा है। हे अर्जुन ! एक मेरा महांप्रताप और सुन, जिसके आगे और प्रताप कोई नहीं। जैसे सूर्य प्रातःकाल को पूर्व से उदय होता है। एक वार ही सब लोक में चांदना प्रकाश करता है। ऐसा नहीं जो किसी देश सूर्य का चांदना पाहिले हो और किसी देश पीछे हो, सर्व लोकों में चांदना एकवार ही होजाता है। तैसे ही ब्रह्मा से लेकर चींटी प्रयन्त स्थावर जंगम जो संसार तिन सब जीवों के शरीर में एकवार ही प्रकाश करता हूं। हे अर्जुन ! यह क्षेत्र जो शरीर और क्षेत्री जो यह जीव है और क्षेत्रज्ञ जो मैं हूं, सो कैसा हूं, एक नेत्र

के उघाड़ने से सर्व संसार प्रगट करता हूं। जो कोई जीव ज्ञान नेत्रों से मेरा प्रताप विचारे, मेरी स्तुति करे जो धन्य है श्रीकृष्ण भगवान जिसको यह सामर्थ है, एक क्षण मात्र में सब संसार को प्रगट करता है। ऐसा जो परम पुरुष है, तिसको मेरी नमस्कार नमस्कार नमस्कार है। फिर भी मेरी नमस्कार है, जो प्राणी इस प्रकार मुझ को जाने, मेरी स्तुति करे, तिसका फल सुन। सो ऐसे प्राणी जन्म मरण संसार के दुःखों को काटकर मेरे परम अविनाशी पद को निःसंदेह जाय पाते हैं॥ इति श्री भगवद् गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण

अर्जुन संवादे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ ज्ञान गेय प्रकृति जीव विभाव योगो नाम त्रयोदशो अध्याय ॥ १३ ॥

* अथ तेरवें अध्याय का महात्म *

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! अब तेरवें अध्या का महात्म सुन । दक्षिन देश में हरिनाम नगर था । वहां एक व्यभिचारिणी स्त्री रहिती थी । व्यभिचार करे मांस मदिरा खावे एक दिन एक पुरुष से उसने वचन किया जो अमके स्थान में तेरे पास आवुंगी तुम वहां चलियो तो वह पुरुष किसी और बन में चला गया और वह स्त्री उसे ढुंढती ढुंढती हैरान होए गई । वह मनुष्य ना मिला वह भी मालती फिरे

वह गनिका थक्कत होकर उसका रासता देखने लगी। देखते रही साराादिन व्यतीत हुआ प्रीतम ना आया। सांझ पड़गई वोह गनका प्रीतम का नाम ले लेकर पुकारने लगी वृक्षों से पूछा। इतने में वह पुरुष मिला, दोनों बड़े प्रसन्न होकर बैठे इतने में एक शेर आया, गनिका डरी, देखकर सिंह बोला। अरी गनिका! मैं तुझे खाऊंगा। वह बोली तूं पहिले अपने जन्म की बात कहो तूं कौन हैं ? तब सिंह बोला, मैं पहिले जन्म ब्राह्मण था। झूंठ बोला करता था बड़ा लोभी था। जूआ खेलता था, ज्यों क्योंकर दूसरे का धन हर लेता था, एकदिन प्रभात के समय घर से उठकर

चला। रास्ते में गिरते ही देह छूट गई जमों ने पकड़ लिया। धर्मराज के पास लेगये देखते ही धर्मराज ने हुक्म दिया इसी घड़ी ब्राह्मण को सिंह का जन्म देवो। यह देह मुझे मिली और हुक्म दिया जो प्राणी पापी दुराचार करने वाले हों तिनको तूं खाया कर। जो साधु वैष्णव हरिभक्त हों उनके पास ना जाना। हे गनिका! मुझे धर्मराजका यह हुक्म है। तिनकी आज्ञा कर सिंह की योनी में आया हूं। तूं व्यभिचारणी गनिका पापिन हैं। इसी से तुझको खाऊंगा, इतना कह गनिका को खालिया, तब यम धर्मराज के पास गनिका को लेगये। धर्मराज ने हुक्म दिया इसको चंडालनी

का जन्म देखो श्रीनारायणजी कहिते हैं। हे लक्ष्मी उसने गनिकाकी देहत्याग चंडालनीकी देह पाई।कई दिनके पीछे एक दिन नर्वदा नदी के किनारे चली जाती थी। वहां क्या देखा कि एकसाधू गीताके तेरवें अध्यायका पाठ करता है उसने सुनलिया।जब अध्यायपढ़केभोगपाया।तबचंडालनी के प्राण छूट गये देव देही पाई। आकाश से विवान आए। तिनपरबैठकर बैकुंठकोचली।साधूने पूछा, अरी तैने कौन पुण्यकिया,जिसकेकरने से बैकुंठ को चली है। चंडालनीने कहा,हे संतजी!इस तेरे पाठका श्रवण कर मैं देवलोक को चली हूं।तब पारषदों को कहा,कोई ऐसा यत्न करो जिस

सिंह ने मुझे पिछले गनिका के.जन्म में खाया था उसको भी साथ लेचला तब उस साधु से प्रार्थना की , हे सन्त जी गीता जी के एक श्लोक के पाठ का फल उसके निमित्त देवो जी । सिंह का उद्धार होवे, तब उस सन्तने पाठका फल दिया । तत्काल उस सिंह की देह छूटी । देवदेही पाई दोनों विवानों पर चढ़ कर वैकुंठवासी हुए परमधाम को प्राप्त हुए । तब श्रीनारायणजी ने कहा,हे लक्ष्मी,यह तेरवें अध्यायका महात्म है। प्रीतीसाथ पढ़ने की बातका कुछ फल कहा नहीं जाता । अनजानपनेसे पढ़े तो भी मेरे पर-मधाम को प्राप्त होता है । निस्संदेह । इति श्री पद्मपुराणे

सती ईश्वर संवादे उत्तरा खंडे श्रीगीतामहात्म्य नाम त्रयोदशोअध्याय ॥१३॥

* अथ चौदवां अध्याय *

श्रीकृष्ण भगवानजी अर्जुन प्रति काहिते हैं-हे अर्जुन। फिर मैं तुझको परमज्ञान जो सर्वज्ञान से उत्तम है सो कहता हूं। जिस ज्ञान के जानने से सब मेरे भक्त मुनिश्वर परमसिद्ध जो है सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद में जाय प्राप्त होते हैं। जिन्होंने मेरे इस ज्ञान का आसरा लिया है और जिन्होंने मेरा यह ज्ञान सुना है जो श्रीकृष्णजी ऐसे बड़े हैं। ऐसा पछानके जिन्होंने मेरा आ-

मेरा लिया है, मेरी शरण आए हैं तिन्हों का मेरे जैसा ही धर्म होता है। सो क्या धर्म सो मेरा भक्त संसार की प्रलय साथ प्रलय नहीं होता। और संसार की उत्पत्ति साथ उत्पत्त नहीं होता। जैसे मैं संसार की प्रलय साथ प्रलय नहीं होता संसार की उत्पत्ति साथ उपजता नहीं। यह मेरा धर्म है तैसे ही तू मेरे भक्तों को जान। हे अर्जुन। यह मेरे ज्ञान की बड़ियाई और फल कहा है। हे अर्जुन। वह ज्ञान भी सुन। मेरा नाम महदब्रह्म है सो क्या कारण तिसका अर्थ सुन। जब संसार की प्रलय होती है तब सारे संसार को अपने उदर में रख लेता हूं। जब संसार के उपजावने

का समय आता है तब अपने उदर से प्रगट कर लेता हूं, इसी कारण से मेरा नाम महद्ब्रह्म है महदब्रह्म कहिये बड़ा ब्रह्म। हे कुंतीनन्दन। एक मेरा नाम महदब्रह्म जोन है तिसका अर्थ सुन। सब एकही ईश्वर से अनेक भांत का संसार प्रकट हुआ। जितने देह धारी पीछे वरते हैं और जितने अब वरते हैं और जितने आगे होवेंगे सो देख। किसीजिसा कोई नहीं और ही और भांत के हैं। तिनकी कीर्ति प्रकृति भिन्न २ है। तिनके शब्द जुदे २ हैं। हे अर्जुन। वीर्य के देनेहारा पिता भी आप हूं राजस तामस शांतक यह तीनों गुण जो देहोंमें व्यापते हैं औरयह अविनाशी

जीव जो सब देहों में व्यापता है सो माया साथ तीनों गुणों साथ मिला हुआ बांधा है। जिसप्रकार यह जीव तीनों गुणों साथ बांधा है सो सुन, प्रथम सात्विकका वृत्तांत सुन। निर्मल पवित्र इन्द्रियों में प्रकाश मन विषे निर्मल प्रकाश अज्ञान रोग से रहित अरोगी और हे अनघ निह पाप अर्जुन इस प्रकार यह जीव सात्विक गुणकर बांधा है, और राजस गुणका वृत्तांत सुन, कुटुम्ब के लोगों के साथ मोह ममता यह मेरा है, यह उनके हैं, द्रव्य कमाने की तृष्णा से इस प्रकार जीव जो गुणों कर बांधा है। हे अर्जुन! यह ऋण सम्बन्धी सब कुटुम्ब के लोक हैं, इस

प्रकार जैसे बेड़ी का पूर नाउका पर सब लोग इकट्ठे हुए हैं, तैसे ही कुटुम्ब के लोग इन साथ दृढ़ ममता मोह से जीव ने लगाये रखी है, यह राजस गुण है। अब तामस गुण का वृत्तांत सुन। तामस गुण जो है तिनको तूं सार अज्ञान जान असावधानता गोविंद का बिसरना आलस होना, निद्रा बहुत होना, इसप्रकार जीव तामसी गुण में बांधा हुआ निद्रा आलस असावधानता यह तीनों देह धारियों को मोहनेहारे हैं, और तामस से उपजे हैं, सात्विक गुण सुखों को उपजावे है। और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! राजस गुण कर्म को प्रगट करता है, निहकाम

नहीं रहने देता और अज्ञान असावधानता यह तामस के गुण से प्रगटे हैं, यह तीनों गुण देह में वर्तते हैं। सदा ही कभी सात्विक कभी राजस कभी तामस वरते हैं,यह बढ़ते घटते भी हैं, जब बर्तते हैं तब जानने में आजाते हैं सात्विक बढ़े से सभी देह के द्वारे में प्रकाश होवे निर्मल नेत्रों में निर्मल प्रकाश नासिका से निर्मल स्वास चलें, श्रोत्रों में सुरति भली होए, देह भी निर्मल होए अरोग्य होए, दोनों तले के द्वार स्वच्छ मन में परमेश्वर का स्मरण होए, इन लक्षणों से जाने, मेरी देह विषसतो गुण है। हे अर्जुन! जब रजोगुण बढ़ता है। तबद्रव्य बढ़ने का लोभ होता है लोभकर

कार्य में लगे सदा निद्राकाम कभी ना बैठे तब जानो राजस गुण बढ़ा है। जब तामस गुण बढ़े, तब सब देह के द्वार में प्रकाश, थोड़ा आलस निद्रा हो, तब जानिये तामस गुण बढ़ा है। अब और सुन सात्विक गुण के बढ़े में देह का त्याग होवे तिसको तब मूढ़ योनी जो पशु हैं, चुपाये अज्ञानी तिसको प्राप्त होता है। अब अर्जुन तीनों गुणों के फल कहे हैं। सात्विक गुण का फल निर्मल, राजस गुण का फल दुःख, तामस गुण का फल अज्ञान, सतो गुण से ज्ञान उपजे है। रजो गुण से भय उपजे है तमो गुण से असावधानता मोह अज्ञान उपजे है। जिन मनुष्यों की

शांतकी प्रकृति है सो देह त्याग के ऊपर के लोक को पावे हैं जिनकी राजसी प्रकृति है सो देह को त्याग के पृथ्वी पर जन्म पावे हैं जिनकी तामसी प्रकृति है, सो देह को त्याग के पृथिवी के तले पाताललोक में प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! मेरे पद विषे जब जावे, मैं इन तीनों गुणों का कौतुक देखन हारा हूं, इन गुणों से अतीत हूं, ऐसा मुझ को पहिचाने। सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद में जाय प्राप्त होते हैं फिर मैं कैसा हूं, इन तीनों गुणों का निर्णय करने हारा हूं, जीव की देहों की उत्पत्ति करता हूं, तीनों गुणों से अतीत हूं, ऐसा जो प्राणी मुझको पहिचाने

सो जन्म मरण और बुढ़ेपा तिनके दुःखो को काटकर मुक्त होता है । इस ब्रह्मज्ञान के अमृतपान करने से संसार में जन्म मरण नहीं आता है, ना मरता है । अर्जुन यह वचन सुन कर दीनदयालु श्रीकृष्ण देवजी से पूछता है । अर्जुनोवाच—हे भगवान कृपानिधानजी । यह जीव जो तीनों गुणों से बांधा है इसके छूटने की विधि कहो और जो देहसाथ होते ही तीन गुणों से अतीत है तिनके लक्षण कहो जिसकर समझूं जो यह तीन गुणोंसे रहित है। अर्जुन कीविनती मानकर श्रीकृष्ण भगवानजीबोले-हेअर्जुन ! जो देह साथ होतेभीतीनगुणोंसेअतीतहैं, तिनके लक्षण सुन ।

जो गुण देह विषे उपजते वर्तते हैं। तिन कर्मों का कहा नहीं जाता, कल्पना ना करे जो यह गुण बुरा है और तिस गुण के दूर होने की वांछा ना करे, जो यह दूर हो जावे ऐसा गुणों से उदास रहे। इस साथ मेरा क्या प्रयोजन है। जैसे विष्णु की माया गुणों को उपजावे है, तैसे ही देहों में स्वभावों साथ मिले हुए गुण वर्ते है। मैं आत्मरूप इनसे न्यारा हूं, इस प्रकार गुणों को हलाया चलाया चले नहीं फिर कैसा हूं, दुःख सुख में एक समान स्तुति निन्दा में एक जैसा कंचन माटी पाषाण एक समान जाने आदर अनादर करने से सुखी दुःखी न होवे

शत्रु मित्र एक जैसे जाने, किसी कार्य का आरम्भ ना करे । हे अर्जुन ! तीनों गुणों से अतीत का प्रश्न किया था, तिसके लक्षण कहे हैं, अब जिसप्रकार यह तीनों गुणों से अतीत होय सो सुन । हे अर्जुन ! विश्म्बर प्रभु पहिचान के केवल मेरे में सुरति लगावे और सब अवतारों से मन उठाय शीतल स्वभाव मेरी भक्ति में मन देवे फिर क्या कहे, हे प्रभुजी ! मैं तुम्हारा दास हूं, और तुम कर्तार सबके कर्त्ता हो, मैं दीन अनाथ हूं, कृतघ्न तेरे गुण किये को मैं नहीं जानता, तेरे बिना और प्रभु नहीं, मैं तेरे अधीन हूं, हम कर्म यंत्र में पड़ भ्रमते हैं, तूं तिस यंत्रका

सूत्रधार हैं। हे देव ! मैं तेरी शरण हूं, तूं सबका आसरा हैं। हे अर्जुन ! जो इसप्रकार मेरा दास होवे केवल अवांछी होय के मेरी ही शरण आवे सो इन तीनों गुणों से अतीत होता है। सो देह के साथ होते ही मुक्ति पावे है, और जीवन मुक्त होवे है, यह मार्ग तीन गुणों से अतीत सो मैं हूं, कैसा हूं, सो तिस आत्मा का प्रताप सुन इतनी बातों का नाम ब्रह्म है। एक तो यह सारी विश्व जो है ब्रह्म-रूप है, एक वेद शास्त्र यह सब शब्दब्रह्म है, और मुक्ति का नाम भी ब्रह्म है। मुक्ति का धाम वैकुंठ का नाम भी ब्रह्म है। इन सब ब्रह्म का मैं ही ठाकुर हूं, इन सब की

शोभा मैं ही हूं, सो ब्रह्म कैसा है? अविनाशी ना मरता हूं, पुरातन सब से पहिला धर्मरूप इन तीनों लोकों में बसने हारा और इन से अतीत भी हूं, गण-ग्राही सुख का समुद्र परमानन्द भगवान सब का प्यारा हूं। इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषद्ध सुब्रह्मविद्या योग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे नाम चतुंदशो अध्याय ॥ १४ ॥

* अथ चौदवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच-हे लक्ष्मी! उत्तर देश काश्मीराविषे सरस्वती त्तंत्र में एक पण्डित विद्यावान रहित था, वहां के राजे का नाम सूर्य वर्मा था संगलदीप के राजे साथ

तिसकी प्रीति थी, एक समय राजा ने संगलदीप से बड़े ज्वाहिर, मोती, घोड़े बहुत कीमतके भेज थे तबकाश्मीरके राजेने मन में विचारा कि मैं क्या भेजूं, एकदिनअपने वज़ीर से पूछा हम क्या भेजें? वज़ीर ने कहा, जो वस्तु वहां ना होवे सो भेजना अच्छा है। राजा ने कहा, और तो सब वस्तु वहां हैं एक शिकारी कुत्ते नहीं हैं, वह भेजो सोने के जंजरों साथ बंधे हुए मखमलों के गदेले डोलियों में बैठाये के संगलदीप में पहुंचाये देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। कहा, यह शिकारी कुत्ते यहां नहीं थे। यह मेरे मित्र ने बहुत भला किया हम शिकार खेला करेंगे, कई दिन

सुस्या स्वान दोनों इस जल के स्पर्श करने से उद्धार हो गये यह जल कैसा है। उस संत ने कहा, हे राजा! मेरा गुरू यहां रहता था नित्तस्नान कर गीता के चौदवें अध्याय का पाठ किया करता था। मैं भी यहां स्नान करके गीता का पाठ करता हूं। राजा ने कहा धन्य हो संतजी। आपके प्रताप कर ऐसी जूनों का उद्धार हुआ है मेरे भी धन्य भाग हैं जो आपका दर्शन हुआ है। सन्तने कहा, तुम कहां के राजे हो? उसने कहा, मैं संगलदीका राजा हूं। हे संतजी! मुझको इनकी पिछली कथा सुनावो, जो यह कौन थे, संतने कहा हे, राजा! यह सुस्वा पिछले जन्म ब्राह्मण था, यह अपने जन्म से

भ्रष्ट हुआ था, यह कुत्तिया इसकी स्त्री थी, स्त्री को बहुत खिझाया, स्त्री ने विष देकर मारा जब दोनों मर कर यम लोक में गये तब धर्मराजने हुक्म दिया कि इसको सुस्या का जन्ज देवो इसको कुत्ती का जन्म देवो तब इन दोनों ने पुकार की महाराज हमारा उद्धार कब होवेगा। तब धर्मराज ने कहा, जब श्री गीताजी के चौदवें अध्याय के पाठ करने वाले संतों के स्थान का जल स्पर्श होगा। तब तुम्हारा उद्धार होगा, यह दोनों धर्मराज के वर कर उद्धारे हैं, तब राजा नमस्कार करके अपने घर आया अपने पंडित जी से नित्य प्रति गीताजी के चौदवें अध्यायका पाठ सुनने

लगा नित्य प्रति सुनने से राजा का उद्धार हुआ देह त्याग कर बैकुंठ को गया श्रीनारायणजी ने कहा, हे लक्ष्मी ! यह चौदवें अध्याय का महात्म्य है जो मैंने कहा है। तैने श्रवन किया है। इतिश्रीपद्मपुराने सतीईश्वर संवादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम चौदवाँ अध्याय ॥ १४॥

* अथ पन्द्रवां अध्याय *

श्रीभगवानोवाच—श्रीकृष्ण भगवान जी अर्जुन प्रति कहे हैं। हे अर्जुन ! यह संसार वृत्तरूप है, इस वृत्तका मूल आदिजड़ ऊपर है शाखा तले हैं, यह उलटा वृत्तरूप है, जब यह मनुष्य माता के गर्भ में होता है तब सिर तले होता है।

यह शिर इस मनुष्यरूपी वृक्ष की जड़ है, चरण हाथ इसकी शाखें हैं। जब गर्भ से बाहर निकलता है, तब उलटा हो चलता है इस से उलटा वृक्ष है। अर्जुन! इसको विनाशी हुआ भी कहते हैं, और अविनाशी भी कहते हैं, इसका अर्थ सुन। आत्मा अविनाशी है और देह विनाशी है इसी से विनाशी कहते हैं और वेद इस वृक्ष के पत्र हैं, इस वृक्ष को पहिचाने सो वेद का पंडित पूर्ण कहावे है, और यह वृक्ष ऊपर ब्रह्मा के लोक और तले शेषनाग के लोक तक पधार रहा है। और सात्विक राजस तामस यह तीनों गुण इस वृक्ष के डाल हैं। देखना, सुनना, सूंघना, खाना

पहिरना इस बृक्ष को गुच्छे लगे हैं, और इस बृक्ष की भूमि कौन है। जिस पर बृक्ष गला है! सो सुन हे अर्जुन! मैं और मेरी चैतन्यता इस पृथ्वी पर यह बृक्ष लगा है; जो यह मैं हूं; यह मेरा है; यह मेरी जात है; यह मेरा नाम है; तिस पर यह बृक्ष लगा है। पवन साथ गिरने के भय से इसको जेवड़े कौन वंधे हैं। पवण झखड़ कौन है; जेवड़े तो ऋण सम्बन्धि कुटम्ब के लोग हैं; सो इन साथ बृक्ष बांधा हुआ है और इस वृक्ष को जान नहीं सकते। क्यों जोइसका आदिअन्त किसीके कहे कहाए पाया नहीं जाता मैं मेरीकी चेतन्यता पर दृढ़ लगा है; झखड़ यहहै; जहां मेरे

संत मेरी महिमा को गावते सुनते पढ़ते गीता भागवद् इत्यादि इस असङ्ग करके संसार वृक्ष देह के जीवों का कुछ नहीं रहिता। हे अर्जुन! इस मायारूप वृक्ष पर यह जीव फंसा हुआ है इस वृक्ष के काटने का उपाय सुन। प्रथम कुटुम्ब के लोकों का संग त्यागये यह असंग एक शस्त्र हुआ ? इसका पकड़ना इन हाथों से जो परम पुरुषार्थ कर दृढ़ निश्चय करना यह हाथ हुए असंगता रूपी खड्ग पुरुषार्थ रूपी हाथों में पकड़ा जब असंग हुए तिससे पीछे तिस परम पुरुष के मार्ग पर सावधान होकर चले सो कौन जिसको पाकर फिर संसार के जन्म

दुःखरूप से तिस अपने ज्ञानी भक्त को मुक्ति करता हूं और अपने अविनाशी पदमें प्राप्त करता हूं। कैसा है? अविनाशीपद जहां सूर्य चंद्रकी भी गम्यता नहीं जहां से जाकर फिर नहीं आवे है;सो ऐसा परमानंद अविनाशी घर मेरा है यह आदि पुरुष और अविनाशीपद में जो प्राप्तहुए हैं;तिनका वृत्तांत मैं कहा है। अब अर्जुन और सुन यह जो सर्व लोकों में जीव भूत है सो मेरा अंश है और यह सना-तन पुरातन है पांच इन्द्रियां छठा मन यह छैः ही इस जीव को अपने २ गुणों की ओर खैंचते हैं। अब शरीर का त्यागना और शरीर का लेना क्या है सो सुन। इस देह

का ईश्वर जो जीव है सो जीव देहको जब त्यागता है, तब जीव को उलंघ है जैसे एक चरण टिकाया दूसरा उठाए आगे रखा फिर पिछला चरण उठाए आगे रखा जब आगे ठौर पाई जाती है, तब पिछला चरण उठाए आगे रखता है तैसे ही हे अर्जुन। देहका त्यागना और देह को लेना इस जीव को उलांघ मात्र है जैसी वाश्ना को लिये देह को त्यागे सोई वाश्ना साथ लिये जाती है। कैसे जिस तरह पवन किसी वस्तु को छुहे कर चलती है तैसे वाश्ना आवती है तैसे जिस वाश्ना को लिये शरीरका त्याग होवे तिसी वाश्नाको लिये जाती है। नेत्र श्रोत्र स्पर्शत्वचा,

जिह्वा,नासिका यह पांचों इंद्रियां इनका अधिकारी छटवां मन इनके साथ मिलकर यह जीव विषयों को मांगता है खाता, पीता, चलता बैठता और जो कार्य किरत करता हैं सो सब जीव करे, है। इन्द्रियां और मन के साथ रला मिला करे हैं पर यह कौतुक मूढ़ जो प्राणी हैं तिनको नहीं दीखता जो प्राणी ज्ञान नेत्रों से संयुक्त है सो इस कौतक का देखते हैं सो ज्ञान नेत्र किसप्रकार होते हैं। हे अर्जुन! जब मेरे स्मर्ण ध्यान योग साथ जुड़े हैं, तब स्मरण कर ज्ञान उपजे है तिन योनियों में भी कोई एक जो मेरे स्मरण साथ पवित्रहुआ है तिसको ज्ञान उपजे है तिसज्ञानके उपजने

सेमेरीरिचनाकाकौतुक देखता है, क्याकौतुक देखता ? यह सूर्य जो अपने प्रकाश कर सर्वलोकोंका अन्धकार दूरकरहै, तिससूर्य मे तेज प्रभुका जानों,ऐसे ही चंद्रमा विषे तेज जो है,सो भी प्रभुका जानो,पृथ्वी जो सर्व जड़ है चेतन्य स्थावर जंगम को धार कर भूत प्राणीयों को अपने पर खड़ी हो रही है सो तिस पृथ्वी के तले बल प्रभुका जानों तिस प्रभुके आसरे है और जितने मनुष्यों के अंश हैं । अन्न,घास,तृण, वृक्ष इन सबको चंद्रमा की किरणों साथ इन मे रसे जो हैं; स्वाद सो स्वाद मैं ही मेलता हूं और आपहीसर्व भूत प्राणियों केहृदय विषे अग्नि होकर व्यापता हूं । प्राणवायु ऊपर

कीअपान वायु तलेकी यह उदर में और अग्नी और प्राण वायु साथ जो प्राणी चार प्रकार भोजन करते हैं; तिस अन्नको मैं ही पचाता हूं। चार प्रकार का अन्न सुन। लेहजः पेहजः भक्षःभोज्य यह चार प्रकार के अन्न हैं। जो अग्नि कर रध्या पकाया जाय भुन्यां जाय सो भक्त कहिये और जो कच्चा अन्न है चावल चने मोठइत्यादि जो कच्चा अन्न खाइये सो अन्न भोज्य कहावे है। और ककड़ी खरबूजाः हदवानाः गन्नाः अंब इत्यादिक लेहज कहिये है। दूधः देहीः छाछः शर्बतः पानी यह पेहज कहिये है। यह चार प्रकार के अन्न हैं और सबके हृदय विषे मैं

ही विराजता हूं। सबके हृदय विषे बैठके ज्ञान दे के मनुष्य
से भले कर्म मैं ही करता हूं अज्ञान देकर अपकर्म पाप
मैं ही करता हूं; सब वेदों में पहिचानने योग मैं ही हूं;
वेदों के जानने हारा भी मैं हूं; वेदों का अंत क्या जितनी
वेदों की मित है सो अपनी मित से स्तुती करते हैं। जब
महिमा करते वेद की मित रह जाती है तब वेद नेत नेत
कहते हैं जो तुम्हारी महिमा के जानने को मैं समर्थ
नहीं इस कारण से वेदों का अन्त करने हारा मैं हूं; अब
अर्जुन और सुन। यह जो देह धारिहों का पसारा है सो
सभी पसारा दोनों पुरुषों का है। एक पुरुष बिनस जाता

है;दूसरा अविनाशी रहता है; तिन दोनों का वृत्तांत सुन यह जो बहुत तत्वों का शरीर पुरुष है सो बिनस जाता है दूसरा जीव पुरुष है सो अविनाशी है; यह इन दोनों का विस्तार है फिर इन दोनों से तीसरा पुरुष उत्तम है। जिसे परमात्मा कहते हैं;तिसकामहात्म प्रताप सुन जिस आत्मा के नेत्र उघड़ने से ब्रह्मासे आदि चींटीपर्यंत भूत प्राणियों की पालना होती है, फिर उसी के यह स्थम्भ धारे हुए हैं और जब तिस परमात्मा की पलक लगे तब चौदह भवन प्रलय होजाते हैं। ऐसा महा प्रतापी है, इससे तिसको आत्मा कहते हैं तिसको पुरुषोत्तम भी कहते हैं, उसका

अर्थ सुन बिनासिया हुआ जो शरीरसो पुरुषोत्तमसेअतीत है दूसरा जो अविनाशी पुरुष तिससे उत्तम है इसी से लोक वेदों में परमात्मा कहते हैं। हे अर्जुन! सो पुरुषोत्तम पुरुष मैं ही हूं, और जिन भक्तों ने मुझको पुरुषोत्तम पहिचाना है, फिर तिन्हों ने क्या करना है, सर्व सिद्धों में सर्व कालों विषे मेरा ही भजन करे है।हे निःसपाप अर्जुन इस प्रकार शास्त्र वेद द्वारा मुझको पछाने मेरे चरणों साथ दृढ़ निश्चय करे तो निश्चय कृतार्थ होवेगा, मेरे पद को प्राप्त होवेगा। इति श्रीभगवद्गीत सूपनिषद सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद संसार वृक्ष

योगो नाम पंचदशो अध्याय ॥ १५ ॥

* अथ पंद्रवें अध्याय का महातम *

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! अब पंद्रवें अध्याय का महातम सुन। उत्तर देश में एक न्रसिंह नामा राजा था और सुभग नामा मंत्री था राजा को बड़ा भरोसा मंत्री पर था मन में यही जो मंत्री मेरा बहुत भला है और मंत्री के मन में कपट था, मंत्री यही चाहता था जो राजा को मारकर यह राज्य मैं ही करूं। इसी भांत कुछ काल व्यतीत हुआ एक दिन राजा सोया पड़ा था और नौकर चाकर भी सोये पड़े थे। तब वज़ीर ने राजा को सारे नौकरों समेत मार

कर आप राज करने लगा, राज करते बहुत कालव्यतीत हुआ एक दिन वह भी मर गया यमराज के पास बांधकर दूत लेगये धर्मराज ने कहा, हे यमदूतो ! यह बड़ा पापी है इसको बड़े घोर नरक में डालो । हे लक्ष्मी ! इसीप्रकार वह पापी कई नरक भोगता भोगता धर्मराज की आज्ञा से घोड़े की जून में आया संगलद्वीप में जाय घोड़ा भया बड़े घोड़ों के सौदागर ने उसे मोल ले और भी घोड़े खरीद कर अपने देश को लचा । चलते चलते अपने देश में आया तब वहां के राजा ने सुना जो अमुक सौदागर बहुत घोड़े ले आया है । तब राजा ने उसे बुलाया देख

कर घोड़े खरीदे उस घोड़े को भी खरीदा जब उस घोड़े को फेरा तब राजे की तरफ देख कर सिर फेरा राजा ने देखकर कहा, यह क्या कारण है घोड़े ने सिर फेरा है। तब राजा ने पंडित बुलाकर पूछा, जो घोड़ा मोल लेकर फेरा था इस घोड़े ने हमको देखकर सिर फेरा है। इसका क्या कारण तब पंडित ने कहा, हे राजन् इस घोड़े ने तुमको सिर निवाया है राजा ने कहा ये नहीं कई दिन के पीछे राजा शिकार खेलने को गया उसी घोड़े पर स्वारी करके वह घोड़ा जलदी चले राजा शिकार खेलता २ बहुत दूर चला गया आगे राजा शिकार बन्दूक तीर से मार उस दिन हाथों साथ

शिकार पकड़ के मारे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ दुपहिर होगई राजाको तृषा लगी, बन में एक अतीत देखा कुटिया में बैठा है तालाब जल से भरा है वहां राजा जाय उतरा घोड़ा वृक्ष से बांधकर कुटियामें गया देखे तो साधू अपने पुत्र को गीता के पंद्रवें अध्यायका पाठ सिखाए रहा है। वृक्ष के पत्ते पर श्लोक लिखदिया है।बालक को कहा खेलते फिरो और इसको कंठ भी करो, जिस वृक्ष से राजा ने घोड़ा बांधा था उसी वृक्ष के पत्ते पर श्रीगीताजी का श्लोक लिखा था वह बालक पत्ता लेकर खेले भी, पढ़े भी उस पत्ते को घोड़े ने देखा तत्काल उसकी देह छुटी

देवदेही पाई स्वर्ग से विवान आए। तिस पर बैठ बैकुंठ को चला, आकाश में खडा हुआ। इतने में राजा पानी पीकर बाहर आया देखे तो घोड़ा मरा पड़ा है। राजा चिंतावान हुआ कहे, यह घोड़ा किसने मारा? इसे क्या हुआ इतने में वह बोला, हे राजा! तेरे घोड़े का चैतन्य मैं हूं, मैंने अब देवदेही पाई है, बैकुण्ठ को चला हूं। राजा ने पूछा, तुमने कौन पुण्य किया है? उसने कहा, हे राजा! यह बात ऋषिश्वर से पूछ। राजा ने उस ऋषिश्वर को बुला कर पूछा, हे ऋषिश्वरजी! क्या कारण हुआ है। ऋषिश्वर ने कहा, हे राजा! गीता का श्लोक लिखाहुआ पत्ता

इसके आगे पड़ा है, घोडे ने अक्षर देखे हैं,इसकारण घोड़े की गति भई। राजा नें पूछा घोडा पीछे कोन था ? और घोडे के सिरफेरनें की बात भी राजा ने कही। हे ऋषिश्वरजी यह बात मुझे सुनाओ जो मेरा और घोडे का क्या सम्बन्ध हुआ, तब ऋुनिश्वर ने कहा, हे राजा। पिछले जन्म तूं राजा था, यह तेरा वजीर था, यह तुझको मार कर राज आप करता रहा। तूं फिर भी राज़ा हुआ यह मरकर धर्मराज के पास गया धर्मराज ने धूक्कारकर कहा, इस पापी कृतघ्न को खूब नरक भुगाओ बडे नरक भोगता २ घोडे के जन्म में आया, संगलदीप से आकर

तेरे बिका, जब इस ने शिर हिलाया तब यह कहता था, हे राजा ! तूं मुझे पछानता नहीं । परन्तु मैं पछानता हूं, यह कहकर ऋषिजी चुप हुए राजे विस्मय होकर दंडवत करी पीछे से और लश्कर के लोक आए मिले राजा सवार हो अपने घर आया, अपने पुत्र को राज देकर आप बनको गया । तप करने लगा; श्रीगीताजी के पन्द्रवें अध्याय का पाठ किया करे तिसके प्रसाद राजा भी परमगति का अधिकारी हुआ । श्रीनाराण जी कहे हैं । हे लक्ष्मी ! यह पंद्रवें अध्यायका महात्म्य है जो मैंने कहा है तैंने सुना है । इति श्रीपद्मपुराणे सती

ईश्वर संवादे उत्तराखण्डे गीता महात्मों नाम पञ्च-दशमों अध्याय ॥ १५ ॥

अथ सोलवां अध्याय

श्रीभगवानोवाच—हे अर्जुन! अब और सुन, एक मनुष्यों के स्वभाव देवत्यों जैसे होते हैं कईयों के दैत्यों के स्वभाव होते हैं। प्रथम जिनमें देवत्यों के स्वभाव हैं, तिनकी बात सुन। पहिले निर्भय किसी का डर ना होना अन्तःकरण जो हृदय सो निर्मल अति शुद्ध और मेरे जानने का ज्ञान तिन के मन में मेरे स्मरण योग साथ जुडे हुए यथा-शक्ति दान करना, इन्द्रियां जीतना, यज्ञ करने और

मेरी महिमा जो वेदों में गाई है । तिसको सुनना, पढ़ना सहस्त्रशीर्षा पढ़ना पुराणों के स्तोत्र पढ़ना, कीर्तन करना, तपस्या करनी। हे अर्जुन ! तपस्याका महात्म्य सतारवें अध्याय में कहूंगा । अहिंसा करनी अहिंसा क्या जो दया करनी किसी जीव को ना दुखाना हृदय कोमल सत्यबाणी बोलना, झूठ ना कहिना, किसी से क्रोध ना करना; शरीर की रक्षामात्र छादन, भोजन करना । इस से अधिक संचय ना करना, इसका नाम त्यागी है। सदा संतोष में रहना, किसी की निंदा ना करनी, यथाशक्ति सबको सुख देना, निरलोभी लोभ से रहित पाप करने से लज्जा

करनी चंचल स्वभाव से रहित होना, निश्चल आसन इन्द्रियों को निश्चल रखना, मनको भी निश्चल रखना, और तेजस्वी क्या जो तिसकी आविज्ञा कोई ना करसके। सब कोई तिसको नमस्कार करे, जब कोई, दुःखदे जाए सब क्षमावत कोई दुर्वचन कह जाए, कोई दुःख दे जाए, सब सहारे तिसको क्षमावन्त कहिये है। और धैर्य्य एक गोविन्द की शरण। जो कुछ भगवत इच्छा में होए सो भला मानना यह बात समझ कर जो मेरी शरण में सदा संतुष्ट प्रसन्न रहे; इसका नाम धैर्य्य है देह को साधकर पवित्र रखे: स्नान करे अन्तःकरण जो हृदय सो स्वास२

नाम स्मरण कर पवित्र रखें किसी को कष्ट ना देवे अपनी पूजा मानता चित कर न करावे किसी का गुरू गुसांई ना बन बैठे। हे अर्जुन। यह लक्षण मनुष्यों में देवदत्तों के कहे हैं। दूसरे असुरों के लक्षण सुन। प्रथम पाखंडी सो क्या लोकों में आपको धर्मात्मा दिखाना मन में पाप चितवने यह पाखंड है। अब अतीत पाखंडियों के लक्षण जो संसार को त्याग कर मेरी शरण आए हैं, सो मेरी शरण आयके फिर मेरे चरणों को छोड़ और बातों की मन में चितवना करे हैं क्या यह वांछा जो मुझ जैसा और कोई नहीं क्रोधी कठोर बोलना। हे पार्थ। यह अतित

पखंडी होते हैं। हे अर्जुन! दो प्रकार की प्रकृति दैत्यों की होती हैं इन की उत्पत्ति अज्ञान में है, इन दोनों प्रकृति का फल सुन जिन मनुष्यों में देवता की प्रकृति है, सो प्राणी संसार से मुक्त होते हैं जिन विषे दैत्यों की प्रकृति है सो प्राणी संसार के जन्म मरण के बंधन में पड़े रहते हैं। जब यह बचन श्रीभगवानजी के मुख से श्रवण किये तब अर्जुन अपने मन में विचारने लगा। हे मन! दैत्यों का स्वभाव तेरे में कोई हो। इसको देखकर श्रीकृष्णजी सहना सकें कवलनैन केशवजी तत्काल बोले, हे अर्जुन! तूं यह मत सोच तूं देवतों की प्रकृति साथही ले जन्मिया है। जन्म

के साथही देवतोंकी प्रकृति तेरे में आई है। हे अर्जुन यह स्वभाव इन मनुष्यों में वरते हैं देवताओं के स्वभाव विस्तार से कहे हैं दैत्यों के स्वभाव थोड़े कहे हैं सो कुछ थोड़े और भी सुन। हे अर्जुन! दैत्यों के स्वभाव वाले मनुष्य ना तो गृहस्थ में सुखी रहते हैं, ना अतीत होकर सुखी होते हैं, अतीत होयकर मार्ग जानते नहीं जो कैसे अतीत होते हैं,ना पवित्रता को जानते है,जो कैसे स्नान कर पवित्र होता है, और मैं जो सत स्वरूप हूं, तिसको भी नहीं देख सक्के आपस में मिलते हैं तो यह कहते हैं कि परमेश्वर कहां है? किसी ने देखा है? परमेश्वर है

नहीं संसार का कर्त्ता कोई नहीं है और न संसार का कोई ईश्वर है,हम आपही आप उत्पन्न हुए हैं,हमही परमेश्वर हैं, सो प्राणी मुर्ख अंधमत आपही को परमेश्वर कहते हैं, और सब बातों में से यह भली बात समझ रखी है जो उत्तम स्वादिष्ट भोजन भोग भोगिये और अच्छे २ सुगंध वाले रंगीन वस्त्र पेहरिये, सुंदर स्त्रियों साथ सुख भोगिये इन बातों को परम सुखरूप समझ रखा है । इनको लाभ समझने से अत्यंत बुद्धि तिनकी हुई । शुद्ध आत्मा तिनका नष्ट हुआ और थोड़ी मत जिनकी है सो ऐसे कार्य आरम्भ करते हैं । जिस करके आप

भी कष्ट पाते हैं और औरों को भी कष्ट देते हैं। ऐसे कर्मों का तो आरम्भ करते हैं और दुस्तरे जो कभी तरिया ना जाय ऐसा जो कर्म तिसका आसरा पकड़ रखा है पाखंड गर्व मद अंधताकर अंधे हुए है सो तिस अंधेरे साथ उन्नमत मतवारे होरहे हैं। माया के मोहे हुए मिथ्या वस्तु को पकड़ रहे हैं अति अपवित्रता स्वभाव को वरतते हैं। जबतक संसार की प्रलय नहीं तबतक नित्य ही चिन्ता में मग्न रहते हैं काम स्वार्थ का परमलाभ काम की दृढ़ता में दृढ़ आशा अंदेशा कर बंधे हुए काम क्रोध में मग्न हैं। जिनका चित्त निष्फल कर्म कर द्रव्य

एकत्र करते हैं छल वंच झूठ इन करके अपने आप को नाश करते हैं। जब कपट करके द्रव्य इकट्ठा करते हैं, इसको बड़ा लाभ जानते हैं। यह मेरा मनोर्थ पूरा हुआ है, यह सवेरे मैं पाऊंगा यह अगले दिन पाऊंगा शत्रुओंके मारने को सामर्थ हूं, वैरी को जीत जानता हूं, सिद्ध बलवान हूं, सुखी हूं, सत पुरुष हूं, भोगी हूं, सात पीढ़ियों से धन पात्र हूं, पुरातन शाहूकार हूं, मेरे तुल्य दूसरा कोई नहीं। मैं ही सब से सार हूं, कर्म करतूत का कर्त्ता हूं और सब मेरे दास हैं। अज्ञान मोह कर बहुत चितवना, विषयों में ग-लतान है। हे अर्जुन। अनेक प्रकार के विषयों में तिनका मन

पड़ा भरमता है, मोह के जाल में फसे हुए काम के भोगों कर पकड़े हुए उनकी दशा कैसी है यहां भी नरक आगे भी नर्क में पड़ेंगे। और यज्ञ महोत्सव श्राद्ध क्षय यह कार्य तिनके जैसे हैं, सो सुन प्रमथ तो हंकार करते हैं। यह यज्ञ मैं किया है, हंकारी है, किसी को सिर नहीं निवाते धन के गर्भ कर मतवारे हुए रहते हैं, लोगों से भला कहाने के निमित्त यह श्राद्ध क्षय करते हैं। उस प्रकार नहीं करते फिर हंकार बल गर्भ काम क्रोध इन सब से भरे हुए हैं और मैं जो आत्माराम सब देहों में व्यापता हूं तिसको नहीं जानते जो दैत्य बुद्धि मनुष्य हैं किसी देहधारी को

दुःख देते हैं, किसी की निन्दा करते हैं इत्यादि जो कठोर मनुष्य हैं अधम नीच पापी तिनके लक्षण कहे हैं। अब अर्जुन मेरी बात सुन। तिनके साथ कैसा हूं, तिनको दुःखदायक जो योनी गधे की जिस कर दुःखी हो कला क्लेश अज्ञान साथ भरी हुई असुरी योनी कुत्ते की इत्यादिक और योनी असुरी तिनमें उनको डालता हूं, बारम्बार ऐसी कुचील योनी में तिनको भरमाता हूं, हे कुन्तीनन्दन! जिन्होंने मुझे नहीं पाया सो प्राणी बारम्बार इन कुचील योनी विषे भरमते फिरते हैं। हे अर्जुन! जो नरक कहते हैं तिनके तीन द्वारे हैं, इस आत्माकानाश

करनेहारे हैं।काम,क्रोध लोभ यह तीनदरवाजे नरकके हैं हे सखे। प्रीतम इनका त्यागकर जो इन तीनोंसे मुक्त हैं तिन् प्राणियों ने अपने आत्माकी कल्याणकी और सो मनुष्य परमगतिको प्राप्त होवेगा। हे अर्जुन! जो शास्त्रकी मतको त्यागकर अपने मनकी मत पर चलते हैं और यज्ञ आदि महोत्सव कार्य को करते हैं तपस्या आदि करते हैं,शास्त्र विधिको त्याग के दान करते हैं, सो मनुष्य किसी कर्म किये का फलनहीं पावेंगे और ना किसी प्रकार का तिनको सुख, होवेगा और किसी समय भी परमगति को नहीं पावेंगे इसी से हे अर्जुन! जो मल,पुरुषों केनिर्मल आत्माहैं जोकुछ

यज्ञ, तप, दान करते हैं। शास्त्रविधि से करते हैं,सो प्राणी मेरी कृपा से मेरी परमगति को पावेंगे। इति श्रीमगवद् गीतासुपनिषद्सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे देव-आसुरी संपता विभाग योगो नाम षोड़सो अध्याय ॥ १६ ॥

* अथ सोलवे अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी ! सोलवें अध्याय का महात्म्य सुन। एक सोरठ देश है, तिसके राजे का नाम खड्गबाहु था। बड़ा धर्मात्मा था। तिसके राज में घर २ ठाकुर मंदिर थे। वहां बडे२ यज्ञ हुआ करते थे,तिनघरों

में स्वर्ण के थंभे जड़ाऊ जुड़े हुए थे। राजा बड़ा हरिभक्त संतसेवी था तिसकी प्रजा भी अति सुखी.राजा भी दयावान् सर्व जीवों पर दया करता था। तिसके घर में बहुत हाथी, घोड़े, धन भी था। उन हाथियों में एक हाथी बड़ा मस्त था, तिसकी घूममची रहे महावतों को नेड़े ना आने देवे,जो महावत तिस पर चढ़े तिसको मार डाले। हाथी के पांव में जंजीर डारे रहें, तिसके खेद से राजा ने और देशों से महावत बुलायकर कहा, कोई ऐसा होए इस हाथी को पकड़े, उसे बहुत धन दूंगा।हे लक्ष्मी।उस हाथी को किसीने नहीं पकड़ा नजदीक कोई नहीं जाय सके

और राजा के मंदिर आगे हाथी वह खड़ा रहे । जिधर जावे लोकों को बड़ा दुःख देवे, जो कोई उसके आगे आवे तुरंत मारडाले; बन में जाए तो बनके पशु पक्षियों को मारे, नगर में लोकों को मारे, जहां रहे बड़ा दुःख ही करे, बड़ा उपद्रव करे, राजा सुनकर बड़ा चिन्तावान रहे, कई उपाय करके राजा थक गया । हाथी वस आवे नहीं, राजा को बड़ी चिन्ता लग रही, एक दिन हाथी नगर में चला गया । सामने से एक साधू चला आवे, लोकों ने उस साधू को कहा, हे संतजी । यह हाथी तुमको मार डालेगा । संतने कहा, देखो तुम श्रीनाराणजी की कैसी शक्ति है । हाथी

की क्या शक्ति है, जो मुझे मारे; मेरे नजदीक नहीं आय सकता। नगरवासियों ने कहा, वह पशु है, तेरे भजनबल को क्या जाने, नारायण कौनवस्तु है? यह तुम्हें मारेगा। ब्राह्मण ने कहा, हाथी क्यों मारेगा? मैं परमेश्वरका प्यारा हूं हरिभक्त हूं, जो परमेश्वर से बेमुख हैं तिनको मारता है, और यह भी मेरा एकज्ञान है कि जो मेरी मृत्यु इसी से है तो अवश्य मरूंगा। बिना आई से कोई नहीं मरता इतने में हाथी आय पहुंचा। साधू ने नेत्र पसार के देखा, हाथीने सूंड के साथ साधू को चरणवंदना की? और खड़ा रहा। तब साधू ने कहा, हे गजेन्द्र! मैं तुझे जानता हूं, तूं

पिछले जन्म पापी था,मैं तेरा उद्धार करूंगा,चिंता मतकर हाथी बारंबार चरण छुहे, माथा निवावे, लोगों ने देखकर राजा को खबर की,राजा भी वहां आये,देख तो हाथी साधू आगे खड़ा है। तब साधू ने कहा, अरे गजेन्द्र तूं आगे आ हाथी आगेहो चरणबंदना की। उस संत गीता पाठी ने करमंडल से जल लेकर मुख से कहा,गीता के सो लहवें अध्याय का फल इस हाथी को दिया। इतना कह जल छिड़का जल के छिड़कने से हाथी की देहीछोड़ देवदेही पाई। बिवान पर चढ़ राजा के सन्मुख होकर कहा,हे राजा! मैं तुझको धर्मज्ञजान तेरे नगर में रहिता था, जो कभी कोई

संत यहां आवेगा तब मेरी गति करेगा, इस संत के प्रताप से मेरी सद्गती हुई। यह कहे वैकुंठ को गया। राजाने संत को डंडवत प्रणाम की और कहा, संतजी आपने कौन मंत्र कहा, जिसकर यह अधम दुःखदायक को सद्गती प्राप्त हुई। संतने कहा, मैं गीता के सोलहवें अध्याय के पाठका फल दिया है नित्यही मैं पाठ करता हूं। राजा ने पूछा, हाथी पिछले जन्म कौन था। साधूने कहा, हे राजा ! यह पिछले जन्म एक अतीत का बालक था, गुरू ने बहुत विद्या पढ़ाई, बड़ा पंडित हुआ, वह अतीत तीर्थ यात्रा को गया पीछे उसकी शोभा बहुत हुई अच्छे २ सत्संगी उसके दर्शन

को आते बारा वर्ष पीछे गुरूजी आए वह अतीत नम्र थे। यह बड़ी समाज में बैठा था, मन में सोचा अब इनके आदर को उठता हूं, तो मेरी शोभा घटेगी, यह सोचकर नेत्र बंद कर चुप होरहा, गुरूजी ने देखा मुझे देखकर इसने नेत्र बंद किये हैं। ऐसा देखकर श्राप दिया कहा, रे मन्दमत? तूं अन्ध हुआ है! मुझे देखकर शिर भी नहीं नवाया और ना उठकर डंडवत की है तैने अपनी प्रभता का अभिमान किया है, जो हाथी जून होवेगा। यह सुनकर बोला, हे संतजी! आप का बचन सत्य होगा कहा मेरा उद्धार कैसे होगा। गुरु को दया आई कहा जो गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ

का फल संकल्प तुझे देगा। तब तेरा उद्धार होवेगा,यह सुन कर राजा ने भी पाठ सीखा और अपने पुत्र को राज देकर आप तप करने लगा,बन में जायकर सोलहवें अध्याय का पाठ नित्य कर,समय पायकर राजा भी सद्गती को प्राप्त हुआ, श्रीनारायणजी कहे हैं। हे लक्ष्मी यह सोलहवें अध्याय का फल है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्मों नाम षोड़सो अध्याय ॥ १६ ॥

* अथ सतारवां अध्याय *

अर्जुनोवाच–अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न

करे हैं, कि हे भगवान् कृपा निधान जी जो पुर्ष अपनी बुद्धिमता कर शास्त्र विधि को समझ नहीं सक्के और जिन्होंने तुम अविनाशी परमानंदको समुद्र ऐसा तुझको पछान कर जो तुम्हारी शरण आय हैं। तुम्हारे भक्त हुये हैं, तुम्हारा स्मरण भजन किया, सो तिन पुरुषों ने शास्त्र की विधि पछानी और हे भगवान! जिस प्राणी ने तुम परमानंद अविनाशी समुद्र को नहीं पछाना तिन पुरुषों ने शास्त्र की विधि नहीं पछानी! हे परमपवित्र पुरुषोत्तम जिन मनुष्यों मन्दभागियों ने शास्त्र की विधि जो तुम्हारा भजन है, तिसको त्यागकर श्रद्धा से किसी

की सेवा पूजा नहीं करते, सो हे कवलनैन कृपा निधान जी ! सो प्राणी राजसी कहें कि तामसी कहिये । यह मेरे प्रती कहो, अर्जुन की बिनती मानकर कवलनैन कृपा निधान श्रीकृष्ण भगवानजी कहते हैं । श्रीभगवानोवाच– हे अर्जुन ! पूजा करने की विधि भी तीन प्रकार की है सो सांत हुवे मनुष्यों को जगा देती है सो श्रद्धा तीन प्रकार की है राजसी सात्त्वकी तामसी सो इनको भिन्न २ मैं कहता हूं । सो हे अर्जुन जिन की सात्त्वकी प्रकृति है तिनका निश्चय तो यह है ! एक ही भगवान सर्वव्यापी जान कर सब के साथ श्रद्धा राखते सब के सुहृद मित्र होए

वरते हैं यह तो सात्वक्की पुरुष हैं। आगे तिन की प्रकृति सुन देवता की पुजा में तिनकी श्रद्धा लगी रहिती है और राजसी प्रकृति सुन यत्तों में रात्तसों की पूजा में तिनका मन लगे है और तामसी प्रकृति सुन। प्रेत भूतगुण इत्यादिक जो तामसी जुन है तिन में लगे हैं जो इस प्रकार तपस्या करते हैं सो असुर दैत्यों की तपस्या है,जो शास्त्र में कही नहीं जिसके देखने से डर आता है ऐसे जो तपस्वी तप करते हैं लोगों को दिखाने के निमित्त जो देख कर कहे कि यह बड़ा तपस्वी है। मन में फल की कामना करते हैं। जिस तप को करते,शरीर को भी कष्ट

होवे तिस तप के फल की कामना करते हैं । हे अर्जुन ! तिनकी देह में भी मैं आत्माराम व्यापी हूं, तो मुझ को दुःख देते हैं ऐसे जो अधमत अज्ञानी तप करते हैं, तिन को तूं दैत्य तपस्वी जान, यह तप दैत्यों का है हे अर्जुन ! अब आहार के भेद सुन । आहार भी तीन प्रकार के हैं, यज्ञ भी तीन प्रकार के हैं, तपस्या भी तीन प्रकार की है, और दान भी तीन प्रकार के हैं,इन के भेदाभिन्न २ सुन । पहिले शांतकी आहार सुन जिसके खाने से आयु बहुत होती है आयु बढ़ने हारे भोजन अमृत देवताओं को मिलता है, जिसके पान करने से देवता अमर

होजाते हैं, मनुष्यों का आहार सुन। जिसके खाने से देह में बल पुरुषार्थ हो, अरोग्यता हो, जिसके खाने से मन में प्रीति उपजे कि भला भोजन खाईये और जो रस, स्वाद तिस से भरा हुआ घृता साथ स्निग्ध दाल चावल, कोमल फुलके घृत से चोपड़े नर्म यह आहार शांतकी कहावे है। मनुष्यों का प्यारा है, अब राजसी आहार सुन। मिठा, खट्टा, सलूना अति तत्ता जिसके खाने से मुख जले और रोग उपजे, दुःख देवे, ऐसे बुरे फल जिसके खाने से होते हैं। यह आहार राजसी मनुष्यों का प्यारा है। अब तामसी सुन जिस आहार के बनाने में

रात्री व्यतीत होगई हो। रात्री का बासी और स्वाद भी जिससे मिटगया हो, दुर्गन्ध आतीहोय और किसी का जूठा यह भोजन तामसी कहाता है। तामसी मनुश्यों का प्यारा है। अब तीन प्रकार के यज्ञ सुन। पहिले सात्वकी यज्ञ सुन तिस यज्ञ में फल पावने की कामना नहीं है। जैसे शास्त्र में विधि लिखी है सो करनी चाहिये और यज्ञ कर्त्ता कहे कि मुझको यज्ञ करना योग्य है, सो इस प्रकार सावधान होकर यज्ञ करे सो यज्ञ सात्वकी कहता है। अब राजसी यज्ञ सुन। जिस यज्ञ के करने में फल की वांछा नहीं है। केवल लोगों के भला २ कहाने के नि-

मित्त यज्ञ करता है हे अर्जुन ! ऐसे यज्ञ को तूं राजसी जान । अब तामसी यज्ञ सुन जिस यज्ञ में शास्त्र की विधि नहीं,मन भी पवित्र ना हो, वेद के मंत्र भी ना पढ़ै साधू ब्राह्मणों को यज्ञ के पीछे दक्षिणा ना दे, ऐसे यज्ञ करने में यज्ञ कर्त्ता को श्रद्धा भी ना होय हे अर्जुन ! ऐसे यज्ञ को तामसी जान । और तीन प्रकार का तप सुन । एक देह करके, दूसरा मन करके तीसरा वचन करके, यह तीन प्रकार का तप है । प्रथम देह का तप सुन । जहां कोई छोटा जीव हो तिसको देख कर पैर धरना, किसी जीव को खेद ना पहुंचे यह चरणों का तप हाथों कर स्था-

वरं जंगम जीव को दुखावे नहीं, यह हाथों का तप है देह ही को जल मृत्तिका साथ स्वच्छ रखे, दातन कर स्नान करे आचमन कर, तिलक कर शालिग्राम की पूजन करे और जो बुद्धिमान आप से अधिक हो परमेश्वर का रास्ता बतावे उसकी पूजा करनी, ब्रह्मचर्य रखना ब्रह्मचर्य क्या सो सुन। हे अर्जुन ! जो गृहस्थी हो तो पराई स्त्री को छूहे नहीं। जो विरक्त होए वैरागी तो स्त्री का नाम भी ना लेवे, मनकर चितवे भी नहीं, यह ब्रह्मचर्य कहावे है माता पिता की सेवा करे। इस प्रकार शरीर का तप करना उचित है, अब चरणों का तप सुन प्रथम तो सत्य

बोलना कैसा सत्य, जिस सत्य बोलने से सुनने वाले को दुःख ना होवे मीठी वाणी बोले मधुर स्वर से जिस किसी को बुलावे भाईजी संतजी भक्तजी प्रभुजी मित्रजी जिस वचन को सुनने वाला प्रसन्न हो। ऐसा वचन बोले और जो कोई पुरुष बुलाए से यूं कहे हां जी भाई जी इस प्रकार वचन तपस्या है, और वचन तप सुन वेद माता जो गायत्री पढ़, वेद पाठ करे। सहस्रशीर्षा, पुराणों के स्तोत्र पढ़ने और कथा में जो मेरी लीला अवतारों के चरित्र पढ़ कीर्तन विश्नपदे गावने इस प्रकार वचन तप करे। हे अर्जुन! मन का तप सुन पहिले मुख तप मनको

प्रसन्न रखे। मेरी जो प्रीति अमृतरूप है, सो मन की
प्रीति मेरे मैं लगावे और चितवना से मन को वरजे, मन
का निश्चल चेता मेरे मैं लगावे, और मन को शुद्धकर
मेरे मैं भाव जो श्रद्धा सो लगावे, प्रीति करे, मेरे साथ यह
मनकी तपस्या कहिये है। अब स्वासों की तपस्या सुन,
स्वास २ मेरा स्मरण करना। हरे, राम कृष्ण इत्यादिक मेरे
नामों का जाप करना सहस्र नाम शत नाम पढ़ने यह स्वासों
का तप है। अब इस तपस्या के तीन प्रकार के भेद सुन।
यह जो देह मन वचन स्वासों कर तप करना मैने कहा है
सो करे प्राणी परमश्रद्धा से सो मुझ को आए मिलता

है और प्रीत से तपस्या करे और फल कुछ वाछे नहीं, मुझ ईश्वर अविनाशी में समर्पण करे सो सात्त्वकी तप कहावे है। और जो लोगों में भला कहावने के निमित्त तप करे। और अपनी पूजा प्रतिष्ठा करावे, अपनी मानता करावे सो पाखंडी; तपसी; राजसी तपस्या कहावे है। यह तपस्या निश्चल नहीं चलायेवान है। स्थिर नहीं. अब तामसी तपस्या सुन। जो अज्ञान को लिये हुए तप करे और जिस तप करें से शरीर को कष्ट प्राप्ति होए: और किसी को बुरा करने के निमित्त तप करे सो तामसी तपस्या कहावे है। अब तीन प्रकार का दान सुन। प्रथम सात्वकी दान सुन जो इस

प्रकार दान करे यह दान अवश्य करना; मुझको योग्य है। सो कैसे करे उत्तम ब्राह्मण गृहस्थी को दान देना। जिससे कुछ संसार कामना का उपकार ना हो; किसी सम्बन्धी सके का ब्राह्मण ना हो, और अति पवित्र पृथ्वी हो गो के गोबर साथ लिपी है और समान एकसा हो प्रातःकाल का समय हो; आप भी स्नान करके पवित्र हो, ब्राह्मण भी पवित्र सुकर्मी हो, तिसको दान देवे इस विधिसे सात्वकी दान कहाता है। अब राजसी दान सुन तिस ब्राह्मण को दान देना जिस से अपना कुछ उपकार ना हो तिसको दान दे तिस दानके करने से फल की वाछा करना यह

दान राजसी कहाता है। तामसी दान यह, ठौर भी पवित्र नहीं; समय भी ऐसा हो, आप भोजन पायकर दान करे, ब्राह्मण भी ऐसा हो या किसी और जाति मलेछ आदिक को दान देव क्रोधसाथ या गाली देकर दुर्वचन करदान देना यह तामसी दान कहाता है। हे अर्जुन! जिसको पारब्रह्म कहते हैं सो कौन पारब्रह्म जिसके रजोगुण से ब्रह्मा प्रकट हुआ संसार के उत्पाति करने को जिसके सात्विक गुण से संसार की पालना कर्त्ता विष्णु प्रकट हुआ, और जिसके तमोगुण से संसार के संघारने को महादेव प्रगट हुआ है। ऐसा जो पारब्रह्म है, तिसने यह ब्राह्मण भी प्रगट किये हैं इसीने

वेद प्रगट किये हैं,इसी ने यह यज्ञ बनाए हैं। हे अर्जुन ! उस पारब्रह्म की जो आज्ञा है इस करके वेदों के वक्ता ब्राह्मण ही हैं वेदों की विधि को समझ कर। यज्ञ, दान, तपस्या स्नान और भी पवित्र कर्म इत्यादिक जो हैं। सब वेदों को समझ कर करते हैं, अब इन यज्ञ, दान तपस्या का फल सुन जो प्राणी इसका फल नहीं मांगते, केवल मुक्ति की वांछा है सो प्राणी मुक्ति को पावेंगे, अब जो प्राणी किसी कामना के लिये शुभ कर्म करते हैं सो प्राणी कामना को पावेंगे। हे अर्जुन ! जो मेरा भक्त प्रीति साथ पत्र फल पुष्प जो कुछ मुझ को समर्पण करे सो मैं अंगीकार करता हूं।

प्रकृति प्रकार सो भी सुन! प्रथम तो मुझको सत्य जाने कि यह जो कुछ मैं परमेश्वर को समर्पण करता हूं, सो गोविंदजी अंगीकार करो और आपको यह जाने जो मैं परमेश्वर का भक्त हूं, अपने में और मेरे में भेद न जाने और आपको यह कहे कि मैं मन, वचकर्म कर परमेश्वर का दास हूं। मेरा दास होकर मन, वचकर्म करे जो मुझे समर्पै सो मैं अंगीकार करता हूं। ऐसे भक्त का दिया मुझ को प्राप्त होता हैं और हे अर्जुन! जो कोई श्रद्धा से रहित होकर जो कुछ पदार्थ अग्नि में होम करे, दान करे तप करे और जो सत्य कर्म करे श्रद्धा के बिना मेरे निमित्त

तिनको मैं अंगीकार नहीं करता। और जो कोई अपने पितरों के निमित्त दान करता है उसको वह भी अंगीकार नहीं करते। श्रद्धा प्रीति से रहित होकर दिया हुआ दान किनको प्राप्ति होता है सो सुन। सो फल भूतों की देह धारकर भोगना पड़ता है भूत प्रेत वह फल को मांगते हैं मुझ को नहीं प्राप्ति होता। और मैं भी उसको नहीं ग्रहण करता हूं इति श्री भगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे त्रिविध श्रद्धा योग विभागोनाम सप्त दसमों अध्याय ॥ १७ ॥

* अथ सतारवें अध्याय का महात्म *

श्री भगवानोवाच—हे लक्ष्मी ! अब सतारवें अध्याय का महात्म सुन। एक मंडलीकनाम देश में दुसासन नाम राजा था। एक राजा किजी और देशका था तिन्होंने आपस में शरत बांधी हाथी लड़ायं और कहा जिसका हाथी जीते सो यह अमुक धन लेवे। तब दूसरे राजे का हाथी जीता दुसासन का हाथी हारा। कोई दिन पीछे हाथी मर गया राजा को बड़ी चिन्ता हुई। एक द्रव्य गया दूसरा हाथी मरा, तीसरे लोगों की हासी हुई। इससे निन्दा चली इसी चिन्ता में राजा भी मर गया, जमदूत पकड़ कर धर्मराज के पास लेगये धर्मराज ने हुकम दिया। यह हाथी

के मोह कर मर गया है, इसको हाथी की योनी दो । हे लक्ष्मी ! राजा दुसासन संगलदीप में जायकर हाथी हुआ वहां उस राजे के बहुत हाथी थे । तिनमें आया और पिछले जन्म की ख़बर थी । मन में बारम्बार यही पछतावे के मैं पिछले जन्म राजा था, अब हाथी हुआ हूं । बहुत रुदन करे खावे पीवे कुछ नहीं इतने में एक साधू आया तिसने राजा को एक श्लोक सुनाया । राजा बड़ा प्रसन्न हुआ कहा, हे पंडितजी ! कुछ मांगो उसने कहा और मेरे पास सब कुछ है, एक हाथी नहीं राजा ने सुनकर वही हाथी । दिया, ब्राह्मण अपने घर ले आया, दोनो रातबरात

को दिया; वह खावे नहीं। पानी भी नहीं पिया, रुदन करे मनमें चितवे कोई ऐसा होवे जो मुझे इस योनि से छुड़ावे। तब उस ब्राह्मण ने महावत को बुलाया पूछा कि इस हाथी को क्या दुःख है; खाता पीता कुछ नहीं। महावत ने देखकर कहा इसको दुःख कुछ नहीं तब ब्राह्मण ने राजा को कहा हाथी खाता पीता कुछ नहीं खड़ा रुदन करता है। यह सुनकर राजा आप देखने को आया राजा ने भले २ वैद्य बुलाए और महावत सदवाए सबको हाथी दिखाया उन्होंने देखकर कहा, राजाजी इसको मानसी कोई दुःख है। देह कर कोई दुःख नहीं। मनकर दुःख है, तब राजा ने

कहा हाथी तुही बोलके कहो, तुझे क्या दुःख है। परमेश्वर की शक्ति से मनुष्यों की भाषा में हाथी ने कहा, हे राजा। तूं बड़ा धर्मज्ञ है, यह ब्राह्मण भी बड़ा बुद्धिवान है, इस के घर का अन्न सो खावे जो बड़ा धर्मात्मा हो मुझको कब मिले तब ब्राह्मण ने कहा। हे राजा! अपना हाथी फेर ले। राजे ने कहा, दान किया मैं नहीं फेरता। यह हाथी मरे चाहे जीवे, तब हाथी ने कहा संतजी तूं मत कल्प तेरे घर में कोई गीता की पोथी है तो मुझे गीता के सतारवें अ-ध्याय का पाठ सुनाओ। तब उस ब्राह्मणने ऐसे किया। हे लक्ष्मी! सतारवें अध्याय के सुनते ही तत्काल हाथी की

देह छुटी आकाश से बिवान आए देव देही पाय कर बि-वानों पर चढ़के राजा के सामने आन खड़ा हुआ राजा की स्तुति करी। हे राजा! तुं धन्य हैं। तेरी कृपा से मैं इस अधम देह से छुटा हूं, राजा को आपनी पिछली कथा सुनाई। हे राजा! मैं पिछले जन्म राजा था। हाथी मैंने लड़ाये थे मेरा हाथी हार गया, मैं उसी चिन्ता में मर गया धर्मराज के हुक्म से मैं हाथी का जन्म पाया। मैंने प्रार्थना करी थी मेरा छुटकारा भी कहो कब होवेगा धर्मराज ने कहा गीता के सतारवें अध्याय के सुनने से तेरी मुक्ति होवेगी। सो तेरी और पंडितजी की कृपा हुई है, मैं वैकुंठ

को जाता हूं। देव देही पाय कर बैकुंठ को गया। राजा आपने घर आया। श्रीनारायणजी कहे हैं। हे लक्ष्मी! यह सतारवें अध्याय का महात्म है जो तैंने सुना है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्रारखंडे गीता महात्मों नाम सप्तदसो अध्याय ॥ १७ ॥

* अथ आठरवां अध्याय *

अर्जुनोवाच—अर्जुन श्रीकृष्णदेवजी से प्रश्न करे है कि हे महांबाहू! ऋषिकेश कृष्ण भगवानजी, हे केसी दैत्य के मारन हारे जी! हे प्रभुजी! मैं तुझ से संन्यास का तत्व जानिया चाहता हू जो संन्यास किसको कहिते

हैं और त्याग का तत्व भी जानिया चाहता हूं । जो त्याग किसको कहते हैं। सो प्रभुजी इन दोनों का उत्तर भिन्न २ कहो जी। अर्जुन की बिनती मान कर श्रीकृष्ण भगवानजी बोलते भये। श्रीभगवानोवाच—हे अर्जुन ! संसार की कामना के सभी कार्य्य कर्म त्याग कर मेरी शरण में आवना ऐसा जो प्राणी ज्ञानी सो संन्यासी कहे हैं। हे अर्जुन! मेरे चरण कमल की शरण में आय कर मेरी भक्ति बिना और किसी वस्तु की कामना ना करनी ऐसा जो चतुर विचक्षण मनुष्य है सो ज्ञानी कहाता है यह तो हम ने अपने मत का संन्यास और त्याग कहा,

है अब अर्जुन शास्त्रों का मत सुन एक शास्त्र तो यह कहते हैं ज्यों बुरे कर्म त्यागिये त्यों भले कर्म भी त्यागिये। क्या भले कर्म का फल सुख और बुरे कर्म का फल दुःख भोगता है। भला कर्म कंचन जो है सोना तिसकी बेड़ी चरणों में है। बुरा कर्म लोहा तिस लोहे की चरणों में बेड़ी है। इसी से भले बुरे कर्म दोनों बंधन के दाता हैं। इसलिये इनका त्याग करना योग्य है। हे अर्जुन एक शास्त्र यह कहाता है जो यज्ञ दान तपस्या स्नान इन से आदि सत्यकर्म नहीं त्यागने। यह पवित्रता के दाता हैं यह कर्म करने से देह पवित्र होती है। हे भारत बंसी

अर्जुन अब निश्चय कर मेरे मत का त्याग सुन। त्याग तीन प्रकार का है सो सुन। पहिले तो मेरा मत यह है, यज्ञ, दान, तपस्या स्नान यह मनुष्यों को पवित्र करते हैं। विवेकी पुरुष इनका त्याग नहीं करते, जो भले विवेकी पुरुष हैं, यह सत्य कर्म करने तिनको भले हैं। भले कर्म करके तिनका फल कुछ वांछते नहीं, इसी कारण से मेरे मत में यह बात भली है। सब बातों से श्रेष्ठ है, जो सत्य कर्म कर फल को वांछा ना करे, यह बात अति भली है और जो अज्ञान से आलसकरे, सत्यकर्म त्यागकर जो स्नानकरे, उसे क्या फल होता है। जो प्राणी माया का मोहया हुआ

मरने के दिन तक कभी यह निष्कर्मी नहीं है और न यह जीव त्यागी होता है। हे अर्जुन। यह जीव कब निष्कर्मी होता है सो सुन। सत्य कर्म प्राणी मुझ को समर्पे कुछ फल ना मांगे, तब यह जीव निष्कर्मी और त्यागी होता है। अब और सुन मनुष्यों को नित्य ही अपने कर्म करने का तीन प्रकार का फल होता है, सो सुन। भले कर्म का फल सुख, बुरे कर्म का फल दुःख, और जो भले बुरे कर्म रला मिलाकर करे सो सुख दुःख भी मिश्रित होता है। यह तीन प्रकार के फल हैं जो नित्य संसारी मनुष्यों को होते हैं, पर किनको? जो संसार को त्यागकर मेरी शरण नहीं आए तिनको

त्याग जो प्राणी मेरे चरण कमलों की शरण आए हैं । उनके निकट कोई दुःख नहीं आता, अब अर्जुन और सुन । जितने कर्म देहधारी मनुष्यों से होते हैं, भले वा बुरे सो सब देह इंद्रियों मन से होते हैं । आत्मा कैसा है ? अकर्त्ता है । कुछ नहीं करता केवल एकही है । निर्मल का निर्मल है । हे अर्जुन । तिसको तैने पहिचाना है जिनकी निर्मल बुद्धि है सो तिस आत्मा को पहिचानते हैं, और दुर्मति जो अधमत पुरुष हैं सो आत्मा को नहीं देख सक्ते ! हे अर्जुन ! जिसको अहंबुद्धि नहीं कि मैं जो आत्मा हूं, अकर्त्ता हूं, कुछ नहीं करता । जो कुछ भला बुरा कर्म होता है । देह इंद्रिया मन से होता है जिस

माया का मोहिया कर्म का आरम्भ करे सो तामसी कहावे है। अब कर्म का करता सुन। जो इस प्रकार कर्म करे, यज्ञ महोत्सव, होम, श्राद्ध, श्राह इत्यादिक और जो सत्य कर्म हैं। तिनको करे। फल कुछ वांछे नहीं आहंकार से रहित कि मेरा कुछ नहीं सब कुछ परमेश्वर का है और उद्यम से रहित जो कुछ सहिज होए सुहोए और यह भी नहीं जो अमुका कार्य मेरा संपूर्ण होए तब मेरा संतोष है। जो कुछ कार्य विगड़े तो कलपे नहीं जो कुछ कार्य संपूर्ण होए तो प्रसन्न ना होए बैठे। वह क्या समझे मेरा कुछ नहीं सब कुछ ईश्वर का है। हर्ष शोक से रहित हो, जो कुछ ईश्वर इच्छा से आए

त्याग जो प्राणी मेरे चरण कमलों की शरण आए हैं। उनके निकट कोई दुःख नहीं आता, अब अर्जुन और सुन। जितने कर्म देहधारी मनुष्यों से होते हैं, भले वा बुरे सो सब देह इंद्रियों मन से होते हैं। आत्मा कैसा है? अकर्त्ता है। कुछ नहीं करता केवल एकही है। निर्मल का निर्मल है। हे अर्जुन। तिसको तैंने पहिचाना है जिनकी निर्मल बुद्धि है सो तिस आत्मा को पहिचानते हैं, और दुर्मति जो अधमत पुरुष हैं सो आत्मा को नहीं देख सक्के! हे अर्जुन! जिसको अहंबुद्धि नहीं कि मैं जो आत्मा हूं, अकर्त्ता हूं, कुछ नहीं करता। जो कुछ भला बुरा कर्म होता है। देह इंद्रिया मन से होता है जिस

माया का मोहिया कर्म का आरम्भ करे सो तामसी कहावे है। अब कर्म का करता सुन। जो इस प्रकार कर्म करे, यज्ञ महोत्सव, होम, श्राद्ध, क्षाह इत्यादिक और जो सत्य कर्म हैं। तिनको करे। फल कुछ वांछे नहीं आहंकार से रहित, कि मेरा कुछ नहीं सब कुछ परमेश्वर का है और उद्यम से रहित जो कुछ साहिज होए सुहोए और यह भी नहीं जा अमुकाकार्य मेरा संपूर्ण होएतब मेरा संतोष है। जो कुछ कार्य विगड़े तो कलपे नहीं जो कुछ कार्य संपूर्ण होए तो प्रसन्न ना होए बैठ। वह क्या समझे मेरा कुछ नहीं सब कुछ ईश्वर का है। हर्ष शोक से रहित हो, जो कुछ ईश्वर इच्छा से आए

मिले सो भोजन करे। इस प्रकार सात्वकी करता कहावे। अब राजसी करता सुन। जीवों के दुःखावने में तिसका स्वभाव, और अपवित्रता, हर्ष शोक कर संयुक्त जो यज्ञ क्रिय तिसके फल पावने की कामना मन में करे कि लोग मुझको धन्य कहेंगे। इस निमित्त हर्ष होना गृह से जो द्रव्य खर्च होता है। इस कारण से शोक है। यह राजसी करता कहावे है। अब तामसी करता सुन। शास्त्रकी विधि को समझे नहीं, जो यज्ञ महोत्सव किस विध कीजे किसी को मस्तक निवावे नहीं,महामूढ़ मूर्ख आलसी विषादी सब किसी साथ लड़ाई करे और ढ़िलर यह तामसी करता है।

तामसी दृढ़ता जान। हे भारतवंसी अर्जुन! अब तीन प्रकार का सुख सुन। जो सुख कडुवा खावे नहीं, मिष्ट सुखदायक अमृत तुल्य भोजन करे, प्रथम तप कष्ट साधकर तब राज स्वर्ग फल पावे यह सात्वकी सुख कहावे है। अब राजसी सुख सुन इन्द्रियों का अधिकार प्रथम सुख को प्रकट कर पीछे विषफल खाए यह राजसी कहावे है। तुच्छ फल यह चारों। अब तामसी सुख सुन प्रथम बेसुरत निद्रा में आलस असावधानता प्रभु का विसारना एक कुशल घृत के मथन में सब में निपट शंका अब अर्जुन और सुन। स्वर्ग से लेकर पृथिवी तल पाताल लोक, नाग लोक तक तीनों लोक

मिले सो भोजन करे। इस प्रकार सात्वकी करता कहावे। अब राजसी करता सुन। जीवों के दुःखावने में तिसका स्वभाव, और अपवित्रता, हर्ष शोक कर संयुक्त जो यज्ञ किये तिसके फल पावने की कामना मन में करे कि लोग मुझको धन्य कहेंगे। इस निमित्त हर्ष होना गृह से जो द्रव्य खर्च होता है। इस कारण से शोक है। यह राजसी करता कहावे है। अब तामसी करता सुन। शास्त्रकी विधि को समझे नहीं, जो यज्ञ महोत्सव किस विध कीजे किसी को मस्तक निवावे नहीं, महामूढ़ मूर्ख आलसी विषादी सब किसी साथ लड़ाई करे और दिलर यह तामसी करता है।

तामसी दृढ़ता जान। हे भारतवंसी अर्जुन! अब तीन प्रकार का सुख सुन। जो सुख कड़ुवा खावे नहीं, मिष्ट सुखदायक अमृत तुल्य भोजन करे, प्रथम तप कष्ट साधकर तब राज स्वर्ग फल पावे यह सात्वकी सुख कहावे है। अब राजसी सुख सुन इन्द्रियों का अधिकार प्रथम सुख को प्रकट कर पीछे विषफल खाए यह राजसी कहावे है। तुच्छ फल यह चारों। अब तामसी सुख सुन प्रथम बेसुरत निद्रा में आलस असावधानता प्रभु का विसारना एक कुशल घृत के मथन में सब से निपट शंका अब अर्जुन और सुन। स्वर्ग से लेकर पृथिवी तक पाताल लोक, नाग लोक तक तीनों लोक

माया से उपजे हैं। इन तीनों लोकों में माया के तीन गुण बरते हैं। इन तीन ही गुणों के स्वभाव में लोक बरते हैं। लोकों विषेगुण हैं गुणों विषे लोक हैं। इसी कारण त्रिगुणमई सृष्टि कही है। हे अर्जुन ! अब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य शूद्र इन चार वरणों के स्वभाव की प्रक्रिया सुन। स्वभाव की प्रक्रिया कहिये जो साथ ही लजन्मीये। पहिले ब्राह्मण के स्वभाव की प्रक्रिया कहित हैं। इन्द्रियों को जीतना मन जीतना तप करना भजन करना पवित्रता क्षमा कोमल स्वभाव, ज्ञान अपना और विज्ञान परमेश्वर का यह जानना और गोविंदमें तत्व बुद्धि जो परमेश्वरहै। यह ब्राह्मण के स्वभाव के धर्म कहे।

होताहै। उसको चौथा पद कहते हैं, जिसका नाम सहज पद है तुरियापद भी और सतपद इसीको कहितेहैं। जोप्राणी इस पद को प्राप्त होतेहैं उनको किसीकर्म त्यागने का दुःख नहीं। और जो सत्यपद को पाय कर किसी कर्म का आरम्भ करे तिसको बड़ा दोष है तिस पर दृष्टांत सुन जैसे धूएं से रहित निर्मल अग्नि जलती है, तिस निर्मल अग्नि में धूए वाली लकड़ी डाल दें तब निर्मल अग्नि को बिगाड़ देती है। तैसे ही चौथेपद वालेकोकर्मआरम्भभी करना दोष है। कर्म का आरम्भ करना सत्यपद को बिगाड़ देता है। इस कारण जो तुरियादपद में लीन हुआ है। तिसको

माया से उपजे हैं। इन तीनों लोकों में माया के तीन गुण बरते हैं। इन तीन ही गुणों के स्वभाव में लोक बरते हैं। लोकों विषेगुण हैं गुणों विषे लोक हैं। इसी कारण त्रिगुणमई सृष्टि कही है। हे अर्जुन! अब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य शूद्र इन चार वरणों के स्वभाव की प्रक्रिया सुन। स्वभाव की प्रक्रिया कहिये जो साथ ही लेजन्मीये। पहिले ब्राह्मण के स्वभाव की प्रक्रिया कहिते हैं। इन्द्रियों को जीतना मन जीतना तप करना भजन करना पवित्रता क्षमा कोमल स्वभाव, ज्ञान अपना और विज्ञान परमेश्वर का यह जानना और गोविंदमें तत्वे बुद्धि जो परमेश्वरहै यह ब्राह्मण के स्वभाव के धर्म कहे।

होताहै। उसको चौथा पद कहते हैं, जिसका नाम सहज पद हैतुरियापदभीऔर सतपदइसीकोकहितेहैं। जोप्राणी इस पद को प्राप्तहोतेहैं उनको किसीकर्म त्यागने का दुःख नहीं। और जो सत्यपद को पाय कर किसी कर्म का आरम्भ करे तिसको बड़ा दोष है तिस पर दृष्टांत सुन जैसे धूंए से रहित निर्मल अग्नि जलती है, तिस निर्मल अग्नि में धूए वाली लकड़ी डाल दें तब निर्मल अग्नि को बिगाड़ देती है। तैसे ही चौथेपद वालेकोकर्मआरम्भभी करना दोष है। कर्म का आरम्भ करना सत्यपद को बिगाड़ देता है। इस कारण जो तुरियादपद में लीन हुआ है। तिसको

कामना का आरम्भ करना कुछ नहीं रहा। अब जो प्राणी चौथेपद में लीन हुआ है, तिसके लक्षण सुन। मुख्य लक्षण तो किसी साथ मोह ममता नहीं, संसार के विषयों में अपना मन जीत रखा है। किसी वस्तु की इच्छा नहीं, क्यों नहीं कामना सो सुन। वह निष्कर्मी सिद्ध जो है, संसार का माथा जो सन्यास के माथे में जाय प्राप्त हुआ है। तिस सुख के समान और कोई सुख नहीं; इसी कारण से तिसको कोई बांछा नहीं, सो वह किस सिद्धि को प्राप्त हुआ है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! वह मेरे जानने के ज्ञान को पूर्ण हुआ है।

तिसकी बुद्धि निर्मल हुई और महां ईश्वर पारब्रह्म विषे तिसका दृढ़ निश्चय हुआ है, और संसारी लोगों की बात नहीं सुनता। और ना आप किसी से बात करता है। ना किसी साथ प्रीति है ना शत्रुता है। एकांत वासी मेरे स्मरण के सुख को पायकर पूर्ण होय रहा है। संसार में जिसने तीन ही बातें जीत रखी हैं। कौन तीन बातें सो सुन देह कर संसारी मनुष्यों का संग नहीं करता। जिह्वा कर बात नहीं करता। मनकर संसारी लोगों को चितारता नहीं इस प्रकार मन, देह, मनसा, जिह्वा यह जीत रखी है और नित्य निरन्तर मेरे ध्यान साथ जुड़ा हुआ है। सारे संसार

से वैराग्यवान है। कैसा वैरागी ऊपर ब्रह्मा के लोक, तले शेषनाग के लोक तिनके जो परम सुख हैं तिनको तृण समान करजाने। इसका नाम वैराग्यहै। फिर कैसा अहंकार बल गर्व काम क्रोध इनका त्यागी, इनमें रमता नहीं और छादन भोजन से कुछ अधिक रखता नहीं, इसका नाम त्याग है। जिन छे ही विकार त्यागे और किसी वस्तु साथ ममता मोह नहीं जो अमुक वस्तु मेरी है ऐसा जो सत्य पुरुष है सो जीवता देह साथ होते ही मुक्ति है। फिर वह कैसा हुआ, ब्रह्मभूत क्या कहिये मायाके जो तीन गुण सो काटे गए। जब तीन गुण काटे तब जैसा आत्मा ब्रह्मथा

तैसा ब्रह्म का ब्रह्म ही हुआ। इस कारण से तिसको ब्रह्म भूत ही कहिये। जब ब्रह्म भूत हुआ तब तिसका आत्मा परम प्रसन्न हुआ तब कुछ गई वस्तु की चिंता न करे, अनहोई वस्तु के आवने की वांछा ना करे सब भूत प्राणियों साथ समता दृष्टि। यह लक्षण तुरियापद के सम हैं जब तुरियापद में मनुष्य आवे है तब मेरी भक्ति को तुरंत ही पावे है। मेरी भक्ति यह है जो मेरी महिमा का प्रताप जानना सो मेरा भक्त कैसा है तुरीयापद में लीन हुआ क्या ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हुआ सो भक्त प्रभु को जाने प्रताप प्रभु का सकल जाने बड़ाई महत्वता को ब्रह्म विधि विचारे इसको जाने आगे और

महात्म नहीं। तिस महिमा का जानना ही परमभक्ति है। सो एक त्तण २ पल २ चसा राम नाम को सिमरे। हे अर्जुन! जिन मेरी महिमा के ज्ञानरूप अमृत को पान किया सो जब लग मनुष्य देह में बसे, तब लग परमशांति सुख तिस में मग्न है। जब देह त्यागे तब भी मेरे परमानिध अविनाशी पदमें जाए लीन होता है। यह चौथेपद तुरिया शांतिपद के लत्तण कहे, जिसको मेरे भजनरूप अमृत का स्वाद आया है और साथ ही माया की प्रकृति करे है, सो मेरी कृपा से मेरे पदको प्राप्त होता है। इसी कारण से हे अर्जुन! तूं मन का निश्चल चेता मेरे में राख मुझ

साथ ही प्रीति कर, बुद्धि का निश्चल चेता मेरे में रखने से संसार के दुखों से तर जावेगा, और जो आपने अहंकार को लिये मेरी आज्ञा ना मानेगा तब तेरा विनाश होजायगा। जो तूं अहंकार को लिये कहे जो मैं युद्ध नहीं करता सो तेरा कहिना झूठ है। क्यों जैसी तेरी प्रकृति है तैसी तुझ से होरही है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! जैसे २ स्वभाव के देहधारी उपजे हैं सो सब स्वभाव के बंधन से बंधे हुए हैं। सब लोक स्वभाव के वस हैं, स्वभाव किसी के वस नहीं। जो तूं कुटुंव का मोहिया कहे, जो मैं युद्ध नहीं करता तो क्षत्री का स्वभाव तुझे अवश्य युद्ध

करावेगा। हे अर्जुन! एक ईश्वर का स्वरूप भूत प्राणियों में बसे हैं। सो अवश्य कर जीवों को माया मोह के यन्त्र पर ही बैठाय कर भ्रमाता है सब को। तिस कारण सब भावों कर तूं ईश्वर की शरण जा। परम शान्ति जो कल्याण पुरातन स्थानता को प्राप्त होवेंगा। हे अर्जुन! यह गुह्य से गुह्य परम गुह्य ज्ञान मैंने तेरे प्रति कहा है, और जितने मार्ग मेरे पावने के हैं सो सभी तेरे प्रति कहे हैं। हेअर्जुन! सारी गीता में से मेरा और गुह्य वचन है सो तूं मेरा परम मित्र है तेरी मत बुद्धि मेरे चर्णों के साथ दृढ़ है। इस कारण से तेरे कल्याण निमित्त मैं कहिता हूं। हे अर्जुन!

सब भजनों में मुझको यह भजन रुचे है। जब इस भजन में दृढ़ होवेगा तब सब भगतों से मुझे प्यारा लगेगा, सब भजनों को त्याग कर मेरी ही शरण आ। सो मैं तुझको सब पापों से मुक्त करूंगा। तूं चिन्ता मत कर। हे अर्जुन! यह ज्ञान जो मैंने तुझको कहा है सो तुझे ऐसे लोगों को नहीं सुनाना जो मेरी भक्ति से बेमुख हैं। जिसको सुनने की श्रद्धा न हो और जो मेरा गुह्य ज्ञान मेरे भक्त को सुनावेगा तिस पुरुषने मेरी भक्ति की है। ऐसा कोई दूसरा पुरुष मेरे प्रसन्न करने को नहीं है ऐसा प्राणी ना पीछे कोई हुआ, ना आगे होगा, मुझ को अति प्यारा है। जिसने

मेरे भक्त को गीता ज्ञान श्रवण कराया है, उसको बहुत फल प्राप्त होगा और जो कोई इस गीताजीके एक श्लोक का भी पाठ करेगा तिसका फल सुन । सर्व यज्ञोंमें श्रेष्ठ जो ज्ञान यज्ञ है । तिसका फल देता हूं, और तिस पाठ कर्ता के निकट जाय खड़ा होता हूं । जैसे कोई किसी का नाम लेकर बुलावे तब वह तत्काल बोलता है । तैसेही गीता के पाठ करने हारे के निकट जाय खड़ा होता हुं । और जो अर्थकरसुनावेतिसकीमाहिमा बड़याई कुछ कही नहीं जाती जैसे मेरी माहिमा और बड़याईबचनों से अगोचर है, तैसे गीता के अर्थ करनेहारे की माहिमा बचनों से अगोचर है,

और सुननेहारा इसको सत्य २ मानकर श्रवण करे वह भी जन्म मरण के बंधनों से मुक्त होकर परमानंद अविनाशी पद को पावेगा। इससे हे अर्जुन! यह ज्ञान तैंने एकाग्रचित्त होकर श्रवण किया है सो तेरे विषे जो अज्ञान मोह था सो नाश हुआ। श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन बोला, हे अच्युत अविनाशी पुरुषजी! हे भगवान! तुम्हारी कृपा से मेरे मोह का नाश हुआ। और ज्ञान भी पाया मेरी बुद्धि भी निर्मल हुई मेरे मनके जो संदेह थे तिनका भी नाश हुआ और आपके मुख कमल से युद्ध करने की आज्ञा हुई है, सो मैं युद्ध करता हूं। संजयउवाच–संजयराजा धृतराष्ट्र कोंकहिते

हैं। हे राजा जी वासुदेव श्रीकृष्ण भगवानजी और पार्थके अर्जुन इन दोनों का संवाद गोष्ठ गीता का महात्म सुन समझ कर मेरे रोम खड़े होगये हैं। जो व्यासजी ने मुझे दिव्य दृष्टि दी है सो तिनकी कृपा से यह ज्ञान गोष्ठ मैंने सुनी है। सो यह गुह्य से भी गुह्य है। जो ईश्वर के ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन तिनके मुख कमल से जो ज्ञान निकला है तिसको विचार विचार कर परम हर्ष को प्राप्त हुआ हूं, और विश्वरूप जो श्रीभगवानजीने अर्जुन को दिखाया है, तिसको विचार विचार कर परम हर्ष और विस्मय को प्राप्त हुआ हूं। हे राजन् मेरे निश्चय की

बात सुन जिस ओर योगिश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी और गांडीव धनुषधारी अर्जुन है,सो तिस ओर लक्ष्मी है,तिन ही की जय होवेगी मेरी मत्त में यही है । तूं यही निश्चय कर जान जिनके पक्ष पर श्रीकृष्णजी हैं। सो ऐसे परम भगवान पांडवों की जय होवेगी पांडव जीतेंगे,और तेरे पुत्र अधर्मी हारेंगे। यह निश्चय जान । इति श्रीभगवद् गीता सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे सर्वशास्त्रे निर्णय मोक्ष योगो नाम अष्टदशो अध्याय !

* अथ अठारवें अध्याय का महातम *

श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी ! अठारवें अध्याय का

महात्म सुन जैसे सब नदियों में गंगा जी श्रेष्ठ है देवताओं में हरि जी श्रेष्ठ हैं, सब तीर्थों में पुष्करराज श्रेष्ठ है, सब परबतों में कैलाश पर्बत श्रेष्ठ है, सब ऋषियों में नारद श्रेष्ठ है सब गऊओं में कपिला कामधेनु गौ श्रेष्ठ है। तैसे सब अध्यायों में गीता का अठारवां अध्याय श्रेष्ठ है तिसका फल सुन। सुमेर पर्बत पर देवलोक में इन्दर अपनी सभा लगाये बैठा था, उरबसी नृत करती थी बड़ी प्रसंनता में बैठे थे, इतनेमेंएक चतुरभुजरूपधारके पारषदलाये इन्दरको सब देवता के सामने कहा तूं उठ इसको बैठने दे, यह सुन कर इन्दर ने प्रणाम किया, उस तेजस्वी को बैठाय दिया

इन्दर ने अपने गुरु वृहस्पति को पूछा गुरुजी तुम त्रिकालदर्शी हो, देखो इसने कौन पुण्य किया है जिस कर यह इन्द्रासन का अधिकारी हुआ है, मेरे जानने में इन्होंने कोई पुण्य, तलाब, व्रत, जग दान कोई नहीं किया । विश्वेश्वर ठाकुर मंदर नहीं बनाया तला और कूप नहीं लगाया, किसी को अभय दान नहीं किया,वृहस्पति जी ने कहा चलो नारायण जी से पूछिये, तब राजा इन्दर वृहस्पति, ब्रह्मादिक सब देवता श्री नारायणजी के पास गये, जाकर डंडोत कर प्रार्थना करी कहा, हे स्वामी सदा सहायक, भक्त रक्षक आपके चार पारषद, एक चतुर्भुज

तेजस्वी स्वरूप को लायकर मुझको इन्द्रासन से उठा उसको बैठा दिया है मैं नहीं जानता उसने कौन पुण्य किया है, मैंने कई अश्वमेधयज्ञ किये हैं, तब मुझे इन्द्रासन का अधिकारी आपने किया है, इसने एक यज्ञ भी नहीं किया, यह मुझे बड़ा अश्चर्य है, तब श्रीनारायण जी ने कहा हेराजा इन्द्र ! तूं डर मत, तूं अपना राजकर इसने बड़ा गुह्य उत्तम पुण्य किया है इसका नेमथा कि नित्य प्रति स्नान कर श्रीगीताजी के १८वें अध्याय का पाठ किया करता था, इसके मन में भोगहु की तृष्णा रही थी, जब इसने देहछोड़ी तब मैंने आज्ञा करी, हे

पारषदो तुम इसको पहिले जाकर इन्द्रलोक भोगावो जब इसका मनोर्थ पूरा होए, तो मेरी सायुज मुक्ति को पहुंचावो तुम जाकर भोगों की सामग्री इकठी कर देवो तब इंद्र और सब देवता आय कर सब वस्तु भोगों की एकत्र कर दीनी और कहा इन्द्रलोक के सुखों को भोगों। कुछ काल इन्द्रपुरी के सुख भोगाय कर फिर श्रीभगवान की कृपा से सायुज मुक्ति देकर वैकुंठ का अधिकारी किया श्रीनारायणजी कहे हैं। हे लक्ष्मी! शिवजी कहें, हे पार्वती यह अठारवें अध्याय का महात्म है गंगा, गीता, गायत्री यह कलियुग में तीनों मुक्ति की

दाती है ॥ इति श्रीपद्मपुराणंसती ईश्वर संवादे उत्तराखंड गीतामहात्मों नाम अष्टदसमों अध्याय ॥ १८ ॥

श्रीभगवानोवाच—श्री नारायणजी कहे हैं जो ब्राह्मण साधू वेश्यों योगी अठारवें अध्याय का पाठ करते हैं तिनको मैं कई अश्वमेध यज्ञ किये का फल देता हूं, कई कपला गौ दान किये का, असंख्य चन्द्रायण ब्रत किये का और भी बड़े २ दानपुण्य का फल देता हूं, जो प्राणी नित्य प्रति श्रीगीता जी का पाठ करते हैं वा प्रीति साथ सुनते हैं हे लक्ष्मी जो पवित्र ठौर में बैठकर पढ़ते हैं सुनते हैं हरिद्वार की पौड़ीयों पर गंगाजी के किनारे पर

तुलसी वा पीपल के पास बैठ कर हरि मंदिर और जहां जहां उत्तम ठौर हैं तहां बैठ कर पढ़े तो उस प्राणी को कलयुग के जितने पाप हैं नहीं लगते और दुःख क्लेश आपदा से छुट जाएगा। जो प्राणी यह चार साधन करे गंगा स्नान, गीता, गायत्री का पाठ, सन्तों की सेवा, गोविन्द का प्रताप इन के प्रताप से कलयुग के पाप नहीं व्यापेंगे इन पर्वों में गीता पाठ, कर एकादशी, अमावस्या, पूर्णमाशी, तो हज़ार गौ दान किये का फल होवे पितर पक्ष में पाठ करे तो जितने पितर अधो गत गये हैं उन सब का उद्धार होगा बैकुण्ठ वासी होकर

आशीर्वाद करेंगे। तिनकी मुक्ति होगी, जो प्राणी सारी गीता का पाठ करे तो क्या कहिना है एक अध्याय या श्लोक नित्य पढ़े तो मुक्ति भुगति सब मिलेगी जो श्रोता को सुनावे तो गौ दान किये का फल होगा इस जीव के उद्धार के छे यत्न हैं गंगास्नान, गीतापाठ, कपलागौकी सेवा, गायत्री पाठ और तुलसी, पीपलमें जलसिंचना ज्ञानी संतों की सेवा करनी एकादशीव्रत। हे लक्ष्मी! सर्व शास्त्र मई गीता सर्व धर्ममयो दया। सर्व तीर्थ मई गंगा सर्व देव मयो हरि। अर्जुन सुन कर कृतार्थ हुआ चारों वरणों में जो कोई इसको पढ़े सुने धारण करेगा सो कृतार्थ होवेगा इसकी अपर

अपार महिमा है, कहिने सुनने से बाहर है मुक्ति मुगती की दाता है ॥ १८ ॥

इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषद्ब्रह्मविद्या
योगशास्त्रे सतीईश्वर संवादे गीतामहात्मों नाम
अठारवाँ अध्याय सम्पूर्णम् ॥ १८ ॥

इस पुस्तक के मिलने का पता—

रामचन्द्र लौकनाथ मानकटाहलै पुस्तकों वाले
लुहारी दरवाज़ा, लाहौर।

पोथी

श्रीमद्भगवद्गीता दोहावली

गोस्वामी तुलसीदासजी कृत

पूरे अठारह अध्याय दोहियों में

जो

रामचन्द्र लोकनाथ मानकटाहले पुस्तकोंवाले

लुहारी दरवाज़ा लाहौर ने छपवाई

संवत् १९७०

बाम्बे मशीन प्रैस, लाहौर में छपी

धृष्टकेतु और काशिपति, चेकितान बलवन्त ।
कुन्तिभोज और शैव्य पुन, पुरुजित शत्रु निकन्त॥५॥
युधामन्यु अति विक्रमी, उत्तम जोउ रणधीर ।
द्रौपदीसुत अभमन्यु ये, महारथी बलबीर ॥६॥
मो सेना में जो बड़े, ते सब गण द्विज राज ।
नीके जानो तुम तिनै, खरे युद्ध के काज ॥७॥
तुम अरु भीष्म करन कृपा, जिन जीते संग्राम ।
भूरिस्रवा विकरण और, अश्वत्थामा नाम ॥८॥
और बहुते सूर हैं, मो लग तजैं जु प्रान ।
भांति भांति आयुध लिये, सबै युद्ध बलवान ॥९॥
मो सेना असमर्थ्य है, भीष्म राखत जाहि ।
पर सेना सामर्थ्य है, भीम जु राखत वाहि ॥१०॥

आस पास मो व्यूह के, तुम सब ठाढ़े होहु ।
भीष्म की रक्षा करो, करिके मन में मोहु ॥११॥
दुरयोधन के हरष को, भीष्म जू चित चाइ ।
सिंह नाद ऊंचे किये, दुसहा शंख बजाइ ॥१२॥
तबै शंख भेरी बजें, पणवानक गौमुख भूर ।
ताही क्षण बाजत भये, शब्द रह्यो भरपूर ॥१३॥
श्वेत वरण घोड़े लगे, दीर्घ रथहि बनाइ ।
हरि अर्जुन तिसपर चढ़े, रह से शंख बजाइ ॥१४॥
देव दत्त अर्जुन लयो; पांच जन्य यदुराइ ।
भीम भयानक भय दियो,पौंड्रक शंख बजाय ॥१५॥
नृपति युधिष्ठिर सुर कियो, अनन्त विजय को घोष।
पुन सहदेव जु नकुल ने, मणी पुष्प जस पोष ॥१६॥

महा धनुषधर काशिपति, रिषी शिखंडी जान ।
धृष्टद्युम्न वैराट अति, बली सातकहि मान ॥१७॥
द्रुपद द्रौपदी सुत सबै, और सुभद्रा पूत ।
अपने अपने शंख लै, ध्वनि कीनी ता सूत ॥१८॥
फटे हिये कौरवन के, शब्द सुने ता बार ।
भूमी और आकाश में, पूर रहियो गुंजार ॥१९॥
देखे सुत धृतराष्टर के, अर्जुन धनुष संभार ।
कपि वर जाकी ध्वनि लसै, सोत्र परत तिनहार ॥२०॥

अर्जुन उवाच ॥

अर्जुन कही जु कृष्ण सों, मेरे चित यह चिन्त ।
दुहु सेना के मध्य में, रथ ठाढ़ा करि मिन्त ॥२१॥

जब लग देखों हों इनै, जुड़े युद्ध के दाइ ।
कौन कौन सों होइयो, रण में संगु सहाइ ॥२२॥
युद्ध करन योद्धा जिते, आये हैं करि साजि ।
दुरबुद्धी कौरवन के, भले करन को काज ॥२३॥

सञ्जय उवाच ॥

ऐसे ही श्रीकृष्ण जी, सुन अर्जुन की बात ।
दोउ सेना के मांझ रथ, ले राख्यो ता घात ॥२४॥
भीष्म द्रोणा आदि दे, नृपति होयो ठौर ।
अर्जुन बोल्यो कृष्ण जू, हैं कैरों की ओर ॥२५॥
अर्जुन देखे हैं तबी, पिता पितामह भाइ ।
गुरु मामा भाई सखा, सुत नाती कै दाइ ॥२६॥

श्वशुर सुहृद बांधवं सकल, दोऊ सेना के माहिं ।
तिनहिं देख करुणा भई, तब बोल्यो नरनांहिं ॥२७॥
देखत हों सब वन्धु ये, कृष्ण युद्ध के दाइ ।
मो मुख सूकव जात है, अंग अंग शिथलाइ ॥२८॥
रोम हरष हैं देह मैं, और कंप बहु भाइ ।
धनुष गिरत मो हाथ ते, त्वचा अधिक तपताइ ॥२९॥
ठाढ़ो ह्वै हौं नहिं सकौं, भ्रमत मो मन जु मीत ।
केशव शकुन न देखियत, कैसी है यह रीति ॥३०॥
संजन कहो संग्राम मैं, ताते हरि इव जान ।
आंपनो भलो न देखियत, है विप्रीत जो मान ॥३१॥
विजय न चाहों कृष्ण जी, नाहिं चाहों सुख राज ॥
राजभोग गोविन्द विन, अरुजीवन किंहि काज ॥३२॥

राज भोग सुख कृष्ण जी, करियत इनके काज ।
लरत जीउ धन छाड़ियहि, मन ही चाहत राज ॥३३॥
गुरु मामा सुत श्वशुर निज, सारेहूं अवरेखि ।
मारैं मोको राज यदि, हौं नहिं हनौं विशेष ॥३४॥
राज तजौं तिहुं लोक को, इती किती यह भूमि ।
सुत न हनौं धृतराष्ट्र के, दुःख ते डर हौं भूम ॥३५॥
पाप होइ इनके हने, यद्यपि लए हथियार ।
ताते इन हानिये नहीं, बन्धु सहित परिवार ॥३६॥
कृष्ण सजन को मारिके, सुख लहिये किहिं भाय ।
यह जु भुलाने लोभ ते, देखे यह सभ दाय ॥३७॥
कुल क्षय कीनो दोष जो, और सुमित्र को द्रोह ।
जानि बूझि या पाप को, किहि विधि कीजै कोह॥३८॥

कुल क्षय कीने कुल धरम, जात सु सबै नशाय ।
धरम नसै कुल के जबै, होत अधरम सुभाय ॥३९॥
कृष्ण अधरमहि के बढ़े, भ्रष्ट होहिं कुल नारि ।
होंहि बरन शङ्कर सबै, त्रिय दोष निरधार ॥४०॥
कुलह वरन शंकर भये, डारत दोष बड़ाइ ।
जात धरम कुल कर्म जे, तेऊ देत नसाइ ॥४१॥
नरक परै शंकर भये, कुल घाती जे लोइ ।
पतित होंहि तिनके पितर, पिंड देहिं नहीं कोइ ॥४२॥
कुल धरमन के नसतहूं, निःसन्देह यह होइ ।
सदा नरक में ते रहैं; कहत जु यों सब कोइ ॥४३॥
बड़े पाप के करन को, निशचय कियो विचार ।
चित में जान्यो राज सुख, हत कुटुम्ब निरधार ॥४४॥

कर में ले हथियार यह, आवे मो समुहाइ ।
मोहिं हने जो सहजही, मान लेंउ सुखभाइ ॥४५॥

संजयउवाच ॥

ऐसे कहि अर्जुन तबै, बैठ गए रथ जाहि ।
कर ते डारे सर धनुष, शोक लियो मन माहि ॥४६॥

दोहा गीता अध्याय २ संजय उवाच ॥

ले उसांस असुआ भरे, अर्जुन करुणा भाइ ।
बहु विषाद संयुक्त लखि, बोल्यो श्री यदुराइ ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच ॥

अर्जुन या संग्राम में, कत दुःख पायो मीत ।
कीरति अरु स्वर्गहि हरै, कायर जिउ भय भीत ॥२॥
कातरताई जिन करहि, यह तो को नहि जोग ।
छाड कचाई हिय के, दे शत्रुन को सोग ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ॥

हरि जो या संग्राम में, हैं भीष्म अरु द्रोन।
पूजों कै सिर सो हनों, मोसौं कहिये जौन ॥ ४ ॥
भीख मांगि बर खाइये, गुर हनबो जु अनीति।
गुरहि मार भोगहिं करो, भखों सु लोहू रीति ॥ ५ ॥
मन में हौं यह जान हूं, हार भली नहि जीत।
जिनहि मार हम नहिं जियें, सो ठांडे हैं मीत ॥ ६ ॥
धर्म मांझ हौं मूढ हों, पूछत कृपन सुभाइ।
दीन तिहारी शरनि हौं, दीजै जुगति वताइ ॥७॥
भूमिलोक सुरलोक को, लहों अखंडित राज।
इन्द्रिय सोषत हीय की, जाइ न शोक समाज ॥ ८ ॥

संजय उवाच ॥

ऐसे कहि श्री कृष्ण सों, अर्जुन ताही बार।
युद्ध न हौं हरि जी करों, यह कीनो निरधार ॥ ९ ॥

दोनों सेना मांझ जो, अर्जुन कियो विषाद ।
कृपावन्त ह्वै कृष्ण जी, दीनो बचन प्रसाद ॥१०॥

श्री भगवानुवाच ॥

सोच असोची क्यों करत, कहन ज्ञान की बात ।
सोच न पण्डित करत हैं, जीउ न उपजत जात ॥११॥
हम तुम और नृपति जिते, इनको नाश न होइ ।
तिहूं काल में स्थिर रहैं, ऐसे सब को जोइ ॥१२॥
बाल युवा और बृद्धता, या देही में होत ।
तैसे देह अन्तर लहै, धीरन मोह न होत ॥ १३ ॥
अर्जुन इन्द्रिय चित मिलि, विष जु सुख दुःख देत ।
सीत उष्ण नहीं स्थिर रहै, सह तन को या हेत ॥१४॥

जाके बृथा न होई कछु, सुख दुःख गनै समान।
वहै धीर मुकताहि लहै, यही बात परवान ॥ १५ ॥

जो है सो बिनसै नहीं, जो बिनसै सो नाहि।
जो इन तत्वन को लखै, गनिये ज्ञानी माहि ॥१६ ॥

जासों जग यह है भरयो, सो अविनाशी जान।
जाहि विनाश न हो सकै, ताहि आतमा मान ॥ १७ ॥

अन्त वन्त सब देह है, जीव रहत है नीत।
अविनाशी वह बसतु है, युद्ध करै किन मीत ॥ १८ ॥

जो याको हंता गनै, हन्यो गनत जो कोइ।
यहीं न मरे मारे नहीं, अज्ञानी वै दोइ ॥१९॥

यही न मरै उपजै नहीं, भयो न आगे होइ।
अजर पुरातन नित्य है, डरै न मारै सोइ ॥ २० ॥

जो जानत है आतमा, अज अविनाशी नित्त।
सो नर मारै कवन को, ताहि हनै को मित्त ॥२१॥
जैसे पट जीवत तजै, पहिरत नर जु नवीन।
देह पुरातन जीव तजि, नई गहत परबीन ॥२२॥
यह न कटै हथियार सों, पावक सकै न जार।
भेव सकै जल नाहिंनै, सोष न सकै बिआर ॥ २३ ॥
कटै जरै सूकै नहीं, अबगन भीजवन जोग।
नित्य रहे सब ठउर स्थिर, अविनाशी विन रोग ॥२४॥
प्रगट नही जु अचिंत है, अविकारी तू जान।
ऐसे याको जान के, शोक लेहु जिन मान ॥ २५ ॥
जो उपजै सो बिनस है, मरै सु उपजै आइ।
होनहार सो होत है, हानि न शोच बढ़ाइ ॥ २६ ॥

पाछो याहि न जानिये, आगे नाहिन जान ।
मांझहि यह कछु देखिये, ताको शोच न मान ॥ २७ ॥
जो याको देखे कहै, सोऊ अचरज भाइ ।
सुनै अचम्भा सो लगै, यह जान्यो नाहिं जाइ ॥२८॥
जीव न मारयो जात है, बसत सबन की देह ।
ताते सोच न कीजिये, करि काहू सों नेहु ॥ २९ ॥
अपनो धर्म बिचार कर, जिन छाडो संग्राम ।
धर्म्म युद्ध ते क्षत्रियहि, अवर न कछु अभिराम ॥३०॥
अपनी इच्छा ते लह्यौ, खुल्यो स्वर्ग को दुआर ।
भागवन्त क्षत्रिय लहै, ऐसो रण या बार ॥३१॥
और धर्म्म संग्राम को, जो तू करि है नाहि ।
तज के कीरति धर्म्म सो, परहै पापन माहि ॥३२॥

सबै लोक कहि हैं अबी, तेरो अपजसु आहि ।
अपजस पत स्त्रावन्त को, मरनो ते अधिकाइ ॥३३॥
भय वश अर्जुन रण तज्यो, यों कहि हैं हे वीर ।
तोहि बहुत बटु मानते, अब लघु कहैं अधीर ॥३४॥
तेरे प्रति सब कहेंगे, जो अनकहनी वात ।
निज घट आइके सुने, बहु दुःख लागत तात ॥ ३५ ॥
लरत मरें लहि हैं स्वर्ग, जीते भूमी भोग ।
उठि अर्जुन तू युद्ध कर, यहै जु तो को योग ॥३६॥
लाभ हानि और दुःख सुख, जीत अर हार समान ।
ताते अर्जुन युद्ध कर, पाप लेहु जिन मान ॥३७॥
सांख्य बुद्धि तोसो कही, कहूं जोग बुद्धि तोहि ।
ता बुद्धि के संजोग ते, रहै कर्म नहीं मोहि ॥३८॥

करम करै बिन कामना, ताको होय न नास ।
अलप किये हूं धर्म्म यह, काटत भय को भास ॥३९॥
बुद्धि निश्चयवंत की, एकै है तू जान ।
जिनको निश्चय नाहिं है, तिनै नीच बुद्धि मान ॥४०॥
वेदहि मानाति स्वर्ग फल, ते अज्ञानी लोइ ।
कहत जु इत कछुअवरनाहि,तिन माहि ज्ञान न होइ ॥४१॥
स्वर्ग लाभ की कामना, रहत जो तिन के चित्त ।
लोग बड़ाई के लिये, करत क्रिया सो नित्त ॥४२॥
भोग बड़ाई कामना, तिन को मन हर लेत ।
निश्चय कारि ते बुद्धि को, नाहि समाधि में देत ॥४३॥
त्रिगुण करम को कहत हैं, वेद जु सुन तू मित्त ।
धीरज धर सुख दुःख सहत; योग क्षेम भय चित्त ॥४४॥

बापी हुं और कूप ते, सरत जो एक हि काज ।
तैसे जानो वेद को, लहत ब्रह्म को साज ॥४५॥
तो अधिकार जु करम में, नाहिं फलन सों हेत ।
करम फलन को छाडि दै, करो करम गहि चेत ॥४६॥
योग स्थिति होइ कर्म करि, सबै संग को त्याग ।
सिद्धि असिद्धि समान गन, यह योग अनुराग ॥४७॥
बुद्धि योग से करम को, अर्जुन तू घटि जान ।
सरन होइ तू बुद्धि की, दीन कामना मान ॥४८॥
बुद्धि जुगति दोऊ तजत, कहा पुण्य कहा पाप ।
योग करम ते चातुरी, सोई तू करि आप ॥४९॥
चाहत नाहिं जो करम फल, ते पण्डित बड़भाग ।
करम बन्ध को छाड़ के, लहत मुकति अनुराग ॥५०॥

मोह सघनता जे तजै, अर्जुन तेरी बुद्धि ।
तब पावै वैराग्य को, चित्त करैं जे शुद्धि ॥५१॥
तेरी बुद्धि वैराग्य में, स्थिर हु रहे जे मित्त ।
तब समाधि सों योग लहि, होकर निश्चल चित्त ॥५२॥

अर्जुन उवाच ॥

जाकी बुद्धि निश्चल सदा, ताके चिन्ह बताइ ।
कैसे बोलत क्यों रहत, चलत जि हैं किह भाइ ॥५३॥

श्री भगवानुवाच ॥

जो हैं मन कामना, तिनको तजै जु कोइ ।
आत्म सों संतोष गहि, निश्चल बुद्धि सु होइ ॥५४॥
दुःख को ताजि भागे नहीं, सुख चाहे नहीं चित्त ।
तजै नेह और क्रोध भय, निश्चल बुद्धि सुमित्त ॥५५॥

नेहु न काहू सों करे, बुरे भले की चाहि ।
भले बुरे सों काज नहि, स्थिर बुद्धि लखि ताहि ॥५६॥
ज्यों कछुआ निज अङ्ग को, खेंच आप में लेत ।
तैसें खेंच इन्द्रियन, तजि विषियन सों हेत ॥५७॥
विषय करत हैं दूर सों, तज तज तज आहार ।
आतम देखे जात है, अभिलाशा निरधार ॥५८॥
ज्ञानवन्त जे पुरुष हैं, तजत कठिनता साध ।
इन्द्रिय अति बलवन्त हैं, तेऊ लगावत व्याध ॥५९॥
ताते रोके इन्द्रियन, मो में चित्त को लाइ ।
बसि कीनी जिन यह सभय, सो स्थिर बुद्धि कहाइ ॥६०॥
जब ध्यावत है विषय को, जितने उपजत संग ।
काम जो उपजत संगते, ताते क्रोध अभंग ॥६१॥

क्रोध होत है मोह ते, मोह सुद्धि होइ नास ।
सुद्ध गये बुद्धि नसत है, बुद्धि गये मृत्यु पास ॥६२॥
राग द्वेष जो नाहिं तजै, करत विषय की सेव ।
इन्द्रिय जो निज वश करै, लहै शांति को भेव ॥६३॥
शांति जबै यह गहत है, होत दुखन की हान ।
बुद्धि तब स्थिर होत है, यह तू लीजे मान ॥६४॥
योग विना बुद्धि हुं नहीं, बुद्धि बिन होत न ध्यान ।
ध्यान बिना शान्ति हुं नहीं, ता बिन ज्ञान सुजान ॥६५॥
इन्द्रियन जित जित फिरत हैं, तित मन ल्यावत खेंच ।
मन जो बुद्धि हरलेत है, खेव नाव जिव ऐंच ॥६६॥
जिन इन्द्रिय रोकीं सबै, ठौर ठौर ते आन ।
विषय त्याग है जिन-कियो, स्थिर बुद्धि तिह मान ॥६७॥

सो जन जागत है तहां, जहां सबन की रात।
जीव जहां जागत सबै, तहां निश पेखत तात ॥६८॥
जैसे जल सब सलिल को, मेलत सिन्धू जाइ।
त्यों समाइ सब कामना, शांति रहै तहां आइ ॥६९॥
तज के मन सब कामना, निःसप्रेही जो होइ।
अहङ्कार ममता तजै, तामहि शांति जु होइ ॥७०॥
ब्रह्मज्ञान तोसों कह्यो, जाते मोह नशाइ।
सो बुद्धि अन्त समय रहै, मिले ब्रह्म में जाइ ॥७१॥

इति० श्री भ० सांख्य योगो नाम द्वितीयो० अध्यायः २।

॥ गीता अध्याय ३ ॥

अर्जुन उवाच ॥

बुद्धि भली है करम ते, कृष्ण कही तुम जोइ।
करम भयानक में कहां, केशव डारत मोहि ॥१॥

बचन सुने सन्देह के, मोहि बुद्धि भ्रमांत ।
निश्चय कर एकै कहौ, लहौं मुकति या भांत ॥२॥

निष्ठा जो दोय भांत की, पहिले दई बताय ।
शुद्धन को ज्ञानी भलो, करमन करम बताय ॥३॥

करम बिना किये पुरुष, ज्ञानहि लहै न कोय ।
किये बिना सन्यास के, कोऊ मुकति न होय ॥४॥

करम करे बिन छिनक हु रहै न कोऊ जंत ।
विवस भय करमन करै बांधे माया तंत ॥५॥

करम इन्द्रियन रोक है, मन विखियन को ध्यान ।
कपटी मूरख हैं बड़े, ताको दम्भी जान ॥६॥

मन सों रोके इन्द्रियन, कछु कर मन परचाइ ।
फल अभिलाषा को तजै, तांते यह अधिकाइ ॥७॥

अनकरबे ते करम है, भले सु तू कर मित्त।
बिन कीने ते करम के, देह न निब है नित्त ॥८॥
यज्ञ करम बिन करम जे, जग बन्धन ते होत।
तेही आज कर्मन करो, मेटी फलन को गोत ॥९॥
यज्ञ सहित रचि जगत को, कही विधाता बात
उदय तिहारो यज्ञते, कामधेनु यह तात ॥१०॥
यज्ञन करि देवन जजो, देव तुमहि फल देहि।
वृद्धि परस्परियों करो, मन बांछत फल लेहि ॥११॥
इष्ट भोग को देत है, देव जजै ते मित्त।
बिन पूजे जे लेत हैं, ते हैं चोरनि चित्त ॥१२॥
यज्ञ शेष जो खात है, पापन डारत धोइ।
यज्ञ बिना जो खात है, अघन लहत है सोइ ॥१३॥

जीव अन्न ते होत है, अन्न मेघ ते होइ ।
मेघ यज्ञ ते होत है, यज्ञ करम ते जोइ ॥१४॥
करम जु उपजहि वेद ते, वेद ब्रह्म ते मान ।
ब्रह्म सु भासत सबन में, ताहि यज्ञ करि जान ॥१५॥
वेद बताये करम जे, जे न करत नर कोइ ।
पापी इन्द्रिय वशि भय, जन्म रहत हैं खोइ ॥१६॥
ब्रह्म बचन हितवैं नहीं, चले पंथ विप्रीति ।
पारथ वाको धृग जन्म, करे विषियन सो प्रीति १७
आत्म सो संतुष्ट जे, आत्मा सों रति होइ ।
त्रिपति सों आत्म सों रहैं, ताहि न करनो कोइ ॥१८॥
ताहि करे ते पुन्न नाहिं, बिन कीने नाहि दोष ।
ब्रह्मादिक सों काज नहीं, आत्म ही सों मोक्ष ॥१९॥

फलहि कामना छांड के, करम करो तुम नित्त ।
संग बिना करमन करै, मुक्ति लहत केहि मित्त ॥२०॥
लही सिद्धि जनकादि जो, कीनै करम समाज ।
लोग रीति जो देख कै, तुम हुं करो सु काज ॥२१॥
बड़े आचार जो जो किये, सोइ मानत आन ।
ताही मग सब जग चले, बड़े सु करैं प्रमान ॥२२॥
मोको करनो कुछ नहीं, तिहुं लोक में काज ।
ना कुछ लायो न लै बनै, करम करत या काज ॥२३॥
जो हौं करमन नहिं करौं, रहौं आलसी मीत ।
त्योंही सब यह नर गहैं, मेरे मग की रीति ॥२४॥
जो हौं करमन नहि करौं, होय सबन को नाश ।
प्रगटाऊं शङ्कर तबै, हनौं प्रजा या आश ॥२५॥

तिनकी बुद्धि भेदन तजै, रहै करम लपटाइ ।
सावधान ज्ञानी रहै, पोखै तेही दाइ ॥२६॥
माया के गुण करत है, सबै करम यह जान ।
अहङ्कार आतम विमूढ़, लेत आपन को मान ॥२७॥
गुण और कर्म विभाग को, जानत तत्व जो कोइ ।
इन्द्रिय विखियन सों लगा, आप माग नहीं होइ ॥२८॥
माया गुण कर मूढ़ जे, रहै विषय लिवलाइ ।
ता मध्य ते ज्ञानी तिनै, देत न कहूं चलाइ ॥२९॥
चित्त अध्यात्म जानके, करमन मोमें राख ।
अहङ्कार ममता तजै, जो देह को अभिलाख ॥३०॥
जो या मेरे मते को, श्रद्धा सों गहिलेत ।
तिनके जीय निहकर्म हों, करम करै तजि चेत ॥३१॥

जो या मेरे मते को, करतब दोष लगाइ।
ते मूरख जानत नहीं, हैं अचेत के भाइ ॥३३॥

ज्ञानवन्त हूं करत हैं, अपनी प्रकृति समान।
सबको निज प्रकृति वश, रोकहिं ते जु अजान ॥३३॥

सब इन्द्रिय के विषय में, राग द्वेष जो होइ।
तिनके वश नर जाइ के, रहे जु अरि सम होइ ॥३४॥

शून्य होइ जो निज धरम, पर ते अध को मान।
मीच भली निज धरम में, परधरमे भय जान ॥३५॥

अर्जुन उवाच ॥

कहिये मेरे कौन के, पुरुष करत है पाप।
जाके इच्छा नाहिनै, करम देत सन्ताप ॥३६॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

यह जु काम अरु क्रोध है, रज गुण ही ते होइ ।
क्यों हूं पूरन होइ नहिं, पापी को अरु जोइ ॥३७॥
अग्नि ढप्यो जो धूम सों, दरपन मल के भाइ ।
गरभ तुचा सों ज्यों ढका, जग इन ताही दाइ ॥३८॥
ज्ञानी हूं को ज्ञान इन, बैरी राखियो झांप ।
काम दोष यह अग्नि है, सकै न कोऊ ढांप ॥३९॥
इन्द्रिय मन और बुद्धि है, याही जाको खान ।
इन करके नासत जु है, ज्ञानी हु को ज्ञान ॥४०॥
अर्जुन ताते आदि है, तू इन्द्रियन को रोक ।
तजो ज्ञान विज्ञान यह, या पापी को ठोक ॥४१॥
इन्द्रिय है सब ते परे, तिनते परे मन जोइ ।
मनते परे जो बुद्धि है, ताते आत्म सोइ ॥४२॥

आत्म लखि बुद्धि ते परे, मन को करि बश माहिं ।
काम रूप और दुसहि को, मार डार नर नाहिं ॥४३॥

इति श्री भ० कर्मयोग नाम तृतीयो अध्यायः ॥३॥

गीता अध्याय ॥४॥

श्रीभगवानुवाच ॥

यही जोग है मैं कह्यो, पहिले रविसों आइ ।
तिनहूं तब मनु सों कह्यो, मनु इषवाकु सुनाइ ॥१॥
परम्परा या योग को, जानत हैं ऋषिराइ ।
बहुत दिना बीते गये, सोऊ योग नसाइ ॥
वहीं पुरानो योग मैं, तोको दियो बताइ ।
का ते तू मो मित्र है, और भगति के भाइ ॥३॥

अर्जुन उवाच

तुम तो प्रगटे हो अबै, सूर पुरातन देव।
तुम कब ताही सों कह्यो, हौं जान्यो नहीं भेव ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

तेरे और मेरे जनम, बीते हैं बहुबार।
तू तिन को जानत नहीं, हौं जानों निरधार ॥५॥
अज अविनाशी प्रगट हों, जगत ईश करतार।
अपनी इच्छा लेत हों, शुद्ध सत्य अवतार ॥६॥
जब अर्जुन जग में घटे, परम धरम के भाइ।
बढत अधर्म जहां तहां, तब हौं प्रगटत आइ ॥७॥
साधन की रक्षा करों, पापी डारो मार।
स्थापत रीति जो धर्म की, युग युग मांझ विचार ॥८॥

मेरे जनम अरु कर्म की, तत्व लहै जो जान।
देह तजै मोको मिले, बहुरि न जनमै आन ॥९॥
राग क्रोध भय को तजै, मो में राखे भाइ।
बहुरि ज्ञान तप करि गहै, मोही माहि समाइ ॥१०॥
जो मोको जैसे भजत, हौं तैसो फल देत।
अर्जुन नर सब जगत में, मेरो मग गहि लेत ॥११॥
करम सिद्ध की चाह करि, पूजत देवन लोइ।
करम किये नर लोक में, सिद्ध बेग दै होइ ॥१२॥
चारो बरण जो मैं रचे, करि गुण कर्म विभाग।
हौं याको करता रहौं, नाहि मोहि अनुराग ॥१३॥
कर्म न मोको लगत हैं, न मोहि फल की चाहि।
ऐसे मोको जो लखै, कर्म न बांधे ताहि ॥१४॥

जो चाहत है मुकति को; करैं कर्म नित चाहि ।
ताते तू भी कर्म करि, पहिलन को मति पाहि ॥१५॥
कवन कर्म सो कर्म जे, रहत पण्डितों माहि ।
मुकति काज सोइ कर्म, कहे देत हौं भाहि ॥१६॥
जान्यो चाहिये कर्म हू, और विकर्म सुभाइ ।
सुनि अकर्म गति लीजिये, गहन कर्म को धाइ ॥१७॥
कर्मन मांझ अकर्म जे, लखैं अकर्मन कर्म ।
बुद्धिवन्त तिन सब किये, मेटे मन के भर्म ॥१८॥
जाके सब आरम्भ निज, बिना कामना होत ।
ताको पण्डित कहत जन, देह कर्म के गोत ॥१९॥
कर्मन फल छाडे सदा, तृप्त रहे नहीं आश ।
ताको कर्मन करत हू लगे न भव की फांस ॥२०॥

जीते इन्द्रिय देहि सब, कामहि पर गृहि जाय।
देहि काज कर्मन करै, पाप न लागत ताहि ॥२१॥
यथा लाभ सन्तोष जो, सुख दुःख लखै न दोय।
सिद्ध आसिद्धि सो एकसे, कर्म न बन्धन होय ॥२२॥
तजै सबै जो कामना, ध्यान लगावै चित्त।
यज्ञ काज़ कर्मन करै, सो न बांधिये मित्त ॥२३॥
होम अग्नि हव ब्रह्म है, अरपै ब्रह्मै जान।
जाय ब्रह्म सो मिलि रहै, कर्म समाधी ठान ॥२४॥
देवन को इक जजत हैं, करत यज्ञ बहु भाय।
एक ब्रह्म में जजत हैं, ज्ञान योग के दाय ॥२५॥
एक जो होमत इन्द्रियन, संयम अग्नि स्वरूप।
विषयन होमत एक हैं, इन्द्रिय अग्नि अनूप ॥२६॥

जेहि इन्द्रियन के कर्म हैं, और कर्म सब प्रान ।
होमत संयम अग्नि में, प्रगट करै चित ज्ञान ॥२७॥
एक जजत हैं द्रव्य सों, एक तपसिया योग ।
एक जो पढ़बोई जजैं, एक ज्ञान सों लोग ॥२८॥
होम आपने प्रान में, प्रान आपने माहिं ।
प्रान आपने रोक के, रहत जो है नरनाहिं ॥२९॥
प्रानन ही में प्रान को, हो मत तजत अहार ।
ये सब जानत यज्ञ को, मेटत पाप विकार ॥३०॥
यज्ञ शेष अमृत भखत, होत ब्रह्म में लीन ।
यहे लोग बिन यज्ञ ही, परिलौकिक हैं छीन ॥३१॥
बहुत भान्ति वेदन कहे, यज्ञ सबै ये जान ।
ते सब जानो करम ते, लेहु मुकति सुख खानि ॥३२॥

द्रव्य यज्ञ ते है बड़ो, ज्ञान यज्ञ सुन भाय ।
जिते कर्म वेदन कहे, ज्ञानहिं रहे समाय ॥३३॥
कीजै बहुती नम्रता, सब प्रसन्न सब भांत ।
ते ज्ञानी उपदेश हैं, ज्ञान जिनहुं है शात ॥३४॥
अर्जुन तू याकै लहै, रहो नहीं फिर मोह
सब जीवन को देख तू, आप मांझ कै मोह ॥३५॥
सब पापन में जो बड़ो, पापी नाहिं तू होय ।
ज्ञान नाव चढ़ि उतरहैं, पाप सिंधु तुम जोय ॥३६॥
जैसे ज्ुआला सिंधु को, डारत सबही जार ।
ज्ञान ताहीं सम प्रबल भी, डारत करमन बार ॥३७॥
ज्ञान समान न लोक में, पावन दूसर और ।
योग साधना जो करै, लहै ज्ञान की ठौर ॥३८॥

इन्द्रिय जित सरधा सहित, पावै ऐसो ज्ञान।
सो ज्ञानी तत्काल ही, लहे शांति सो जान ॥३६॥

जो मूरख सरधा विना, ताको होय विनास।
वाको यही सन्देह है, सो दुइ लोक निरास ॥४०॥

मोको अरपै कर्म करि, करै सन्देह सु दूरि।
ज्ञानं बंधै न कर्म करि, रहै सदा सुख पूरि ॥४१॥

सन्देह सकल अज्ञान ते, उपजत अर्जुन आहि।
ज्ञान खड्ग सों काटिये, योग करै किन ताहि ॥४२॥

इति० श्री भ० ज्ञान विभाग योगो नाम चतुर्थो अध्यायः ४।

॥ गीता अध्याय ५ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कबहुं कहत संन्यास को, कबहुं कर्म को योग ।
निश्चय करि एकै कहो, मेटो कि न भव रोग ।

श्रीभगवानुवाच

कर्म योग संन्यास अरु, दोउ ये शुभ दैन ॥
कर्म योग संन्यास में, कर्म न लहीयत चैन ॥२॥
द्वेष तजै चाहि तजै, सो संन्यासी जान ।
राग द्वेष ते जो रहत, ताही छूटियो मान ॥३॥
योग सांख्य को दो कहत, मूरख पण्डित नाहिं ।
दोउअन में एकै भजै, दोउ फलत हैं ताहि ॥४॥
स्थान जो लहिये सांख्य ते, सो योगहि ते होय ।
सांख्य योग एकै गनै, ताको ज्ञानी जोय ॥५॥

लेत संन्यासहि दुःख सो बिन करमन रे मीत।
योग युगत जो करत है, लेत ब्रह्म निहचीत ॥६॥
इन्द्रियजित होय शुद्ध हिये, योग युगत जो कोय।
जीवन जानै आत्मा, करम लिपात न होय ॥७॥
ज्ञानी करमन करत है, किये लेय नहिं मान।
संघत देखत छुहत पुनि, सुनत डोल हू जान ॥८॥
सोवत जागत बोलते, और डार हू देत।
इन्द्रिय विषियन में परी, जानत हौं यही हेत ॥९॥
करम करै तजि संग को, सब को ब्रह्म जान।
ताको पाप न लगत है, पदम-पत्र जल मान ॥१०॥
देही मन बुद्धि इन्द्रियन, योगी होय निहसंग।
करम करत अति चाह सों, चित्त शुद्धि के ढंग ॥११॥

ज्ञानी मुक्ति हूं लहै, करम करै फल छाड।
मूरख फल की आश करि, बंधत कामना आड ॥१२॥
मन करि कर्म जे करत हैं, तेही ज्ञानी जान।
नव द्वार पुर में बसत, लेत सुखन की खानि ॥१३॥
ईश्वर नहीं कर्मन करत, निहकर्मन करतार।
कर्म फलन कूं नाहिं करत, प्रकृति करत विस्तार॥१४॥
सुकृत न काहू की गहत, अवर पाप नहीं लेय।
ढांपियो ज्ञान अज्ञान ते, मोह न प्रगटन देय ॥१५॥
दूरि कियो अज्ञान जिन, हिये ज्ञान प्रगटाय।
देखत ही स्व स्वरूप को, ज्ञान सूर के दाय ॥१६॥
जो मनको अरु बुद्धि को, राखत ईश्वर माहि।
जन्म मरन तिनको नहीं, मुक्ति होत नरनाहिं ॥१७॥

विद्या बिन लिये द्विज जो, गौ गज स्वपचा स्वान ।
ज्ञानी इनको सम गनत, भेद लते नहीं मान ॥१८॥
सम्यत जिनके हिये मों, तिन जीत्यो संसार ।
समता ब्रह्महि को कहत, ब्रह्म लीन निरधार ॥१९॥
सुख पाये हरषे नहीं, दुःख पाये न रिसाय ।
राखे स्थिर निज बुद्धि को, ब्रह्मै रहै समाय ॥२०॥
बाहिरे के सुख को तजै, हिय सुख रहे सुजान ।
ब्रह्म विषय चित को धरत, लेहि आनन्द हु मान ॥२१॥
विषय जिते संसार के, ते हैं दुःख के मूल ।
उपजत बिनसत हैं सदा, पण्डित गाहित न भूल ॥२२॥
काम क्रोध के वेग को, जो सहि सकै सुभाय ।
ते योगी नित्यहूं रहे, स्थिर सुख में लपटाय ॥२३॥

जाके हिये प्रकाश है, अन्तरि सुख आराम।
वह योगी परब्रह्म है लहै ब्रह्म को धाम ॥२४॥
जो ज्ञानी पापन तजै, होत ब्रह्म में लीन।
भेद न तिनके जीय में, रहत सबन सों दीन ॥२५॥
काम क्रोध ते जो रहत, वशि कीनो निज चित्त।
ज्ञानवन्त ते है सदा, ब्रह्म चहूं दिस हित्त ॥२६॥
तजै विषय संसार को, दृष्टि भौंह मध्य राख।
प्रान आपने सम करत, नाशा मध्य अभिलाष ॥२७॥
जीते इन्द्रिय बुद्धि मन, मुकती में मन देय।
इच्छै भय क्रोधहि तजै, मुकति पदारथ लेय ॥२८॥
तपत यज्ञन को भोग कै, सब लोगिन को ईश।
शांति लहै यों जान कै, मोको प्रभु जगदीश ॥२९॥

इति श्री म० संन्यास योगो नाम पंचमो अध्यायः ॥५॥

गीता अध्याय ॥६॥

श्रीभगवानुवाच ॥

कर्म फलन चाहै नहीं, करे कर्म निहकाम ।
योगी संन्यासी है वही, पावत है निज धाम ॥१॥
याको संन्यासी कहैं, वही योगी तू जान ।
बिन सन्यासहि योग नहि, यहै साच तू मान ॥२॥
योग लहि शांतहि गहै, विषय इन्द्रियन मारि ।
योगहि कर्मन ते लहत, ज्ञानी चित्त विचारि ॥३॥
विषियन सो अरु कर्म सों, होय प्रीति जब दूरि ।
सब संकल्पन को तजै, योग रहे जब पूरि ॥४॥
निज आतम को उद्धरत, अधो गमत जु करेय ।
आतम ही रिपु आप को, आतम ही सुख देय ॥५॥

आपहि जीतो आतमा, सोई बन्धु जु याहि ।
निज आतम जीतो नहीं, अरि जानिये ताहि ॥६॥
जिन जीत्यो है आतमा, शांति लहै वह ज्ञान ।
शीत्त ऊष्णा सुख दुःख सबै, और मान अपमान ॥७॥
जानत ज्ञान विज्ञान यों, अरु इन्द्रियजित जोय ।
सोना पाहन एक सम, गनै सो ज्ञानी सोय ॥८॥
मित्र उदासी शत्रु पुनि, अरु निज बन्धु समान ।
साधू पापी चित्त में, गनै एक उनमान ॥९॥
बैठे एकान्त एक चित्त, योगी साधै योग ।
एका एकी चाह नहीं, कछु लोरे सुख भोग ॥१०॥
ठौर पुनीत निहार के, करि आसन तत्काल ।
नहि ऊंचो नीचो नहीं, पटकुश अरु मृगछाल ॥११॥

करि बैठै मन को जु स्थिर, सब इन्द्रियन को जीत।
करके आतम शुद्ध निज, योग करै यह रीति ॥१२॥
काया शिर अरु ग्रीव को, राखे एक समान।
दृष्टि धरै निज नासका, वेष नहि दिश आन ॥१३॥
शांति गहै भय को तजै, ब्रह्मचर्य ब्रत लेय।
मो मैं राखै रोक मन, लहै योग्य को भेय ॥१४॥
यह विधि करै जु योग्य को, निज मन को स्थिर राख।
शाति लहै मोको मिले, लहै अमीरस चाख ॥१५॥
जोग्य लेय नहि बहु भषे, बिन खाये हू मित्त।
सोवत हू जागे नहीं, अति वरजत हूं नित्त ॥१६॥
युकति अहार व्यवहार जो, कर्म युगति पुनि होय।
जागत सोवत जो युगति, डारे पापनि धोय ॥१७॥

जब निज चित को रोक कै, राखत आतम माहि।
तजै सबै जो कामना, सो योगी नरनाहि ॥१८॥
जैसे दीप समीर बिन, रहे ज्योति ठहराय।
योगी निश्चल चित्त को, उपमा है यह दाय ॥१९॥
योगी सेवत योग को चित्त हिये ठहराय।
निरखत आतम को तहां, रहत सदा सुख पाय ॥२०॥
जो सुख इन्द्रिय ते परै, बहुत बुद्धि गहि लेत।
वा सुख को जानत तबै, ता पाछे है नेत ॥२१॥
यों पायो लाभन अधिक, अवर जान रे मित्त।
स्थिरता गहि डोले नहीं, बहु दुःख पायो चित्त ॥२२॥
दुःख ही को संयोग को, मान लेत सु वियोग।
निश्चय करि योगहि करै, ताको कहत जो योग ॥२३॥

संकल्प न कीजै कामना, तिनै तजै चितलाय ।
मन सों रोकै इन्द्रियन, योग करै यह भाय ॥
धीर्य धर्म और बुद्धि करि, सनै सनै सब त्याग ।
कछुये करै न कामना, आतम सों अनुराग ॥२५॥
मन चञ्चल जित जित चलै, ताको राखै रोक ।
करि संयम निज आतमा, वसि करि ताको टोक ॥२६॥
जाके मन में शांति है, पाप रहत जों होय ।
मगन जो ब्रह्मानन्द में ,ता योगी को जोय ॥२७॥
योगी यह विधि करै योग, अरु पापन को त्याग ।
सहजै ब्रह्म कै सुख लहै, सदा रहत अनुराग ॥२८॥
मोहि लखै सब ठौर जो सब को मोही मोहि ।
मोको देखत सो सदा, मैं हूं देखत ताहि ॥२९॥

व्यापक हौं सब जीव्र में, मोको सेवे कोय।
कैसे हू कतहूं रहै, ताको मो में जोय ॥३०॥
सर्व विषे स्थित मैं रहौं, इक पल भजे जु मोहि।
रहै कौन हूं भांति वह, सो यह वरतत जोंहि ॥३१॥
सब को देखे आप सम, सुख दुःख एकै भाय।
सो योगी सब ते बड़ो, मो में रहै समाय ॥३२॥

अर्जुन उवाच ॥

योग कहो तुम कृष्ण जू, मोको एक समान।
चञ्चल मो चित गहै न, जो तुम करो बखान ॥३३॥
मन है चञ्चल कृष्ण जू, बहुत क्षोभ करि जान।
ताको रोकन पवन सम, अति है कठिन समान ॥३४॥

श्री भगवानुवाच ॥

अर्जुन तुम सांची कही, मन चंचल न गहाय ।
योग किये वैराग्य सों, नीके पकरो जाय ॥३५॥
जिन्हन पकरयो चित्त जिन, तां पै योग न होय ।
जिन अपनो मन वश कियो, लेत जतन सों सोय ॥३६॥

अर्जुन उवाच

अजिती अरु सरधा सहित, जागै भ्रष्टता पाय ।
लहि न सिद्धि सो योग की, कौन गती को जाय ॥३७॥
किधों दुहन ते भ्रष्ट होय, बादर ज्यों बिनसाय ।
ताको कछु न आसरो, रहो मूढ केहि भाय ॥३८॥
मेरे या संदेह को, करो दूर जगदीश ।
मेटहु या संदेह को, कौन करै तब रीश ॥३९॥

श्री भगवानुवाच ॥

अर्जुन दोऊ लोक में, ताको होय न नास।
भले करम जे करत हैं, तिन को नाहिं अघबास ॥४०॥
पुण्यवंत के लोक लहि, रहत बहुत दिन जाय।
योग भ्रष्ट धनवंत जो, तिन घरि जनमैं आय ॥४१॥
बुधिवंत योगी कुलनि, आन लेत अवतार।
जनम लहनि ऐसे घरनि, दुरलभ है निरधार ॥४२॥
तिनहूं पहिली देहिको, लहत बुद्धि संजोग।
जतन करत हैं सिद्धि को, बहु विधि साधै योग ॥४३
सो तो अपने वश्य नाहिं, होयहि प्रथम अभ्यास।
ताते उपजै योग हु, ब्रह्म शब्द है वास ॥४४॥
योगी जो यतनै करै, डारे सब अघ धोय।
बहुत जन्म सिद्धी लहे, ताहि परम गति होय ॥४५॥

तपसी हूं ते जो अधिक, ज्ञानी हूं ते जान ।
कर्मन हूं ते है अधिक, अर्जुन योगहि मान ॥४६॥
जो योगी राखहि मते, मो में निश्चल भाय ।
श्रद्धायुत मोको भजे, सो सब ते अधिकाय ॥४७॥
कर्म ज्ञान व्रत योग ते, भक्ति सबन सिर मौर ।
तिन अर्जुन हौं बस कियो, मो बिन छिन नहीं और ॥४८॥

इति० श्री भ० आत्म संयम योगो नाम षष्ठमो अध्यायः ६ ।

॥ गीता अध्याय ७ ॥

श्री भगवानुवाच ॥

मेरो ही कर आसरा, मोही में चित राख ।
मोको जाने सत्य वह, यों समझावौं भाख ॥१॥

ज्ञान और विज्ञान हौं, तोसों कहत बखान।
जाके जाने जानिबो, कछु न रहत है आन ॥२॥
यत्न करत है सिद्धि को एक हजारन माहिं।
तिनहूं में कोउ लहै, बहुत लखत मोहिं नाहिं ॥३॥
भूमि नीर पावक पवन, अंबर मन बुद्धिमान।
अहंकार है आठवों, माया भेद सुजान ॥४॥
माया मेरी एक यहि, जिनहिं गहियो संसार।
सांची मन में मान ले, जीव रूप निरधार ॥५॥
माया ते उत्पन्न है, सभी जीव इह दाय।
हौं उपजावों जगत सब, नाश करों चित चाय ॥६॥
अर्जुन मोते जो परे, और बात नाहिं जान।
ज्यों मणि पोयो सूत में, मो में पोयो मान ॥७॥

चांद सूरज की किरण हौं, जल रस मोको मान।
वेदन में हौं ही प्रणव, पौरुष शब्द बखान ॥८॥
गन्ध जु हौं ही भूमि में, हौं पावक में तेज।
जीवनहू में जीव हौं, तपस्विन तप लख लेख ॥९॥
सब जीवन को बीज हौं, मोको जान जु लेह॥
बुधिवन्तों में बुद्धि हौं, सब तेजन को गेह ॥१०॥
बल बलवन्तन को जु हौं, काम राग तित नाहिं।
काम रूप हौं ही जु हौं, धर्म बस मोहि माहिं ॥११॥
राजस तामस शांति के, जे हैं सगरे भाहि।
ए सब मो में बसत हैं, मोहि न इनसे चाहि ॥१२
तीनों गुण के भाय जो, तिन मोहिया संसार।
मोको जो कोउ न लखत, इनते पहिले पार ॥१३॥

मेरी माया गुणमयी, दुस्तर तरी न जाय ।
आवै जो कोउ मो सरण, सो जु तरै सुख भाय ॥१४॥
पापी मूर्ख जो जगत, सो नहीं पावत मोहि ।
ज्ञान जु माया कर रह्यो, असुर गुनन में पोहि ॥१५॥
पुण्यवन्त जे चार विधि, मोहिं भजैं चित ऐन ।
ज्ञानी रोगी काम युक्त, जिज्ञासी सुन बैन ॥१६॥
ज्ञानी जो भगताहि करै, सो सब ते अधिकाय ।
ज्ञानी को भल भजौ हौं, ज्ञानी मोहि सुहाय ॥१७॥
मेरे मत एहि सब बड़े, ज्ञानी मोको जान ।
उत्तम गति पाई तिनै, फलन लेत नहीं मान ॥१८॥
बहु जन्मन मोको लहे, ज्ञानवन्त रे मित्त ।
वासुदेव सब में लखे, मो दुर्लभ है नित्त ॥१९॥

ज्ञान जिनके हिए में, साधत औरें देव ।
अपने काम स्वभाव सों, बंधे जो तेहि भेव ॥२०॥
सरधा युत जो पूजही, जा देवन चित लाय ।
तांको ताही माझ हौं, सरधा दऊं बढ़ाय ॥२१॥
सो वाही सरधा सहित, पूजत वाहू देव ।
देत जु हौं ही कामना, वह जानत नहिं भेव ॥२२॥
फल थोड़े पावत जु वै, बिना ज्ञान ही मूढ़ ।
देव भगत देवन लहै, मेरो मोको गूढ़ ॥२३॥
जाके थोड़ी बुद्धि है, जानत प्रगट न मोहिं ।
अविनाशी उत्तम जु हौं, सब ते न्यारो जोहि ॥२४॥
ढकिउ जो माया जोग हौं, काहू को न प्रकास ।
मूरख मोहि न जानई, अजर अमर सुखरासि ॥२५॥

जो बीतियो जानत तिनैं, बर्तमान हूं मित्त ।
होनहार सब को लखों, मोहि लखे नाहि चित्त ॥२६॥

राग द्वेष अज्ञान ते, सब जो मोहत होत ।
मान लेत हौं, आप को, हम कहि मुखन उदोत ॥२७॥

पुण्य करै जो जगत मैं, दूर किये निज पाप ।
तेई छूटत मोह ते, मोको पावत आप ॥२८॥

जरा मरन को हानि को, जो कोउ करत उपाय ।
जानत ते अधियात मैं, ब्रह्म कर्म के भाय ॥२९॥

अधिदैवक अधिभूत जो, मोको जानत मित्त ।
मरन समय भूलत नहीं, योगी मेरे चित्त ॥३०॥

इति श्री भ० सूप० ब्र० विद्यायोग०कृ० अ० मं० ज्ञा० वि० यो० ध्या०

गीता अध्याय ॥८॥

अर्जुन उवाच ॥

अध्यात्म और ब्रह्म को, कर्म कहा जगदीस ।
अधिदैवक अधिभूत को, जानत बिस्वे बीस ॥१॥
अधियज्ञहि कासो कहित, या देही में कौन ।
कैसे तुमको जानही, प्राण करत जब गौन ॥२॥

श्रीभगवानउवाच ॥

अक्षर सो ब्रह्मै कहत, अध्यात्म जु सुभाय ।
जो उप जावत जगत सब, सोई कर्म सुदाय ॥३॥
देह जु है अभिभूत इहु, अधिदैवक है जीव
सब देहन की देहि में, अधियज्ञ सुपीव ॥४॥
। समय देही तजै, मो सिमरन जो होय ।
तबही मोको मिले, तहां न संसय कोय ॥५॥

प्राणी जब देही तजै, सिमरे जोई काज ।
या मैं संसै नाहिनै, पावै सोई साज ॥६॥
मेरो सिमरन नित्य करि, युद्ध करै किन मिन्त ।
अरपै मो मैं बुद्धि मन, होइ हैं तू अचिन्त ॥७॥
योग और अभ्यास मैं, जाको चित स्थिर होय ।
मो चिन्ता राखै सदा, पुरुष हि पावै सोय ॥८॥
सब करता सूक्ष्म जु अति, कथसु पुरातन मान ।
रवि समान सब ते परे, सिमरन ताको जान ॥९॥
मरन समय मन स्थिर करै, भगति योग फल पाय ।
त्रिकुटी मध्य प्राणहि धरै, परम पुरुष मैं जाय ॥१०॥
अक्षर जा सो कहत हैं, बीत राग जहां जात ।
ब्रह्मचर्य को जो लहै, ता पद को यह बात ॥११॥

सब द्वारन को बसि करै, मन रोके हिय माहि ।
प्राणहि राखे सीस में, रहे धारना गाहि ॥१२॥
प्रणव अक्षर को जपु करे, सिमरे मोको नित्त ।
इह विधि जो देही तजै, लहे परमगति मित्त ॥१३॥
स्थिर चितहूं मोको जपै, सदा निरन्तर होय ।
ता योगी को सुलभ हौं, और लहे नहीं कोय ॥१४॥
महा पुरुष सिधहि लहे, मो में होत जु लीन ।
दुःख को घर जो जनम है, ता में होत न दीन ॥१५॥
ब्रह्मलोक लौं लोक जे, तिन ते फिरत जु लोय ।
अर्जुन मोको पायके, जनम लेत नाहि कोय ॥१६॥
सहस्र युगन के अन्त लौं, ब्रह्मा का दिन जान ।
रात्रिहूं तितनी होत है, ज्ञानी करत बखान ॥१७॥

ब्रह्मा के दिन होत ही, प्रगटत यह संसार।
निस के आए जात है, माया में ता बार ॥१८॥
बार बार उपजत सभी, जीवन सुन रे मित्त।
ब्रह्मा के दिन रैन में, बेह जात हैं नित्त ॥१९॥
ब्रह्म जु माया ते परे, इन्द्रियन गाहियो न जाय।
सब जीवनि के नसत ही, सो कतहूं न नसाय ॥२०॥
सोई अक्षर परमगति, ताहि न देखै कोय।
फिरे न जाको पायके, परम धाम मम जोय ॥२१॥
भगति करे ते पाइये, परम पुरुष सो जान।
जा में सगल जीव हैं, जग विसतारियो आन ॥२२॥
फिरि आवत जा काल में, नाहि आवत जा काल।
अर्जुन तोसों कहत हों, सुनियहि सीख रसाल ॥२३॥

जगत जोत दिनशुक्लषट उतरायण के मास ।
जात जो ज्ञानी वा समय, लहत ब्रह्म में वास ॥२४॥
धूम निशा दच्छिण अयन, कृष्ण पच्छ जो होय ।
मम मण्डल योगी लहे, फिरि आवत है सोय ॥२५॥
शुक्ल कृष्ण यहि गति कही, ते संसारहि होत ।
फिरि आवत है एक गति, एक लहत हैं जोत ॥२६॥
जो जाने दोऊ गतिन, ता योगी मोहु न कोय ।
योगी होय अर्जुन तुही, सब कालन को जोय ॥२७॥
वेद यज्ञ तप दान को, फल कहियो है मित्त ।
योगी ता फल को लहे, सब ते रहै निचित्त ॥२८॥

इति श्री म० महापुरुष योगो नाम अष्टमो अध्यायः ॥८॥

गीता अध्याय ॥९॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अर्जुन तोसों कहत हौं, एक गुप्त इहु बात ।
समझे ज्ञान विज्ञान को, कहैं मुकति विख्यात ॥१॥
उत्तम विद्या राज है, अति पवित्र तू जान ।
फल ताके प्रतच्छ हैं, करवो हुं सुख मान ॥२॥
करबे हुं या धरम के, जाके शरधा नाहि ।
ते मोको पावत नहीं , डोलत हैं भव माहि ॥३॥
बिसतारिउ सब जगत मैं, मोहि न देखे कोय ।
सब जीअन मो में बसें, मोहि न तिन मे जोय ॥४॥
मो में कोऊ नाहि बसत, याहि ईश्वरता देख ।
उपजावत पालत युहीं, नाहि तिन मैं अवि रेख ॥५॥

जैसे पवन आकाश में, फिरत रहे सब बार।
तिउं मो में सब जीव ए, फिरत जान निरधार ॥६॥
मेरी माया में रहे, प्रलय भय सब जन्त।
काल आदि सिरजों तिनै; मो में तिन को तन्त ॥७॥
अपनी माया लय जु हों, सिरजत बारम्बार।
माया हूं के बसि परिउ, रहै सदा संसार ॥८॥
अर्जुन मोको करम वै, कबहूं बांधत नाहि।
सदा उदासी रहत हौं, नाहि आसक्त तिन माहि ॥९॥
हौं प्रेरत माया यही, जब उपजत संसार।
पारथ याही हेत ते, फिरत जु बारम्बार ॥१०॥
मोको मानुष्य जानके, आदर करत न कोय।
मूर्ख इउं जानत नहीं, इहै जु ईश्वर होय ॥११॥

उनकी आशा सफल नहिं, ज्ञान कर्म नहीं भाय।
प्रकृति आसुरी राक्षसी, ता में बूड़े धाय ॥१२॥
देव प्रकृति में जे मिले, काम क्रोध को त्याग।
ते मोको जानत सबै, रहत जु हैं अनुराग ॥१३॥
कीर्तन मेरो ही करैं, जानत मो व्रत राख।
भगति सहित मोको निवत, मेरे ही गुण भाख ॥१४॥
ज्ञान यज्ञ करि जजत हैं, मोको सेवत मीत।
कोऊ मानत एक करि, कोऊ बहुत पुनीत ॥१५॥
हौं ही घृत अरु यज्ञ हौं, सुधा औषधी जान।
हौं पावक अरु होम हौं, मन्तर मोको मान ॥१६॥
माता पिता या जगत को, हौं ही हौं करतार।
ऋग यजु साम अथर्व हौं, और वेद ओंकार ॥१७॥

गत निवास भरता सरणि, साक्षी प्रभु अरु बंध।
प्रलय अस्थान निधानअहु, बीज प्रभाव आबंध ॥१८॥
तपत गहत छोड़ जु हौं, बरषत मोही जान।
अमृतामृत कारण करन, हौं ही अर्जुन मान ॥१६॥
यज्ञ करत पापन दहत, चाहत स्वर्गहि बास।
इन्द्र लोक लग भोग वै, दिव्य लोग सुविलास ॥२०॥
फिर आवत भू लोक में, क्षीण पुण्य जब होय।
आवागवण जु करत हैं, काम वंत जु लोय ॥२१॥
भगत जु करे अनंन होय, मो में ही चित राख।
योग क्षेम तिन के करों; निज जनकी अभिलाष ॥२२॥
अवर देव के भगत जे; सेवत सरधा वंत।
दुबिधा छोड़ मोको भजत, लहत मोहि ही तंत ॥२३॥

सब जगतिन को भोगता, और सबन को ईश।
ते मम तत न जानही, डारों तिन को घीश ॥२४॥
देव भगत देवन लहै, पित्री पूज पित्र स्थान।
भूत जजै भूतन लहै, मो पूजै भगवान ॥२५॥
पात फुल फल नीर को, जो अरपै कर प्रीति।
लेउं देउं भक्ती वसों, किए प्रेम की रीति ॥२६॥
जो करे औ खात है, जो होमत जो देत ॥
अर्जुन जो तू तप करे, मोहि देहि कर हेत ॥२७॥
भले बुरे जे कर्म हैं, तिनते छुट हे मीत।
जुगति जोग संन्यास करि, मोहिमिल होइ निहचीत ॥२८॥
हौं सब ठौर समान हौं, मेरी प्रीति न द्रोह।
मोको सेवत भगत जे, तिनसे मोको मोह ॥२९॥

दुराचारि मोंको भजै, होय अनन्त युत भाय।
ताको तुम साधू गिनो, सुनि निश्चय कै दाय ॥३०॥
वेग होहु धर्मात्मा, शांति लहै बहु भाय।
अर्जुन निश्चय जान तू, नहिं मो भगति नसाय ॥३१॥
अर्जुन सेवत मोहि जो, पाप योनिहूं होय।
त्रिया शूद्र अरु वैश्य, पुनि लहै परमगति सोय ॥३२॥
द्विज क्षत्री अरु भगत वर, राज ऋषि सुख भाय।
सुख अनित या लोक को, मोको भजे चितलाय ॥३३॥
मोको भज जन नम्र हो, मो ही में मन राख
यह युगति तू मोहि मिल, प्रेमन सों अभिलाष ॥३४॥

इति श्री भ० ब्रह्म विद्यायोग०श्रीकृष्ण०अ० सं० नाम नवमो अध्या ९



गीता अध्याय ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच ॥

भली बात तोसों कहौं, सुन अर्जुन चितलाय।
होय प्रसन्न तोसों कहत, तेरे हित के भाय ॥१॥
देवऋषि नहीं जान हैं, मो उत्पत हूं मीत।
देव ऋषिन की आदि हौं, नितही रहत पुनीत ॥२॥
अज अनादि जगदीश पुनि, मोको लषत जु कोय।
सब में ज्ञानी वेह बड़ा, पापन डारत धोय ॥३॥
बुद्धि ज्ञान सम दम क्षमा, आव्याकुलता होय।
सुख भव दुःख औ भाव भय, और अभ्यता जोय ॥४॥
तोष अहिंसा दान तप, सम जस अजस सुजान।
जीवन के हैं सुभाव एह, मोते होत सु मान ॥५॥

सातो ऋषि अरु चारमुनि, मो मनते जु उदोत।
सब लोगन में हैं बड़े, इनहीं के हैं गोत ॥६॥
मेरी योग विभूति को, तत्व ज्ञान जो लेत।
निश्चल योगहि सो लहत, लहत जु याही हेत ॥७॥
मैं हौं ईश्वर जगत को, मो ही ते सब होय।
ज्ञानवन्त यहि जान के, मोही सेवत सोय ॥८॥
प्राण-चित्त मोसें धरत, बोध परस्पर देत।
मेरे चरित ही कहत नित, मान तोष सुख लेत ॥९॥
सेवत मोको ते सदा, भगत योग के भाय।
भली बुद्धि वह लेत नित, रहत जो मो में आय ॥१०॥
तम अज्ञानहिं दूरि करि, दयावन्त ही होत।
करहुं जु, तिनके हिये में, ज्ञान दीप उद्योत ॥११॥

अर्जुनोवाच ॥

परब्रह्म परम पवित्र तुम, अपरम्पर को धाम ।
अविनाशी अज पुरुष हो, आदि देव तुम नाम ॥१२॥
सब ऋषि यों ही कहत हैं, नारद देव लजान ।
व्यास अगस्त्य सबहुं कहत, तांते लीजै मान ॥१३॥
जो कछु तुम मोसों कहत, मानत हौं सत भाय ।
दानव देव न जानहीं, तुम प्रगटे तुम दाय ॥१४॥
आपन को आपे लखो, तुम पुरुषोत्तम देव ।
जीवन उपजावत रहत, पालत देवन देव ॥१५॥
निज विभूति मोसों कहो, प्रभु जी चित के भाय ।
जो विभूति श्रीकृष्ण जू, रही जगत में छाय ॥१६॥
ध्यान तुम्हारा करत प्रभु, जानहुं कैसे तोहि ।

कोन पदारथ में लखों,सो समझावो मोहिं ॥१७॥
योग विभूति जु आपनी, कहिये मोसों देव ।
मोको तृप्ति न होत है, सुनत अमीरस भेव ॥१८॥

श्री भगवानुवाच ॥

अर्जुन तोसों कहत हों, निज विभूति विस्तार ।
मुख्य जिती तितनी कहत, हिये के दृग निहार॥१९॥
सब जीवन के हिये में, मोहीं आत्म जान ।
आदि अन्त अरु मध्य हौं, मोही सब में मान ॥२०॥
आदित्यन में विष्णु हौं, जो तन में रवि देख ।
वायन मांझ मरी हौं, नक्षत्रन में शशि लेख ॥२१॥
साम वेद हौं वेद में, इन्द्र अमरगण माहि ।
जविन में हूं चेतना, मन इन्द्रियन के मांहि॥२२॥

रुद्रन में शङ्कर जु हौं, यक्षण मांझ धनेश ।
पावक हौं ही वसन में शैल सुमेरु सुदेश ॥२३॥
देव पुरोहित मुख्य जो, मोहि वृहस्पति मान ।
षट मुख सेनापतिन में, सर में सागर जान ॥२४॥
हौं जु हौं भृगु ऋषिन महिं, वाकन में ऊँकार ।
जप में जप गायत्रि हौं, स्थावर में हिमधार ॥२५॥
वृक्षण में पीपल जु हौं, मुनिन में नारद देव ।
गन्धर्वन में चितरथ हौं, सिद्ध कपिलमुनि भेव ॥२६॥
अश्वन में उच्चैश्रवा, गजन ऐरावत नाम ।
हौं जु नृपत हौं नरन में, पोषत सब के काम ॥२७॥
हथियारन में वज्र हौं, कामधेनु हौं गाय ।
काम प्रजापति मांझ हौं, बाशक सर्पन माहि ॥२८॥

नागन मांझ अनन्त हौं, बरन जु हौं जल वन्त ।
पित्रन में हौं अर्यमा, यम हौं संयम वन्त ॥२९॥
दैत्यन में प्रह्लाद हौं, बसीकरन में काल ।
सिंह जु हौं सब मृगन में, पक्षिरण में रिपु वियाल ॥३०॥
उतावलन में पवन हौं, शास्त्र धारणि में राम ।
जल जन्तुन में मच्छ हौं, नदी गङ्ग अभिराम ॥३१॥
अध्यात्म विद्यायन में, बाद हौं बादिन माहि ।
आदि अन्त अरु मध्य हौं, सभी सृष्टि को नाहि ॥३२॥
अक्षरन मांझ ओंकार हौं, द्वन्द समासन जान ।
हौं ही अक्षय अकाल हौं, धियाता मोको मान ॥३३॥
हौं सभ को संघात हौं, और उपावन हार ।
श्री कीरति सारस्वती, क्षमा हौं बुद्धि संभार ॥३४॥

महां शाम हौं शाम मैं, गायत्री माहिं छन्द ।
मृगाशिर हौं ही मास मैं, ऋतु वसन्त सुख कन्द ॥३५॥
जूआ हौं सब छलन मैं, तेज वंशन मैं तेज ।
जय अरु उद्यम सत हौं, सत सतवन्तन केजु ॥३६॥
यदुकुल मैं हौं कृष्ण हौं, अर्जुन पांडवन माहि ।
मुनिन माझ हौं व्यासमुनि, गनो शुक्र कवि माहि ॥३७॥
दण्डवन्तन मैं दण्ड हौं, जीत वन्त को नीति ।
ज्ञानन मैं हौं ज्ञान शुभ, मो न दुरावत रीति ॥३८॥
औषधि मैं जो अन्न हौं, कंचन धातुन माहि ।
सर्व तृणन मैं दर्भ हौं, यों समझो नर नाहि ॥३९॥
सब जीवन मैं बीज हौं, अर्जुन मोको जान ।
विचर रहा संसार मैं, मो बिन कछू न आन ॥४०॥

मेरी दिव्य विभूति को, अन्त न जानियों जाय ।
यहि तो थोरो सो कहियो, मैं विभूति को भाय ॥४१॥
जो कछु या संसार में, काहू गुण आधि काय ।
सो सब मेरो तेज है, दीनों तोहि बताय ॥४२॥
बहुत कहा तोसों कहूं, अर्जुन बात बनाय ।
सब जग अपने अंश में, मैं राखियो ठहराय ॥४३॥

इति श्री म० विभक्ति योगो नाम दशमो अध्यायः ॥१०

गीता अध्याय ॥११॥

अर्जुन उवाच ॥

मो ऊपरि कीनी दया, अध्यात्म प्रगटाय ।
बचन तुम्हारे सुनत ही, मोहु जु गयो नसाय ॥१॥
जीवन की उत्पत्ति सुन, और प्रलय की रीति ।

कही जु तुम विस्तार सों, आतम की शुभ रीति ॥२॥
यों ही है ज्यों कहत हौ, हरि जू अपने भेव।
देख्यो चाहत हौ अबे, रूप तुम्हारो देव ॥३॥
देखन योग जो मोहि को, जानत हौ यदुराय।
अविनाशी निज रूप तब, दीजै मोहि दिखाय ॥४॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अर्जुन अब तू देख ले, शत सहस्र जो रूप।
बहुत भान्त हैं दिव्य जो, नाना वर्ण अनूप ॥५॥
देखि रुद्र आदित्य सब, असन सुत मुहि मांहि।
अवरे अर्जुन रूप जे, पहिले देखे नाहि ॥६॥
एक ठौर मो देहि में, स्थिर चर रहे समाय।
देखियो चाहत जो कछू, सोई देऊं दिखाय ॥७॥

इन नैनन नहि देख हैं, देवहुं दिव्य दृग तोहि ।
ऐश्वर्य योग संयुक्त तूं जैसे देखे मोहि ॥८॥

संजय उवाच

योगेश्वर श्रीकृष्ण जू, कहे वचन या भाय ।
परम रूप ईश्वर जु हैं, जाते देत प्रगटाय ॥९॥
बहु आनन लोचन बहुत, देख जु अचर्ज होत ।
भूषत नाना भूषणां, शस्त्र अनेक अदोत ॥१०॥
दिव्य हार दिव्यं वसन, दिव्य सुगन्धि लगाय ।
अगनत रूप मुख हैं तिते, शोभत नाना भाय ॥११॥
सहस्र रवि आकाश में, पूरि रहे सो जोत ।
दीपतता प्रभु की लसे, तऊ न समता होत ॥१२॥
भिन्न भेद जे जगत में, देखे सब इक ठौर ।

देव देव को देह में, अर्जुन देखे और ॥१३॥
ताको तब अचरज भयो, रोम हरष के दाय।
ता देवहि प्रणाम करि, बोलियो चित के चाय ॥१४॥

अर्जुन उवाच

देखत हौं तव देहि में, सुर विरंच अरु सिद्ध।
कमलासन ऋषि ईश पुनि, सरब नाग सब विध ॥१५॥
बहुत बाहों उरुहें बहुत, मैं देखे बहु सीश।
आदि अन्त मधाहि नहीं, ऐसे तुम जगदीश ॥१६॥
मुकुट सीस कर चक्र गद, तेजवन्त भगवान।
हगन ज्योंध चितवन लगे, हैं रवि अनल समान ॥१७॥
अक्षर हो तुमहूं परम, हो सब जगत निधान।
अविनाशी रक्षक सबन, उत्तम हो अनुमान ॥१८॥

आदि अन्त मध्य रहत तुम, रवि शशि हैं तुहि नैन।
तेरो मुख दीपत अगन, सब ही के तुम ऐन ॥१९॥
गगन भूम मध्य सरब दिश, व्यापें तुम जगदीश।
अद्भुत रूप सु उग्र लखि, डरपत लोकाधीश ॥२०॥
पैठत तो में देव सब, स्तुति करत भय मान।
ऋषि अरुसिद्ध महन्तमुनि, निवत जु तोको जान ॥२१॥
रुद्र साध आदित्य सब, अश्वन सूत अरु वायु।
सिद्ध यक्ष गन्धर्व सब, देखत अचरज भाय ॥२२॥
रूप बड़ो मुख नैन बहु, भुज पद बहु उदरोज।
देख भयानक दाढ बहु, विथित लोक अरु होज ॥२३॥
पाय पुहमि आकाश सिर, दृग दीर्घ मुख बाय।
ऐसे तुम को देख के, धीरज गयो नसाय ॥२४॥

काल अगन सम दाढ तुम, ता देखे भयभीत।
दिश भूली सुख हू गयो, अब कीजै प्रभु प्रीत ॥२५॥
पूत सभी धृतराष्टर के, सब नरपातिन के संग।
करण द्रोण भीष्म जिते, योधा हैं सो अंग ॥२६॥
वेग तिहारे बदन में, सभी परत हैं आय।
कोऊ दाढण तर दले, कोउ रहे लपटाय ॥२७॥
ज्यों सरता वर्षा रुते, परत सिन्ध में जाय।
त्यों सब नृप तव बदन में, सभी परत हैं धाय ॥२८॥
ज्यों पतंग परद्वीप में, लहत आपनो नास।
त्यों ही नृपति परत हैं, तुम्हरे मुख में खास ॥२९॥
लीलत ही तिन को जले, रसना सों लपटाय।
क्रान्त रावरी जगत को, देत ताप बहु भाय ॥३०॥

उग्र रूप तुम कवन हो, मोसो कहिये देव।
जानियो चाहत हौं तुमें, तुहि बातन को भेव ॥३१॥

श्री भगवानुवाच ॥

कालरूप होय हौं बढियो, सब को मारन हार।
तो बिन सब योधन को, भषिहौं हौं निरधार ॥३२॥
ताते उठ रण जीत तू, ले कीर्ति अरु राज
मैं हण राखें है नृपत, एक सब तेरे काज ॥३३॥
भीष्म द्रोण और जयदरथ, करण आदि जहि और।
भय तजि अर्जुन युद्ध कर, अरिन मार या ठौर ॥३४॥

संजय उवाच

बचन सुनत श्रीकृष्ण के, कांपी अर्जुन देह।
तब प्रभु के पायन लागियो, बोलियो वचन सनेह ॥३५॥

सब जन जो यहि जगत में, तुम्हें रहे अनुराग ।
सिद्ध निवत तुम को सदा, राक्षस जात सु भाग ॥३६॥
किव न निव तुम को जु हौं, परम ब्रह्म करतार ।
जगत ईश अक्षर अनन्त, तुम सभनों ते पार ॥३७॥
पुरुष पुरातन आदि हो, तुम ही जगत निधान ।
तुम विस्तारियो जगत यह, जानत तुम ही ज्ञान ॥३८॥
वायु प्रजापति अगनि यम, वरण चन्द तुम रूप ।
वारम्बार सहस्र तन, प्रणवत तोहि अनूप ॥३९॥
आगे ते तोको निवत, पाछे हूं आनन्त ।
सरब दिशन तुम तिह निवत, अमित प्रबल भगवन्त ॥४०॥
मित्र जान जो मैं कही, क्षमा करो हे देव ।
जानों कहा हौं बापुरो, तुहि महिमा को भेव ॥४१॥

भोजन सैन व्योहार मैं, किये अनादर भाय।
ते जु क्षमा सब कीजिये, प्रभु जी केशव राय ॥४२॥
पिता जु तुम संसार के, तुमही हो गुरु ईस।
तुहि पद तुल कोउ नाहिनै, करै कौन तुम रीस ॥४३॥
तुम दण्डवत प्रणाम हो, क्षमो दोष प्रभु मोहि।
जिमि सुत पित पर प्रीति है, मित्र मित्र को जोय ॥४४॥
रूप लखियो या रावरे, मोहि हर्ष भय होय।
पहिले रूप दिखाइये हौं, जीवन जानो सोय ॥४५॥
मुकट विराजत सीस पर, शंख चक्र गद हाथ।
[illegible] विधि मोहि दिखाइयै, प्रभु हो तुम जगनाथ ॥४६॥
[illegible]र भुजा धर प्रगट हुइ, मोको दर्शन देह।
[illegible]व मूर्ति जु अनन्त है, मोको वा सौं नेह ॥४७॥

श्री भगवानुवाच ॥

तोहि दिखायो रूप मैं, अति प्रसन्न चित होय।
आदि अनन्त सु तेज मैं, देख सके नहीं कोय ॥४८॥

वेद यज्ञ तप अरु क्रिया, और करे हूं दान।
ऐसे मेरे रूप को, तो बिन लखे न आन ॥४९॥

रूप भयानक देख के, तू निज जीय डराहि।
अब भय को तू डार देहि, मेरे रूपहि चाहि ॥५०॥

सञ्जय उवाच

अर्जुन सों ऐसे कही, पहिलो रूप दिखाय।
सावधान बहु विधि किये, भय ते लियो बचाय ॥५१॥

अर्जुनोवाच ॥

रूप अनूप जु तुम धरियो, ता रूपहि हौं देख।

प्रकृति लही मैं आपनी, भयो सुचेत विशेष ॥५२॥

श्रीभगवानउवाच ॥

देख पुरातन रूप इहु, जो तैं देख्यो मित्त ।
तास रूप को देवता, देख्यो चाहत नित्त ॥५३॥
दान तप यज्ञ विधि किये, मोहिं न देखे कोय ।
बिन श्रम पारथ तू अबै, मोको रहियो जु जोय ॥५४॥
अनन्य भगति जे को करै, सो देखे या भाय ।
नीके जाने मोहि सो, मो मैं आन समाय ॥५५॥
मो नमित्त कर्मन करै, जजै भगत तज और ।
बैर न काहू सों करै, मो मैं लहै सु ठौर ॥५६॥

इति श्री भ० विराटरूप प्रदर्शनो नाम एकादशमो अध्यायः ॥११



॥ गीता अध्याय १२॥

अर्जुन उवाच

जो सेवत तुम को सदा, करि कर्मन के साज।
अक्षर ब्रह्म ते भजत, बड़ो कवन किह काज ॥१॥

श्री भगवानुवाच ॥

जो मो में मन राख के, सेवत सेवक भाय।
बहु शरधा संयुगति सो, अधिक अधिक अधिकाय ॥२॥
जो धियात हैं अच्छर, जो नाहि प्रगट स्वरूप।
व्यापी माया ते परे, अज अच्युत अनूप ॥३॥
सब इन्द्रियन को रोक के, सब को लखत समान।
सब जीवन सों हित करत, मिले मोहि करि ज्ञान ॥४॥
तिनैं क्लेश बहु होत हैं, ब्रह्म लगाये चित्त।

रूप रेख जाको नहीं, सो दुःख ते लयत मित्त ॥५॥
जे सब कर्मन करत हैं, अर्पत मोको जान।
ध्यावत केवल भाव सों, बहु उपासना ठान ॥६॥
मृत्यु सहित भव उदधि ते, ताको करत उधार।
मोमें चित राख्यो उनहि, बहु भायन निरधार ॥७॥
तातें अर्जुन बुद्धि मन, ले मो में तू राख।
या आगे मो देह में, बस है तू अभिलाष ॥८॥
जो तू मो में नहिं सकें, चित्त अपनों ठहराय।
अभ्यास करो मो मिलनको, मोहिं निरन्तर ध्याय ॥९॥
जो अभ्यास न करसके, कर्म समरप्यो मोहि।
मेरे किये समरप हूं, सिद्धि होयगी तोहि ॥१०॥
यहै न जो तू करसके, मो शरनाहि अनुराग।

सब कर्मन के फलन को, अर्जुन दे तू त्याग ॥११॥
ज्ञान भलो अभ्यास ते, ताते ध्यान विशेष।
फलहि त्याग ताते भलो, वा ते शांतहि लेख ॥१२॥
द्वेष न काहू सों करे, मित्र भाय करणाजु।
अहङ्कार ममता तजै, सुख दुःख सम क्षमतांजु ॥१३॥
सदा रहे सन्तोष सों, मन राखै निज हाथ॥
प्राण बुद्धि मो में धरै, वह प्यारो मो साथ ॥१४॥
वह काहू सों नाहिं डरै, भय औरन नाहिं देय।
हरष शोक दोऊ तजै, सो मोको हरि लेय ॥१५॥
चाहि न काहू की करै, रहे पुनीत उदास।
सब आडम्बर को तजै, रहे जु मेरे पास ॥१६॥
प्रिय पाए आनन्द नाहिं, अनप्रिया लहै न दोष।

महाभूत अहङ्कार बुद्धि, अरु माया हू जान ।
सोच ना काहू की करै, तजै अशुभ शुभ राख ॥१७॥
शत्रु मित्र को सम लखे, तथा मान अपमान ।
शीत उष्ण सुख दुःख तजे, संग करै नहीं आन ॥१८॥
स्तुति निन्दा मो एक से, गहै मौन सन्तोष ।
घृण न करै स्थिर मत रहे, लहे भगति सो मोक्ष ॥१९॥
धरम अमृत जो मैं कहौं, ताहि जु सेवै कोय ।
श्रद्धा युत मेरो भगत, मोहि सु प्यारो होय ॥२०॥
योग यज्ञ व्रत तप सभै, कीने एक समान ।
सरस सार फल सबन को, मेरी भगति प्रधान ॥२१॥

इति श्री मद० भगति योगो नाम द्वादशमे अध्यायः १२ ॥

गीता अध्याय ॥१३॥

अर्जुन उवाच ॥

प्रकृति कौन अरु पुरुष को, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कहा ।
यहि जानन की लालसा, ज्ञान ज्ञेय फुनि क्या ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ॥

क्षेत्र कहत या देह को, अर्जुन ज्ञानी लोय ।
जानत जो या देहि को, सो क्षेत्रज्ञ सु होय ॥२॥
सो मम रूप जो आत्मा, बसत सबन की देह ।
यही ज्ञान को जानबो, मेरो मति है एह ॥३॥
क्षेत्र जहा ते है भयो, जो है तैसे भाय ।
जे विकार या मांझ है, कहौं संक्षेप सुनाय ॥४॥
ऋषिन कह्यो बहु भान्त हूं, अवरन हूं जो भाख ।
हेत बांध निश्चय जु करि, कही उपनिषदन साख॥५॥

एकादश इन्द्रिय विषय, पांच अगोचर मान ॥६॥
इच्छा सुख दुःख चेतना, द्वैत धीरता देहि ।
यहि जु कह्यो संक्षेप सों, क्षेत्र जान तू लेहि ॥७॥
क्षमा सरल जु दम्भ तजै, हिंसा मद्य अभिमान ।
गुरु सेवा संयम करन, स्थिरता सौच निधान ॥८॥
विषयन सों वैराग धर, तजे रहे अहङ्कार ।
जन्म मृत्यु सुख दुःख जग, व्याधि दोष निरधार ॥९॥
नेहु न पुत्र कलत्र सों, ता दुःख दुःखी न होय ।
चित्त में धरे समानता, बुरी भली जो होय ॥१०॥
अटल भगति मोमें धरै, सब को आत्म जान ।
रहे सदा एकान्त में, तजै सु सब सन्मान ॥११॥
अध्यात्म ज्ञानहि धरै, तत्त्व ज्ञान को देख ।

यह सब कुछ जो मैं कह्यो, यही ज्ञान अवरेख ॥१२॥
कह्यो अमृत सम जानबो, जाते मुक्ति जु होय ।
कारण कारय तेहि परे, आदि ब्रह्म है जोय ॥१३॥
सरव ओर कर चरण सिर, त्यों ही मुख दृग कान ।
व्याप रह्यो सब जगत में, मोहि दशो दिशि जान १४॥
सब विषयन ते रहत हो, सबना के आभास ।
संग विना सब को धरौं, निर्गुण गुणन प्रकाश ॥१५॥
जीव जिते चहुं चर अचर, अन्तर बाहर सोय ।
सब से दूरि सु निकट हौं, सूक्ष्म लखे न कोय ॥१६॥
ता में भेद सु कछु नहीं, सब में रहत विभाग ।
उपजावन नाशन सबन, पालत करि अनुराग ॥१७॥
जो तन हूं की जोत हौं, अन्धकार ते पार ।

ज्ञान जान जो हिये में, सब को हौं निरधार ॥१८॥
क्षेत्र ज्ञान अरु ज्ञेय मैं, तोको दियो बताय।
इनको जाने जो भगत, लहे सु मेरो भाय ॥१९॥
माया पुरुष अनादि है, अर्जुन दोऊ जान।
गुण विकार सब जे भये, माया ही ते मान ॥२०॥
कारण कारय करतऊ, माया इनका हेत।
और सुखन के भोग को, वहै पुरुष गहि लेत ॥२१॥
पुरुष प्रकृति में बैठ के, करत विषय को भोग।
नीचे ऊंचे जन्म को, कारण गुण संयोग ॥२२॥
परमात्म को देहि ते, न्यारो जानत लोय।
साक्षी करता भोगता, ईश्वर निर्गुण होय ॥२३॥
जो कोउ मुहि ऐसे लखे, पुरुष प्रकृति गुण भाय।

सो क्यों हूं जग में रहै, बहुरि न उपजै आय ॥२४॥
देह मांझ आत्म लखत, कोउक एक ध्यान।
सांख्ययोग अरु करमकर,लखत और स्वज्ञान ॥२५॥
जो ऐसे नहीं जानही, ते सुन अवरन पैजु।
मम उपासना करत ही, भव भय मृत्यु तरैजु ॥२६॥
जिते जीव या जगत में, स्थावर जंगम होत।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ते, ते सब लहत उदोत ॥२७॥
सब भूतन में रम रह्यो, एक आत्माराम।
देह छुटे विनसत नहीं, बूझै नर अभिराम ॥२८॥
सब देखे सर्वत्र महि, प्रभु इस विधि सब ठौर।
नाश न होवत वाहि को, पावे है निज ठौर ॥२९॥
प्रकृति करत जु करम सब, जीव अकरता होय।

जानत जो या भेद को, लखत आत्मा सोय ॥३०॥
जबही सकली सृष्टि मों, देखे आत्म स्थित ।
तिस ही ते विस्तार है, सोई ब्रह्म में मिलत ॥३१॥
आदि अन्त ते रहत है, निर्गुण आत्म सोय ।
देहि मांझ यद्यपि रहै, करै न लिपता होय ॥३२॥
जिमि सर्वज्ञ आकाश है, अति सूक्ष्म निरलेप ।
तिमि सब देहि में रहे, आतम राम अलेप ॥३३॥
जैसे सूर्य्य सबन को, करत प्रकाश तू जान ।
तैसे सब देहिन को, करत चांदना मान ॥३४॥
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ को ज्ञान यह, हिय नैनन सों देख ।
प्राणी प्रकृति ते यों छुटे, सो सतिगुरु ते पेख ॥३५॥

इति श्री भ० क्षेत्र क्षेत्रज्ञ निर्देशो नाम त्रयोदशो अध्यायः ॥१३॥

गीता अध्याय ॥१४॥

श्री भगवानुवाच ॥

परम जु उत्तम ज्ञान सो, तोको दियो बताय ।
जाहि ज्ञानके मुनि सभै, रहे मुक्ति को पाय ॥१॥

यही ज्ञान को सेव के, मेरो लह्यो स्वरूप ।
प्रलय वृथा तिन को नहीं, परें न ते भव कूप ॥२॥

ब्रह्म प्रकृति में योनि है, ता माहि गर्भहि राख ।
उपजावत सब सृष्टि हौं, अर्जुन चित्त अभिलाख ॥३॥

जे जे मूरत होत है, सदा योनिन में आय ।
तिन को हौं ही बीज हौं, हौं ही पितु अरु माय ॥४॥

सत रज तम त्रै गुण भये, माया ही ते जान ।
देहि मांझ या जीव को, येही बाधत आन ॥५॥

निरमल अरु प्रकाश कर, सत गुण शांत स्वभाय।
ज्ञान संग सुख संग सों, बांधत जीवे आय ॥६॥
रज गुण राग स्वरूप है, त्रिष्णा संग को हेत।
काम संग कर जीव को, ऐसे बन्धन देत ॥७॥
होत जु तम अज्ञान ते, मोहत सब को होय।
आलस निदरा विकलता, इन सों बांधत जोय ॥८॥
सत गुण सुख ते पड़त है, करम रजो गुण होय।
आलस से तम गुण बढ़े, रहत ज्ञान सब खोय॥९॥
रज गुण तम गुण पेलके, रहत सतो गुण पूर।
रज सत को पेले जु तम, रज ते सत तम दूर ॥१०॥
सब द्वारण में देहि के, जबै प्रकाशित ज्ञान।
तबै बढ़ियो है सत गुणौं, अर्जुन योह तू जान ॥११॥

बढ़त रजो गुण है जबै, नर शरीर में आय।
लोभ करम उद्यम असन, इनैं देत प्रगटाय ॥१२॥
अर्जुन जब ही करत है, तम गुण आय प्रकाश।
आलस मोह अज्ञान तब, मन में करत विलास ॥१३॥
जो सतगुण की वृद्धि में, तेज जीव निज देह।
तो ज्ञानी के लोक में, जाय करै निज गेह ॥१४॥
रज गुण में तजे प्राण को, करमवन्त गृहजाय।
तम गुण में जो मरत है, पशू योनि प्रगटाय ॥१५॥
सुकृत करम ते होत है, शान्तिक फल स्वच्छ।
रज गुण का फल दुःख है, तम अज्ञान फल तुच्छ ॥१६॥
लोभ रजो गुण ते भयो, सत गुण ते है ज्ञान।
तम गुण ते है विकलता, मोहमय अरु अज्ञान ॥१७॥

सातक ऊंचे जात है, राजस मध्यम लोक ।
तामस जावत अधोगति, पावत बहु विधि शोक ॥१८॥
गुण ही को करता करत, जानत ज्ञानी कोय ।
मोहि लखे गुण ते परै, मो में लीन सु होय ॥१९॥
देहि करत जु तीन गुण, तिनको देत जु त्याग ।
जन्म मृत्यु दुःख ते छुटे, रहे मुक्ति मे लाग ॥२०॥

अर्जुनोवाच ॥

जिन लांघे हैं तीन गुण, ताके लक्षण कौन ।
क्या ताके आचार गुण, मोसौं कहिये जौन ॥२१॥

श्री भगवानुवाच ॥

मोहि ज्ञान अरु करम को, जो जाने हिय माहि ।
बिन पाये चाहे नहीं, पाहि दुःख पावे नाहि ॥२२॥

उदासीन बैठो रहे, सुख दुःख चपल न होय।
गुण सब कारज करत हैं, यों जाने जे लोय ॥२३॥
सुख दुःख को सम कर गने, कञ्चन माटी माय।
प्रिय अप्रिय को तुल गने, स्तुति निन्दा इक दाय॥२४॥
तुल्य मान अपमान अरु, मित्र शत्रु सम जाहि।
सब आरम्भन को तजै, गुणातीत कहि ताहि ॥२५॥
मोको जो दृढ़ भगति, सो सेवे चित के चाय।
सो तीनों गुण ते परे, रहे ब्रह्म को पाय ॥२६॥
अर्जुन हौं ही ब्रह्म हौं, मुकती मेरो रूप।
हौं अविनाशी धर्म हौं, आनन्द परम अनूप ॥२७॥
आनन्द को हौं धाम हौं, घनी भूत को तेजु।
मोको एकै बासि करै, हौं निज भक्ति कहेजु ॥२८॥

इति श्री मं० गुणत्रैव विभाग योगो नाम चतुर्दशो अध्यायः ॥१४॥

॥ गीता अध्याय १५॥

श्रीभगवानुवाच ॥

ऊरध मूर शाखा तलै, अविनाशी आवस्थ ।
वेद पत्र जो जान ही, सो जानै सब अर्थ ॥१॥
गुण सींची साखा बढ़ी, विषिया पल्लव पाय ।
जड़ फैली करमन बढ़ी, मनुज लोक मैं आय ॥२॥
आदि अन्त नहीं जानिये, थान रूप नहीं जाहि ।
दृढ़ असंग हथियार कर, दुसहि मूल तरु ढाहि ॥३॥
चाहि करै ता ठौर को, फिर न ताको पाय ।
सृष्टि भई जो पुरुष ते, ताको शरण जु आय ॥४॥
काम संग अरु मोह तजि, अध्यात्म रति होय ।

सुख दुःख तजि ताको लहै, अविनाशी जो कोय ॥५॥
पावक रवि अरु चन्द्रमा, ताहि करै न प्रकाश ।
फिरे न ताको पाइके, सो है मेरो वाश ॥६॥
जीव लोक में जीव यहि, अविनाशी मो रूप ।
मनहि आदि इन्द्रियन को, अवर प्रकृति को भूप॥७॥
जब शरीर को तजत यहि, जहां करे सम्बन्ध ।
इन्द्रिय ईश्वर संग रहे, वायु संग ज्यों गन्ध ॥८॥
श्रवण नैन अरु नासका, त्वच अरु रसना जान ।
इनको गहि मन संग ले, लहत जीव व्याख्यान ॥९॥
इन्द्रियजित निकसत रहत, करत विषय को भोग ।
मूढ़ जीव कोउ नाहि लखे, लखे सु ज्ञानी लोग ॥१०॥
योगेश्वर यत्नन किये, देखत हैं जीय माहि ।

मूरख यत्न न करत हूं, जीवहि देखत नाहि ॥११॥
तेज जु है आदित्य में, भाषत सब संसार ।
चन्द्रमांझ अरु अग्नि में, सो मेरो निरधार ॥१२॥
धारत हौं सब जीव को, करि पुहमी प्रवेश ।
पोषत हौं ही औषधी, होय रस में शशि लेख ॥१३॥
हौं ही जठरा अग्नि हौं, सब देहिन में आय ।
प्राण अपान सहाय सों, डारत अन्न पचाय ॥१४॥
सब के हिये में हौं रहौं, मो ते ज्ञान विचार ।
वेद सबै मोको कहैं, मैं तिनको करतार ॥१५॥
लोक मांझ द्वै पुरुष हैं, क्षर अक्षर ता भाय ।
क्षर शरीर को कहत हैं, अक्षर जीव गनाय ॥१६॥
उत्तम पुरुष सु अमर है, परमात्म के भेश ।

तीन लोक सो धरत हैं, करकर निज प्रवेश ॥१७॥
क्षर अरु अक्षर ते परे, हौं ही हौं अधिकाय।
ताते वेद अरु लोक में, अध्यात्म मो नाय ॥१८॥
जो कोउ मोको नाहि भजत, ते तू मूर्ख जान।
अर्जुन जो मोको भजत, ते ही जान सुजान॥१९॥
छिपी बात ग्रन्थन जु कही, सो तोको कहदीन।
पारथ जे जानत यही, तेही जात प्रवीन ॥२०॥

इति श्री भ० पुरुषोत्तम योगो नाम पंचदशो अध्यायः ॥१५॥

गीता अध्याय ॥१६॥

श्री भगवानुवाच ॥

सबै हिये की शुद्धता, ज्ञान योग स्थिर होय।
दान यज्ञ तप वेद रुचि, दमन सरलता जोय ॥१॥

अनहिंसा अरु सत्य में, रहि भय क्रोध अनित ।
दान शांत बहु विधि रुचे, दोष न आने चित्त ॥२॥
दया करै सब जनन पर, तजे चपलता भाय ।
लाज अकरमन ते सुधर, बृथा क्रिया छुट जाय ॥३॥
तेज क्षमा शुचि धार युत, तजे द्रोह अभिमान ।
दैवी संपद जिन लही, ता में ये गुण जान ॥ ४ ॥
दंभ दरप अज्ञान रिस, अरु अभिमान कठोर ।
ता मैं ये गुण जिन लहो, आसुरी संपद घोर ॥५॥
दैवी संपदा ते मुक्ति, बन्ध आसुरी जोय ।
सो चेतन्याहि जिन भई, दैवी संपदा तोहि ॥६॥
दैवी आसुरी भेद ते, द्वै बिधि सृष्टि है एह ।
पहिली कहा विस्तार सों, अब दूजी सुन लेह ॥७॥

अविधि अवर बिधि जगत की, आसुर जानत नांहि ।
सत्य शौच आचार शुभ, नंही ये गुण तिन माहि ॥८॥

वेद पुराण ईश्वर हिये, नाही मानत मूढ़ ।
मैथुन ते संसार यह, काम क्रोध ही गूढ़ ॥९॥

गहि के ऐसी दृष्टि को, नष्ट चित्त कहि बुद्धि ।
होत उग्र करमा जु है, जगत अहित विस शुद्धि ॥१०॥

भजन अपूरब काम को, दंभ मान मद पाय ।
गहत बुराई मोहित जो, मांस अवर मद खाय ॥११॥

जाको कछु प्रमाण नाहि, ता चिन्ता मोह लीन ।
काम भोग अति भलो है, निश्चै मानत दीन ॥१२॥

सो आशा फासन बन्धे, काम क्रोध चित्त लाय ।
जोड़त धन अन्याय करि, काम भोग निरवाय ॥१३॥

मन वाछित यहि मैं लह्यो, लह्यो चाहत ही मोहि।
यहि धन मेरे है धरयो, जुरयो अवर उपोहि ॥१४॥
यहि वैरी है मैं हनियो, करियो वाको अन्त।
ईश्वर हौं भोगी जु हौं, सुखी सिद्ध बलवन्त ॥१५॥
मैं ही धनी कुलीन हौं, अवर न मोहि समान।
जजों देव मोदहि लहौं, मोहत यो अज्ञान ॥१६॥
उनको मन बहु भ्रमत है, मोह जाल पर नित।
परत घोर अति नरक में, काम भोग करि हित ॥१७॥
निज बड़ियाई नित करत, निवत न धन अभिमान।
नाम मात्र यज्ञ ही रचित, दंभी बिना विधान ॥१८॥
अहङ्कार बल द्रव्य अरु, काम क्रोध गहि लेत।
दोषी निज पर देहि में, मोको ते दुःख देत ॥१९॥

मोसों द्रोह कर तरुत चहुं, पापी अधम गवांर ।
जगत आसुरी योनि मैं, तिनैं देत हौं डार ॥२०॥
जन्म जन्म में मूढ़ ते, होत जु आसुर आय ।
मोको ते पावत नहीं, परत अधोगति जाय ॥२१॥
नरक द्वार विधि तीन हैं, देत आप को नास ।
काम क्रोध अरु लोभ पुनि, इन छोड़े सुख वास ॥२२॥
तीनों द्वार जो नरक के, तिन ते छुटे जु कोय ।
यत्न करे कल्याण को, तबहि परमगति होय ॥२३॥
जे शास्त्र विधि छोड़ के, करत क्रिया वसि काम ।
सिद्धि लेह नहीं परमगति, नाहि सुख में विश्राम ॥२४॥
ताते काज अकाज में, ताको वेद प्रमाण ।
कर्मन कर तू जानके, तिनको विधि सु विधान ॥२५॥

वेद कहत जो मोक्ष है, मोको देत बताय।
मेरे ही करमन करो, मेरी आज्ञा पाय ॥२६॥

इति श्री भ० दैवासुर सम्पदा नाम षोड़शो अध्यायः ॥ १६ ॥

गीता अध्याय ॥१७॥

अर्जुन उवाच ॥

श्रद्धा बिन यज्ञहि करत, तज वेदन की रीति।
सत रज तम मों स्थिति कहा, कहीए तिनकी रीति ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ॥

श्रद्धा नर की तीन विधि, होत जु सहज सुभाय।
सातक राजस तामसी, सुनीए तिन के दाय ॥२॥
परम्परा ही जन्म के, श्रद्धा होत समान।
श्रद्धा में यह पुरुष है, श्रद्धा ताहि प्रधान ॥३॥

देवन सेवहि सातकी, राजस राजस जक्ष।
भूत प्रेत गन ते जजैं, जे नर तामस पक्ष ॥४॥
घोर तपस्या जो करे, जौन वेद मत होय।
भरे दम्भ अहंकार सौं, काम राग बल होय ॥५॥
पंच भूत जो देहि में, तिनको वै दुःख देत।
हिये में मोहू को हनत, ते हैं असुर अचेत ॥६॥
तीन भान्त अहार यह, सब को रोचक होय।
दान यज्ञ तप भेद ये, मो पै सुनिये सोय ॥७॥
सुन्दर स्थिर अरु चीकनो, सातक प्रिया अहार।
आयु सत्व अरु अंग बल, प्रीति बढ़ावन हार ॥८॥
दाहक रूखे ऊष्ण कटु, तीक्ष्ण खाटे खार।
शोक रोग दुःख देत हैं, राजस एहि अहार ॥९॥

जा हिरदे पहरक गये, वासउ उठे वसाय।
जूठा अवर पवित्र नहि, भोजन तामस खाय ॥१०॥
विध विधान सौं कीजिये, छोड़ फलन की आस।
समाधान धरि जाय मैं, सातक यज्ञ विलास ॥११॥
करके फल की कामना, अवर दम्भ के भाय।
ऐसो जो यज्ञहि करै, सो है राजस दाय ॥१२॥
बिन अन्नहि बिन दक्षणा, बिना मन्त्र विधि हीन।
बिन श्रद्धा यज्ञहि करै, सो है तामस लीन ॥१३॥
ज्ञान गुरु द्विज देव को, पूजे शुतु मृदु होय।
ब्रह्मचर्य्य हिंसा तजै, तप शरीर है सोय ॥१४॥
भय न करै जे प्रिया वचन, हितकारी सत भाय।
करै वेद अभ्यास पुनि, वांचक तप या दाय ॥१५॥

मन प्रसाद जु सुखद मृद, इन्द्रिय निग्रह मौन ।
भाव शुद्ध यों करत है; मानस तपस्वी जौन ॥१६॥
श्रद्धा सों नर तप करत, सों है तीनों भान्त ।
फल इच्छा को छोड़ कर, लही शांत गाहि क्रान्त ॥१७॥
पूजा आदर मान को, अवर दम्भ के काज ।
सों तप राजस कहत हैं, चञ्चल त्तणक समाज ॥१८॥
देही दुःख दे मूढ़ हुइ, हठ सों जो तप होय ।
पर को कष्ट दिखावई, तामस तप है सोय ॥१९॥
दान देय उपकार बिन, पात्र विप्र को देखि ।
देश काल को जान कै, सातक दान विशेख ॥२०॥
कीजे जो उपकार को, फल की आशा मान ।
दीजै जो अति कष्ट सो, ताको राजस जान ॥२१॥

बिना देश अरु काल बिन, दीजै नीचे दान ।
बिन आदर धिक्कार करि, तामस ताहि बखान ॥२२॥
ओम् तत सत ब्रह्म के, नाम जु तीन प्रकार ।
विप्र वेद अरु यज्ञ तिन, कीन प्रथम ही बार ॥२३॥
क्रिया यज्ञ अरु दान तप, कहि पहिले ओंकार ।
वेदवन्त यों करत है, विधि विधान विस्तार ॥२४॥
तत यह करि के करत हैं, क्रिया यज्ञ तप दान ।
फल अभिलाषा छोड़ के, चाहत मुक्ति निदान ॥२५॥
शुद्ध भाव सति भाव में, सति का करत उचार ।
और भले पुनि कर्म में, सति को गावत सार ॥२६॥
यज्ञ दान तप की जु स्थिति, ताहि कहत सति मान ।
ताके जे जे कर्म हैं, ताको सति बिसराम ॥२७॥

श्रद्धा बिन होमत जपत, देत जु सभै अकाज।
अर्जुन सो यहि असत्य है, दुहूं लोकही साज ॥२८॥

सत रज तम यज्ञ दान तप, व्रत है मोहीं हेत।
काल क्रिया कृत मंत्र, सब, सिद्धि एक हरि खेत ॥२९॥

इति श्री म० त्रिविधिश्रद्धा विभाग योगो नाम सप्तदशो अध्यायः १७ ॥

गीता अध्याय ॥१८॥

अर्जुन उवाच ॥

त्याग तत्व जानियो चहत, कहिये जु भगवान।
तत्व और संन्यास को, न्यारो करो बखान ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ॥

काम युगति करि मन तजै, तोहिं नाम संन्यास।
कर्म फलन को त्याग यहि, त्याग कहत सुखरास ॥२॥

कर्म छाड़िये दोष ही, कोउ कहत या रीति ।
यज्ञ दान तप कर्म निज, तजो अवर यह रीति ॥३॥
या ठौरहि पद अर्थ जो, मेरो निश्चा जान ।
तीन भान्त को त्याग यह, अर्जुन चित में आन ॥४॥
यज्ञ दान तप कर्म ये, कीजै तजिये नाहिं ।
ताते पण्डित जन इनैं, गणत पवित्रन माहिं ॥५॥
फल छाडे संगहि तजैं, कर्म करै चित लाय ।
अर्जुन ये मेरो जु मत, निश्चय उत्तम दाय ॥६॥
जो अवश्य करनो कर्म, ताको छाड न देय ।
जो छांड़े अज्ञान ते, सो तामस गति लेय ॥७॥
यह जाने कर्मन तजै, मत देही दुःख होय ।
यह तो राजस त्याग है, या में फल नहीं कोय ॥८॥

करनो कर्म अवश्य याहि, जान जु कीजै कर्म ।
संग अवर फल को तजै, सातक त्याग सु धर्म ॥९॥
बुरे कर्म निन्दे नहीं, भले रहे नाहि लाग ।
बुद्धिवन्त सन्देह बिन, यही सातकी त्याग ॥१०॥
देहवन्त पै कर्म सब, नाहीं छाड़े जाहि ।
कर्म फलन को जो तजै, सो ही त्यागि न माहि ॥११॥
स्वर्ग नरक अरु भूमि ये, कर्म त्रिविध फल जान ।
कर्मवन्त पै होत है, सन्यासी नहीं मान ॥१२॥
अर्जुन मोपै सुन जु तू, कारण हैं ये पांच ।
कहिये सांख्य सिद्धान्त मैं, कर्म सिद्धि को सांच॥१३॥
अधिष्ठान कर्ता जु है, कारण बहुतौं भाय ।
नाना विधि व्यापार अरु, पंचम देव गनाय ॥१४॥

मन अरु वचन शरीर सों, कर्म करत या साज।
भलो बुरो दोउ करै, इन बिन सैर न काज ॥१५॥
जो नर आत्म एक को, मानत हैं कर्तार।
देखत हू देखत नहीं, ते नर मूढ़ गंवार ॥१६॥
जाकी बुद्धि न लिप्त है, अहङ्कार नहीं जाहि।
सो इन लोकन को हनत, हने न बन्धन ताहि ॥१७॥
प्रेरक तीनों कर्म के, ज्ञान ज्ञेय ज्ञातार।
कारण कर्म करता कहै, संग्रह तीन प्रकार ॥१८॥
त्रिविधि होत गुण भेद ते, ज्ञान कर्म करतार।
गुण संख्या में एक हैं, जैसे सुन या बार ॥१९॥
जाकर देखत जीय में, अविनाशी इक भाय।
न्यारे में न्यारो नहीं, सातक ज्ञान बताय ॥२०॥

नाना भाव इनमें लखे, न्यारो न्यारो ज्ञान ।
भिन्न लखे सब जीव को, राजस ज्ञान सु ज्ञान ॥२१
पूर्ण जानो एक में, बिन कर्मन रे मित्त ।
तत्व अर्थ बिन अल्प अति, तामस ज्ञान सुचित्त॥२२॥
संग राग अरु द्वेष बिन, नित्य कर्म जो होय ।
तज फल इच्छा कीजिये, सातक कर्म सु जोय ॥२३॥
जो कीजै करि कामना, किधौं करि अहंकार ।
जा में श्रम है अति घनो, सो राजस निरधार ॥२४॥
पुरुषहि हिंसा शुभ अशुभ, खर्चन दरब विचार ।
जो कीजै अज्ञान ते, तामस करम निहार ॥२५॥
धर धीरज उत्साह को, तजै संग अहंकार ।
निराविकार सिद्ध सम, सातक कर्म करतार ॥२६॥

रागी चाहे कर्म फल, लुब्धक हिंसक होय।
हरष सोग संयुक्ति असुच, राजस करता सोय ॥२७॥
शून्य रहे विवेक बिन, शठ आलसी नित्त।
सबना की निन्दा करे, अरु विषादयुत चित्त ॥२८॥
थोड़े दिन के काम को, बहुत लगावे बार।
ता ही सो सब कहत हैं, तामस मूढ़ लवार ॥२९
बुद्धी धीरज तीन विधि, होत जुगन के भाय।
न्यारे न्यारे सब कह्यो, देऊं तुमे सुनाय ॥३०॥
काज अकाज अरु भय अभय, और प्रवृत्त निवृत्त।
जाने बन्धन मुक्ति को, सो सातक बुद्धि निवृत्त ॥३१॥
धर्म अधर्म हू को लखे, काज अकाजहि जान।
जैसे हू तैसे नाहि गनै, बुद्धि राजसी जान ॥३२॥

जानै प्राक्रम पुण्य करि, दम्भि अज्ञानी लोय ।
लखे न अर्थ विप्रीत सब, बुद्धि तामसी होय ॥३३॥
जासों इन्द्री रोकिये, चित्त क्रिया अरु प्राण ।
योग युक्ति निश्चल महा, धीरज सातक जान ॥३४॥
धर्म अर्थ अरु काम को, जे धारत हैं आय ।
चाहैं फलै प्रसंग ते, धीरज राजहि भाय ॥३५॥
जो भय शोक विषाद मद, सुप्त मांझ ठहरात ।
दुष्ट बुद्धी छाडे नहीं, धीरज तामस जात ॥३६॥
अब अर्जुन मो पै सुनो, सुख के तीन प्रकार ।
जाके अभ्यासहि किये, दुःख का होय निवार ॥३७॥
पहिले तो विष सम लगे, बहुर अमृत सम होय ।
सो सुख सातकही कह्यो, बुद्धि प्रसाद ते होय ॥३८॥

इन्द्रिय विष संयोग ते, पहिले सुधा समान ।
पाछे जो विष सों लगै, सो सुख राजसु जान ॥३९॥
पहिले अरु पाछे सुखद, मोहत करै जु देह ।
आलस निद्रा ते उठे, तामस सुख है येह ॥४०॥
सो पुहुमी के कछु नहीं, सुरहुं भय अरु अकास ।
सो तो इन तीनों गुनन, बन्ध्यो न माया फांस ॥४१॥
द्विज क्षत्रिय अरु वैश्य के, अवर शूद्र के कर्म ।
निज स्वभाव से यह भये, न्यारे न्यारे धर्म ॥४२॥
शम अरु दम तप शुचि पुनि, सरलता और शान्त ।
आस्तिक ज्ञान विज्ञान यह, ब्रह्म कर्म की भांत ॥४३॥
शूर तेज धीरज चतुर, युद्ध मांझ न पराय ।
देहि ठकुराई सो रहे, क्षत्रिय कर्म सुभाय ॥४४॥

खेती गौ रक्षा वणिज, वैश्य कर्म ये जान।
तीन वर्ण सेवा करे, शूद्र कर्म ये मान ॥४५॥

अपने अपने कर्म ते, सिद्धि लहै सब कोय।
सो विधि अब मो पै सुनो, कर्म सिद्धि जिह होय ॥४६॥

जाते उपजत जीव सब, निज कीनो विस्तार।
कर्म करै ताको जजै, सिद्ध लहै नर सार ॥४७॥

नीके हू पर धर्म ते, निर्गुण भलो निज धर्म।
कछू पाप पावे नहीं, करत आपनो कर्म ॥४८॥

दोष सहित निज धर्म लखि, रहे न तिन हू त्याग।
दोष भरे आरम्भ सब, धूम सहित ज्यों आग ॥४९॥

लग्न बुद्धि कहूं नहि करे, जीते मन तजि आस।
परम सिद्ध निजकर्म के, पावे करि संन्यास ॥५०॥

सिद्ध पाय परब्रह्म को, जैसे पावे सार।
कहो जु हौं संक्षेप को, निश्चय ज्ञान अपार ॥५१॥
युगति रहे बुद्धि सुद्ध मो, धीरज सों मन धार।
शब्दादि विषियन तजै, राग द्वेष को मार ॥५२॥
रहे दुरियो एकान्त मैं, लघु भोजन मन जीत।
ध्यान योग तत्पर सदा, यहि वैराग्य को रीत ॥५३॥
क्रोध परिगृह काम बल, दरब अवर अहंकार।
ममता तज निर्मल रहे, शान्ति ब्रह्म में सार ॥५४॥
ब्रह्म भयो प्रसन्न मन, सोच हुं करे न चाहि।
सब जीवन को सम लखे, पावे भगति प्रवाहि ॥५५॥
परा भगति अति ऊंच है, ता में कछु न भेद।
सात संगत ते पाइये, वसे प्रेम के खेत ॥५६॥

मोको जाने भगति करि, नित नव हो जो भाय।
मोहि ज्ञान के तत्व सों, मेरी भगति कराय ॥५७॥
मो कर मन को नित करे, मेरो अश्रय पाय।
मो प्रसादि ते सो रहे, अच्छी पदवी पाय ॥५८॥
मन सो मो में करम धर, मो तत्व पर ता लेह।
बुद्धि योग को सेव के, मो ही में चित्त देह ॥५९॥
मो प्रसाद ते दुरंग सब, नजाहि हैं अना यास।
अहंकार ते बिन सुने, लाहि हैं तू जु विनास ॥६०॥
लरों नहीं तू ज्यों कहत, अहंकार को मान।
पर सोई तू करेगा, प्रेरक है भगवान ॥६१॥
तु ताकी सरनी पराहि, सरब भाव यहि मीत।
ताही को परसाद ते, निज आसन नित रीत ॥६२॥

यह तोको जो मैं कह्यो, ज्ञान गूढ़ अति गूढ़।
अब जो तो को भावही, सोई करहु अमूढ़ ॥६३॥
बहुत वचन मम गुह्य जो, तोसों कहों सुजान।
ताको भले विचार के, बिन संदेह तू मान ॥६४॥
तन मन धन मोको अर्प, मेरो ही जप जाप।
मोको ही तू मिलेगा, निरसदेह प्रिय आप ॥६५॥
सर्व धर्म को आस तजि, ताकी शरण तूं लेह।
पापन तजियो मुक्ति हौं, पावे निरसन्देह ॥६६॥
यह गीता जो भक्ति बिन, हो तपस्या ते हीन।
ताहि पढ़ाये नाहिने, नहीं सुनावे दीन ॥६७॥
यह जो बचन हैं गूह्य मम, ज्ञान भक्ति को देहि।
सो मेरो वह भक्त होय, प्रेम पदारथ लेहि ॥६८॥

सो मनुष्यों में को नहीं, अनप्रिया करता होय ।
मोको भी वा ते अधिक, प्यारा और न कोय ॥६९॥
प्रेम से जो नर यह पढ़े, मेरी तेरी भाष ।
सो मोको यह जानकर, पूजन सब अभिलाष ॥७०॥
श्रद्धा सों जो नर सुने, ईर्षा न मन में आन ।
सो मुक्ता होय जगत में, पुन पावे शुभ स्थान ॥७१॥
कछुं पार्थ सु जु ज्ञान ते, करे एकाग्र चित्त ।
नष्ट भयो है मोह तब, शुद्ध आई है मित्त ॥७२॥

अर्जुनोवाच ॥

नष्ट मोह ज्ञानहि लयो, तुहि प्रसाद है देव ।
मन्ये ते तव आज्ञा, कह्यो सकल या भेव ॥७३॥

सञ्जय उवाच ॥

केशव पार्थ वचन कहि, सुन राजा परबीन ।
अद्भुत लीला सुनत ही, रोम उठे जल भीन ॥७४॥
व्यास प्रसाद ते सुने ये, गुह्य वचन अति गुह्य ।
श्रीकृष्ण जो भाषियो, परम मित्र सों सूय ॥७५॥
राजन् स्मर सम्बाद ये, अद्भुत पूरण ज्ञान ।
केशव अर्जुन सों कहियो, मगन होत विख्यान ॥७६॥
निरष निरष दर्शन हरी, मगन होत मन मोर ।
विस्मय होय हर्ष्यों बहुरि, यह मोरो चित्त चोर ॥७७॥
यत्र योगेश्वरकृष्ण पुनि, पारथ धनुर्धर मान ।
तत्र विजैऊ भूतवा, यह मेरो मति मान ॥७८॥